पुस्तक परिचय

इस पुस्तक मे हिमालय के दुर्गम प्रदेश की यात्रा का विशद, सरस एवं मनोरंजक वर्णन है। पाठक देखगे कि ऐसी यात्रा करना बड़े साहस का काम है, पर उसका अपना आनंद भी है। इस पुस्तक में अत्यन्त मनोरम तथा प्राकृतिक दृष्टि से बहुत ही समृद्धिशाली लद्दाख प्रदेश का इतना सजीव वर्णन है कि पाठक स्वयं लेखक के साथ-साथ वहाँ की यात्रा कर लेता है।

इस पुस्तक को पढ़कर यात्रा-प्रेमियों को तो आनंद आयेगा ही, सामान्य पाठकों का भी ज्ञानवर्द्धन होगा।

लद्दाख-यात्रा की डायरी

हिमालय के एक दुर्गम प्रदेश की रोमांचकारी यात्रा का
सजीव वर्णन

लेखक
लेफ्टिनेंट कर्नल सज्जनसिंह

१९५५
सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

पहली बार : १९५५
मूल्य अढ़ाई रुपये

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

प्रकाशकीय

हिन्दी में यात्रा-साहित्य का बड़ा ही अभाव है। कुछ पुस्तकें निकली हैं; लेकिन उनकी सामग्री और छपाई इतनी आकर्षक नहीं है कि पाठकों को उनसे विशेष प्रेरणा मिले। इसी कमी को दूर करने के लिए हमने यात्रा-साहित्य प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। पहली पुस्तक 'हिमालय की गोद में' निकाली है, जिसमें गंगोत्री-यमुनोत्री की यात्रा का वर्णन है। दूसरी पुस्तक 'जय अमरनाथ' प्रकाशित की है, जिसमें काश्मीर-स्थित अमरनाथ की यात्रा का रोचक हाल है।

हमें हर्ष है कि तीसरी पुस्तक लद्दाख पर निकल रही है, जहाँ जाने का बहुत कम लोग साहस कर पाते हैं। इस पुस्तक को पढ़कर पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि वास्तव में यात्रा कितनी कठिन है और वहाँ जाने के लिए कितने परिश्रम, धीरज तथा कष्ट-सहिष्णुता की आवश्यकता है। लेखक स्वभावतः फक्कड़ हैं और मुसीबतों से घबराते नहीं हैं। फिर भी पाठक देखेंगे कि कई स्थानों पर उनका भी हौसला पस्त पड़ गया था।

लेखक शिकार खेलने के लिए उस बीहड़ और जनशून्य प्रदेश में गये थे; लेकिन उन्होंने यात्रा का इतना विशद वर्णन किया है कि उसमें वहाँ की भौगोलिक स्थिति के साथ-साथ वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य, लोगों के रहन-सहन और व्यवहार आदि पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। एक प्रकार से लद्दाख-प्रदेश की झाँकी इन पृष्ठों में मिल जाती है।

लेखक की शैली बड़ी प्रभावशाली है और यही कारण है कि उनके वर्णन बड़े ही रोचक बन पड़े हैं। कोई-कोई चित्र तो इतना सजीव है कि पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है, मानों हम स्वयं अपनी आँखों से उस चित्र को देख रहे हैं।

इस पुस्तक की एक बड़ी खूबी यह है कि यात्रा का यह यथार्थ वर्णन है। लेखक ने जो कुछ अपनी आँखों से देखा, भला या बुरा, उसमें बिना नमक-मिर्च लगाये उसे ज्यों-का-त्यों उपस्थित कर दिया। इस दृष्टि से यह

यात्रा-विवरण बहुत ही प्रामाणिक है।

जिस समय लेखक इस दुर्लभ यात्रा पर गये थे, उस समय वह ओरछा-राज्य के दीवान थे, परन्तु देश के स्वतन्त्र हो जाने पर ओरछा-राज्य का विंध्य-प्रदेश मे विलय हो गया और अब वह एक स्वतन्त्र नागरिक के रूप में मध्यभारत के मंदसौर नामक स्थान पर खेती-बारी का काम कर रहे हैं।

हमें आशा है कि इस पुस्तक को पढ़कर न केवल पाठकों का मनोरंजन होगा, अपितु उनको एक नये प्रदेश की जानकारी भी मिलेगी और वहाँ जाने की प्रेरणा भी।

पुस्तक में कई सुन्दर चित्र दिये गए हैं, जिससे उसकी सजीवता और भी बढ़ गई है।

—मंत्री

भूमिका

लद्दाख-यात्रा का निश्चय किस प्रकार हुआ, इसके पीछे एक छोटी-सी कहानी है। सन् १९३६ के जून की बात है। मैं रायपुर (मध्यप्रदेश) से शिकार खेलकर लौटा था। सन्ध्या समय श्रीमान् ओरछेश की सेवा में पहुंचा और अपनी यात्रा का हाल सुनाया। उस समय दो-तीन अंग्रेज महाशय और एक महिला भी बैठी थी। शिकार का हाल सुनाते-सुनाते जब मैंने कहा कि साढ़े इक्यावन इंच के सींग का एक अरना भैसा भी मारा था, परन्तु अरना भैंसा मध्यप्रदेश में मारना मना है, इसलिए वहां के जंगल-विभाग के अधिकारियों ने सींग और चमड़ा ले लिया और मुक-दमा चला दिया है तो उक्त महिला से न रहा गया। बोली, "क्या आपको शिकार का शौक है?"

मैंने कहा, "जी हाँ! शौक तो है।"

महिला बोलीं, "तब तो आपके पास शिकार की ट्राफियां[1] बहुत-सी होंगी?"

मैंने कहा, "सिवा छह-सात चीतल के सींगों के, जो किसी कोने में पड़े होंगे, मेरे पास कुछ नहीं है।"

बातों के सिलसिले में जब महाराज और मैंने अपने विचार प्रकट किये कि हम लोग, जहांतक हो सके, भारतवर्ष के जानवरों की ट्राफियों का अच्छा संग्रह करना चाहते हैं तो उक्त महिला ने कहा, "और सब ट्राफी आप हिन्दुस्तानियों के बस की है, परन्तु लद्दाख के शिकार और उसमें भी ओविस अमोन[2] को मारने का बूता आपका नहीं है।"

महिला की बात चुभ गई और उसी घड़ी से मैंने मन में ठान लिया कि कुछ भी हो, ओविस अमोन की शिकार अवश्य करनी है। इसी उधेड़-बुन

[1] मारे हुए जानवरों के सींग, चमड़ा, खाल आदि।

[2] तिब्बत की एक प्रकार की बड़ी जंगली भेड़, जिसे लद्दाखवाले न्यान कहते हैं।

में तिब्बत और लद्दाख के शिकार के विषय की जितनी भी पुस्तकें मिल सकीं, पढ़ डालीं और यह निश्चय किया कि गढ़वाल के नीतीमाणा दर्रे से मानसरोवर तथा कैलास पहुँचा जाय और वहाँ से सिंधु के किनारे-किनारे शिकार खेलते हुए लेह, फिर मध्य एशिया के ट्रीटी-मार्ग से श्रीनगर (काश्मीर) पहुँचकर यात्रा समाप्त की जाय।

मैंने अपने विचार बुन्देलखण्ड के पॉलिटिकल एजेण्ट कर्नल वार्टन साहब के सामने प्रकट किए और उनसे अनुरोध किया कि वह तिब्बत राज्य से मेरे लिए राहदारी और शिकार की स्वीकृति मंगवा दें। लिखा-पढ़ी में लगभग एक वर्ष लगने के पश्चात् उत्तर मिला कि मैं कैलास से लद्दाख की यात्रा तो कर सकता हूँ, परन्तु शिकार की स्वीकृति नहीं दी जायगी। कुछ ही महीनों के पश्चात् मेजर कैम्पबेल पॉलिटिकल एजेण्ट हो गए। वह बड़े मिलनसार आदमी थे और अच्छे शिकारी भी। उन्हें जब मैंने अपनी शिकार की योजना बताई तो बड़े खुश हुए और मुझे आश्वासन दिया कि वह मेरे लिए भरसक प्रयत्न करेंगे और मुझे तिब्बत से शिकार का परवाना अवश्य मँगवा देंगे। फिर एक वर्ष की लिखा-पढ़ी के बाद सन् १९३८ में वही उत्तर मिला। मेजर साहब ने अपने पत्र-व्यवहार की पूरी फ़ाइल दिखाई, जिससे मुझे भी विश्वास हो गया कि तिब्बतवाले शिकार की स्वीकृति कभी न देंगे। मैंने जब अपनी शिकार की जिज्ञासा प्रकट की तो कर्नल साहब ने समझाते हुए कहा, "तुम्हें ओविस अमोन ही तो मारना है। यह जानवर काश्मीर स्टेट के लद्दाख-प्रान्त में मिल सकता है। वहाँ क्यों नहीं जाते? मैं काश्मीर के रेजीडेण्ट को लिखकर सब ठीक कराये देता हूँ।"

मेजर साहब की बात मान ली गई, परन्तु एक शर्त के साथ—अर्थात् लद्दाख की शिकार के परमिट (स्वीकृति-पत्र) में 'चांग चेन मो' का उल्लेख अवश्य होगा। तिब्बत का हिरन केवल 'चांग चेन मो' नदी के किनारे मिलता है। इस किस्से में प्रति वर्ष छह शिकारियों को परमिट दिया जाता था। जब कर्नल साहब ने लिखा-पढ़ी आरम्भ की तो मैंने भी काश्मीर के अफ़सरों का परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न किया और भाग्यवश वहाँ के गेम-वार्डन से भी पत्रों द्वारा परिचय कर लिया। गेम-वार्डन मेरे एक मित्र

के रिश्तेदार निकले। उन्होंने मुझे मेरी इच्छानुसार आश्वासन ही नहीं दिया, वरन् १६३६ के मार्च में परमिट भी भेजने का वादा कर लिया।

१६३८ के दिसम्बर में मुझे पता चला कि मेरी लद्दाख-यात्रा के विषय में सब तय हो गया है। अब रुपये और साथी की चिन्ता हुई। रुपयों की चिन्ता तो स्वाभाविक थी, परन्तु साथी की चिन्ता लगाई घर-वालों ने। सब कहने लगे कि इतनी लम्बी और दुष्कर यात्रा में साथी होना अनिवार्य है। कई मित्रों से, जो शिकार के शौक़ीन थे, बात-चीत की गई और समझाया गया, परन्तु चार महीने की यात्रा और उस पर डेढ़-दो हजार का खर्च करने के लिए कोई तैयार न हुआ। आखिर कुँवर हरबलसिंहजी साथ चलने के लिए तैयार हो गये। मार्च के दूसरे सप्ताह में दोनों के नाम के परमिट आ गये, जिसके लिए प्रत्येक को एक सौ पचहत्तर रुपये देने पड़े। परमिट १० अप्रैल, १६३६ से १० नवम्बर, १६३६ तक का था, जिसमें पृथक्-पृथक् जाति के सत्ताईस जानवर मारने का उल्लेख था। 'चांग चेन मो' के लिए १५ जुलाई से १४ नवम्बर, तक शिकार खेलने की आज्ञा थी। हम दोनों ने तय किया कि जून के प्रारम्भ में प्रस्थान किया जाय और एक महीना काश्मीर में रहकर जुलाई के शुरू में हिमालय पार किया जाय। किताबें पढ़-पढ़कर जो कुछ उधर जाने के लिए बातें जान सके, उसीके अनुसार कई फुटकर वस्तुएं, जैसे गरम पानी की रबर की थैली, थर्मामीटर, कुतुबनुमा, थर्मस, स्टोव, औषधियों की पेटी, काले चश्मे, दस्ताने, कीलें लगाने के लिए मोटे तले के बूट आदि खरीदने के लिए अप्रैल में बम्बई पहुँचा और सिवा ऊँचाई देखने के यन्त्र के सब वस्तुएँ खरीद लाया। अप्रैल के अन्ततक हम दोनों तैयार हो गये। इसी बीच एक समाचार-पत्र में पढ़ा कि उस वर्ष बर्फ अधिक गिरने के कारण ट्रीटी-रोड, जो लद्दाख जाती है, मई में न खुल सकेगी। जोजीला[1] बर्फ से भरा पड़ा है।

गेम-वार्डन से पत्र-व्यवहार करने पर पता चला कि १५ जून तक

[1]ला तिब्बती में दर्रे को कहते हैं। लद्दाख आते समय हिमालय को इसी दर्रे से पार किया जाता है।

मार्ग खुल जायगा, परन्तु फिर भी कहीं-न-कहीं जोजीला पर बर्फ पर होकर जाना पड़ेगा।

२३ जून को हमलोगों ने टीकमगढ़ से यात्रा प्रारम्भ की। इस यात्रा का वर्णन मैंने आगे के पृष्ठों में तिथिक्रम से किया है। काश्मीर तक का हाल बहुत संक्षेप में दिया है, कारण कि काश्मीर के विषय में कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

यह यात्रा आज से लगभग सोलह वर्ष पूर्व की गई थी। तबसे अब-तक स्थिति में काफी अन्तर पड़ गया है। उस समय देश परतन्त्र था और बहुत-सी विवशताएँ थीं। अब देश स्वतन्त्र हो गया है। फिर भी मैंने उस यात्रा का ज्यों-का-त्यों वर्णन इस डायरी में किया है, जिससे पाठकों को उस समय की स्थिति का पूरा चित्र और परिचय मिल जाय। वस्तुतः लद्दाख की भौगोलिक स्थिति में बहुत विशेष फर्क नहीं पड़ा है और न नियम-कायदों में परिवर्तन हो जाने पर भी वहाँ के लोगों के रहन-सहन आदि में खास अन्तर आया है। इसलिए यह यात्रा-विवरण आज भी ताजा जान पड़ेगा।

मुझे विश्वास है कि पाठकों को यह डायरी रुचिकर प्रतीत होगी और इसे पढ़कर वे मेरे साथ एक नये प्रदेश में भ्रमण कर लेंगे।

मन्दसौर (मध्यभारत)
२ अक्तूबर, १९५५

—सज्जनसिंह

विषय-सूची

लद्दाख-यात्रा की डायरी

लद्दाख-यात्रा की डायरी

: १ :

तैयारी और प्रस्थान

शुक्रवार, २३ जून

आज प्रातःकाल से ही सामान बाँधना प्रारम्भ हुआ। किसी पुस्तक में पढ़ा था कि श्रीनगर में अच्छी छोलदारी नहीं मिलती। इसलिए और सामान के साथ-साथ एक छोलदारी भी साथ ले ली। एक रायफल, एक छर्रे की दुनाली, दूरबीन, कैमरा, स्टोव, थर्मामीटर और कुतुबनुमा आदि जितनी भी आवश्यक वस्तुएँ थीं, पेटी में बन्द कर दोपहर के समय ओरछा-नरेश से विदा माँगने गया। उन्होंने आज्ञा दी कि यात्रा की विस्तृत डायरी लिखूँ और जहाँ-कहीं अवसर मिले, डाक द्वारा उक्त डायरी को भेजता जाऊँ। चार बजे टीकमगढ़ से मोटर द्वारा प्रस्थान किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि घरवालों ने अब भी हमें रोकना चाहा, परन्तु जैसे-तैसे पीछा छुड़ाकर हम लोग चल ही दिये। कुण्डेश्वर में पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी से मिलने गए तो वहाँ पर श्रीरामजी शर्मा से भेंट हो गई। थोड़ी देर शिकार के विषय में गपशप करके पाँच बजे ललितपुर स्टेशन के लिए चल दिये। साढ़े सात बजे दिल्ली-एक्सप्रेस से दिल्ली के लिए रवाना हुए।

सबेरे छह बजे दिल्ली पहुँचे और स्टेशन पर रिटायरिंग रूम में ठहरे। नहा-धोकर भोजन किया, फिर शहर गये। बन्दूकों के कारतूस और अन्य वस्तुएँ खरीदकर स्टेशन लौटे। मैं तो सामान को पेटी में बन्द कर रहा था और अपने साथी दाऊसाहब (हरचलसिंहजी) से कहता जा रहा था कि यहाँ से श्रीनगर का वापसी टिकट ले लेना चाहिए। पंखा जोरों से चल रहा था और हम लोग गर्मी के मारे पसीने से लथपथ लौटे थे। दाऊसाहब 'हाँ', 'ठीक है'

आदि के अतिरिक्त कुछ बोलते ही न थे। मैंने झुंझलाकर कहा, "आपको हो क्या गया है ?" वह बोले, "बारह बजे से बुखार चढ़ा है। बुखार की हालत में बाजार में आपके साथ घिसट रहा था। अब मैं सोऊँगा। आप टिकट और सामान बुक कराने का प्रबन्ध कर लीजिये।"

बाजार से लाये सामान को पेटी में रखकर कुली को बुलाया और सब सामान को लेकर, नीचे उतरकर श्रीनगर का वापसी टिकट खरीदने के पश्चात्, सामान को बुक करा दिया। इस सब में लगभग तीन घण्टे लग गये। पाँच बजे कमरे में लौटकर पूछने पर दाऊसाहब ने बताया कि खूब पसीना आ रहा है और बुखार भी उतर गया। रात को नौ बजे की गाड़ी से चल दिये।

वजीराबाद में गाड़ी बदलकर[1] लगभग तीन बजे जम्मू पहुँचे। हम दोनों साफ़ाधारी थे और वह भी राजपूती ढंग का। कुलियों की भीड़ लग गई और बात-की-बात में हमारा सामान उतारकर मोटर-एजेन्सी के आफिस में, जो स्टेशन के पास ही था, ले भागे। वे लोग हमें, हमारे साफों और सामान को देखकर किसी देशी राज्य के राजा समझते थे। मोटर-एजेंसी के बाबू से पूछने पर मालूम हुआ कि उनकी लारी दूसरे दिन सबेरे चलेगी, परन्तु हम बीस रुपये अपने पास से दे दें तो हमें एक मोटर मिल जायगी, जिससे हम तुरन्त यहां से विदा हो जायंगे। मैंने दाऊ-साहब की तबियत ठीक न देखकर यही उचित समझा कि आज ही चल दिया जाय। बीस रुपये देकर मोटर की। ड्राइवर से पूछने पर मालूम हुआ कि कस्टम के नाके से यदि हमने शीघ्र छुटकारा पा लिया तो सम्भव है कि अँधेरा होने से पूर्व बनिहाल पार करके श्रीनगर रात को पहुँच जायँ। दिन डूबने के बाद बनिहाल के चौकीवाले रास्ता बन्द कर देते हैं।

कस्टम के नाके पर यह कहने पर भी कि हम काश्मीर राज्य के कस्टम इन्स्पेक्टर जनरल के मित्र हैं, हमें आधा घण्टा लग ही गया। हमारा सामान अन्य यात्रियों की तरह देखा गया, दो-तीन जगह हस्ताक्षर भी करने पड़े तब कहीं छुटकारा मिला। हाँ, राज्य के मेहमानों को जिनके

---

१. यह यात्रा भारत-विभाजन से पहले की गई थी।

लिए पूर्व ही से सूचना थी तथा यूरोपियन यात्रियों को सबसे पहले बिना किसी जाँच-पड़ताल के जाने दिया गया।

जम्मू काफ़ी गर्म स्थान है। यहाँ से मीलों पहाड़ प्रायः छोटी-छोटी झाड़ियों से ढके थे और सूखे मालूम होते थे, परंतु कुद, जो जम्मू से ६६ मील है, पहुँचने पर चीड़ के वृक्ष मिलने लगे और ठंडक हो गई। संध्या हो चली थी। कुद ५४०० फुट की ऊँचाई पर है। अँधेरा होते-होते कुद से १० मील चलकर बटोत के डाक बँगले में जाकर ठहरे। यहाँ का बँगला बहुत अच्छा है तथा खाने-पीने का समुचित प्रबन्ध है। बटोत ५१०० फुट की ऊँचाई पर है।

सोमवार, २६ जून

रात को ठंडक अच्छी होने के कारण मुझे तो खूब नींद आई, परन्तु दाऊसाहब को रातभर बुखार रहा। सबेरे चाय पीकर आगे बढ़े। मोटर के चलते ही दृश्य अच्छे नजर आने लगे। यहाँ से ठीक रामबन तक, जो चिनाब के किनारे बसा है, उतार है और साथ ही पहाड़ों और नदी का दृश्य मनोरम है। आगे बनिहाल गाँव आया। यहाँ थोड़ी देर रुककर आगे चले। बनिहाल से कुछ ही फासले से चढ़ाई प्रारम्भ होती है, जो कई मील चढ़ने के बाद बनिहाल की पीरपचाल सुरंग पर पहुँचती है। यह सुरंग लगभग ९००० फुट की ऊँचाई पर है। जब दृश्य अच्छे आने लगे और कहीं-कहीं चकोर दिखाई दिये तो तबीयत खुश हो गई। अभी-तक कहीं-कहीं बर्फ गला भी नहीं था। सुरंग के पास पहुँचते-पहुँचते काफी जाड़ा लगने लगा, यहाँतक कि हमें कम्बलों की शरण लेनी पड़ी। सुरंग के मुहाने पर फौजी गारद लगा था। ड्राइवर ने यहाँ गाड़ी रोक दी और कहा कि उतर कर थोड़ा दृश्य देख लीजिये। तबतक चढ़ाई से गर्म हुआ गाड़ी का इंजन भी ठंडा हो जायगा। सुरंग ६६० फुट लम्बी है।[1]

सुरंग पार कर ड्राइवर ने पुनः गाड़ी रोकी और कहा कि काश्मीर के दृश्य भी देख लीजिये। प्रातःकाल का समय था, इससे साफ दिखाई

[1] १. अब तो बनिहाल की बस्ती के पास से एक और सुरंग तैयार हो रही है, जिसके तैयार होने पर श्रीनगर का रास्ता बारहों महीने चालू रहेगा।

नहीं दे रहा था। हमने रुकना पसन्द नहीं किया। कुछ ही मील के उतार के बाद काश्मीर की तलहटी में पहुंचे। अब पहाड़ों और मैदानों में वृक्षों के घने होने के कारण खूब हरियाली-ही-हरियाली दिखाई देती थी। झेलम के सहारे-सहारे सड़क श्रीनगर तक जाती है।

: २ :
श्रीनगर में

लगभग एक बजे श्रीनगर पहुंचे। एक होटल में ठहरे। एक तो हम-लोग श्रीनगर से अपरिचित थे, दूसरे आज दोपहर से ही दाऊसाहब को बुखार का जाड़ा लगने लगा था। नौकर ने हमारे बिस्तरे फैलाने के लिए पूछा तो मैंने केवल दाऊसाहब का बिस्तरा लगाने को कहा। हम लोगों के पास बन्दूकें और दूसरा सामान काफ़ी था। दाऊसाहब कम्बल और रजाई में जाड़े के मारे कांप रहे थे और मैं मारे गर्मी के कमरे में इधर-उधर टहल रहा था। अपने साथी को कोसता था कि भले आदमी ने टीकम-गढ़ में क्यों नहीं बताया कि इन्हें बुखार आता है। बुखार ठीक होने के बाद चलते। इस अनजान जगह में न मालूम कितने दिन पड़ा रहना पड़ेगा और व्यर्थ का कष्ट होगा। जबतक पूरे स्वस्थ नहीं हो जाते, ढाई-तीन महीने की यात्रा, वह भी टट्टू पर, बीहड़ स्थानों में, करना मूर्खता होगी।

दाऊसाहब को शाम को डाक्टर को दिखाया। उन्होंने दवाई देकर सान्त्वना दी कि कोई फ़िक्र की बात नहीं, शीघ्र आराम हो जायगा और एक सप्ताह में यात्रा करने के लायक हो जायंगे।

होटल गंदा होने के कारण उसे बदला। दूसरे होटल में सामान जमा कर भोजन किया। तीन-चार दिन की थकावट थी। बिस्तर पर लेटते ही नींद आ गई।

मंगलवार, २७ जून

सवेरे उठे तो मित्र की तबीयत थोड़ी अच्छी थी।

दिन में सबसे पहले मैं अपने एक मित्र से मिलने गया, जो पन्ना के

रहनेवाले थे। काश्मीर में केवल यही मेरे परिचित थे। बंगले पर पहुंचने पर मालूम हुआ कि वह किश्तवार की ओर दौरे पर गये हैं और आठ दिन में लौटेंगे। वापसी में कुछ अखबार और नक्शे खरीदे। एक तो पूरे काश्मीर राज्य का तथा दूसरा लद्दाख का। पास ही आर्मी एजेन्सी थी। श्रीनगर में कई एजेन्सियां हैं, जो यात्रियों के लिए शिकार, भ्रमण, हाउस-बोट, मकान आदि का प्रबन्ध करती हैं। एजेन्सी में जाकर मैनेजर से मिला और उनको अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। वे सब प्रबन्ध करने के लिए तैयार हो गये और यहांतक कहा कि अस्कर्दू के राजा उनके मित्र हैं, जो अपनी जागीर में मारखोर और आयवेक्स[1] की शिकार की व्यवस्था कर देंगे। मैं उनसे अगले दिन सोच-विचारकर अपना निर्णय बताने को कहकर विदा ली। यहां से मैं गेम-वार्डन (शिकार अफसर) के दफ्तर में पहुंचा।

बातचीत के सिलसिले में मैंने शिकार-अफसर से कहा कि मध्यप्रदेश के वन विभाग में मेरे एक मित्र हैं। वह कहा करते थे कि काश्मीर-राज्य के वन-विभाग में उनके एक सम्बन्धी हैं। वह बोले, "मुझे आपके विषय में आपके मित्र ने लिखा है। अभी तो मुझे चीफ कन्सरवेटर के पास जाना है, अतः क्षमा करें। कल ग्यारह बजे आइये। लाइसेन्स आदि कागजी कार्यवाही सब ठीक कर दूंगा।" उन्होंने काश्मीर की शिकार की चार-पांच सचित्र पुस्तिकाएं दीं और चीफ कन्सरवेटर से मिलने के लिए चल दिये।

लगभग दो बजे मैं होटल लौटकर आया और सब समाचार डाक-साहब को सुनाया। अभीतक उन्हें बुखार नहीं चढ़ा था। वह लेटे थे और मैं पत्र व डायरी लिखने में व्यस्त हो गया। इतने में किसी ने आकर कहा, "हुजूर, सलाम।" देखा तो कमरे के दरवाजे पर प्लसफोर का गरम सूट पहने तथा पट्टी और साफा बांधे एक काश्मीरी खड़ा है। वह बोला, "मेरा नाम मोख्ताजीन है, मुझे गेम-वार्डन ने कर्नल सज्जनसिंह के लिए नौकर रक्खा है। क्या आप ही कर्नलसाहब हैं?" मेरे 'हां' कहने

१. एक प्रकार का जंगली बकरा, जिसे काश्मीर में 'कैल' और लद्दाख में 'इस्किन' कहते हैं।

पर उसने अपना बस्ता खोला और प्रमाण तथा प्रशंसापत्र छाँटने लगा। मैंने कहा कि मुझे तुम्हारे पत्रादि देखने की आवश्यकता नहीं। गेम-वार्डन ने तुम्हारी सिफारिश की, यही काफ़ी है। इसपर उसने प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट के पुत्र का चीन देश के सेचुआन प्रान्त में 'जाइंट पण्डा'[1] की शिकार का पत्र तथा फोटो देकर कहा, "हुज़ूर, यह तो देख ही लीजिये। मैं केवल काश्मीर में ही नहीं, बल्कि चीन, वर्मा और मलाया में भी साहब लोगों के साथ शिकार के लिए गया हूँ।" मैं इस शिकार के ब्यौरे की पुस्तक पढ़ चुका था। अतः मोख्तालोन से विशेष बातें करने की आवश्यकता न थी। उसने मुझसे कहा कि पहले-पहल काश्मीर आनेवाले साहब इतनी लम्बी यात्रा शिकार के लिए नहीं करते। जब मैंने उसे बताया कि हम लोग तो लद्दाख जाने की ही ज़िद पर डटे हैं तो उसने हमारे शिकार के ब्लाकों के नम्बर पूछे। बताने पर उसने कहा, "आपके साथी का शापू का ब्लाक ठीक नहीं है। नं० ११ का ब्लाक लिया जाय। इसी प्रकार ओविस अमोन का मेरा ब्लाक नं० ८ ठीक नहीं, ६ लिया जाय।" इतने में दूसरा शिकारी रमजानखाँ आ गया। इसने भी वही बात कही कि पहले-पहल हम लोगों का लद्दाख जाना उचित न होगा। लेकिन मेरा वही उत्तर पाकर बोला, "हुज़ूर, हम तो लद्दाख जाने के लिए तरसते हैं। तीन महीने का सफर है, जिससे तनख्वा और इनाम काफ़ी मिलता है, लेकिन साथ ही हम यह भी नहीं चाहते कि आपको तकलीफ़ हो और दुबारा यहाँ आने का नाम ही न लें। अगर आपको तकलीफ नहीं हुई और शिकार अच्छा हो गया तो हम लोगों को हर साल आप लोगों से आमदनी होगी। हम तो यही कहेंगे कि अस्तोर, काजीनाग या कस्टवार में शिकार खेलिये।" इस पर भी जब हमने विचार न बदला तो रमजानखाँ ने मोख्तालोन के कथनानुसार हमारे ब्लाक बदलने की राय दी और कहने लगा, "हम लोग तो १६ तारीख से आपके इन्तजार में हैं। आपको देर क्यों हो गई?" हमने उत्तर दिया कि जबतक जोजीला खुलने की खबर न मिली, कैसे आते। रम-

---

१. जाइंट पण्डा एक प्रकार का छोटा भालू होता है, जो बाँस के जंगलों में रहता है। इसे मारना बड़ा कठिन समझा जाता है।

जानखाँ ने एक साहब का पत्र देकर कहा, "देखिये, मैं इस साहब के साथ मार्च के अखीर में लद्दाख गया था और ६ जून को लौटा हूँ। गजट में जोज़ीला खुलने की ख़बर व्यापारियों के लिए छपती है और उसी तारीख से राज्य की तरफ से किराये के कायदे लागू होते हैं। शिकारी लोग तो आधे मार्च से हिमालय पार करने लगते हैं। यह बात ज़रूर है कि बर्फ की वजह से घोड़ों के पाँव फिसलते हैं, जिससे पैदल जाना पड़ता है। जोज़ीला दिन में पार नहीं किया जा सकता, क्योंकि बर्फ पिघलने से ऊपर से बर्फ के बड़े-बड़े ढेले गिरते हैं। रात को पार करने में ठण्डी हवा का सामना करना पड़ता है। एक मर्तबा हिमालय पार होने पर शिकार भी निचाई पर और आसानी से मिल जाता है। ज्यों-ज्यों बर्फ पिघलता जाता है, शिकार ऊपर चढ़ता जाता है। इस वक्त बर्फ और सर्दी कम होगी, लेकिन चढ़ाई की तकलीफ़ ज्यादा होगी।" शिकार के ब्लाक बदलने के लिए रमजानखाँ ने भी वही नम्बर बताये जो मोहतजीन ने बताये थे।

दोनों शिकारियों को लद्दाख के लिए चल देने की पड़ रही थी। वे कहते थे कि जितनी देर होगी, उतनी ही ऊँचाई पर जाना होगा। भेड़-बकरीवाले भी ऊँची जगहों पर पहुँच जायंगे और जंगली जानवरों को छड़का देंगे। दोनों ने हमारा कुल सामान देखा और बताया कि और तो सब ठीक है, लेकिन एक काश्मीरी पट्टू का सूट बनवा लीजिये। जब हमने गरम कपड़े दिखाये तो उन लोगों ने कहा कि लद्दाख की यात्रा के बाद जितने भी कपड़े होंगे, हम पहन नहीं सकेंगे। इसलिए बढ़िया सूट और कपड़े क्यों खराब किये जायँ। यही हाल जूतों का बताया, साथ ही हमें तैयार होकर एक एजेन्सी में चलने को कहा, ताकि खाना पकानेवाले नौकर, तम्बू और खाने-पीने आदि के सामान का सब प्रबन्ध शीघ्र हो सके। ये बातें हो ही रही थीं कि इतने में गेम-वार्डन का चपरासी आया और बोला कि साहब थोड़ी देर में मिलने के लिए आ रहे हैं।

पाँच बजे के करीब शिकार-अफसर आये। उनसे ब्लाक बदलने के लिए हमने शिकारियों के कथनानुसार कहा। उन्होंने नोट कर लिया और शिकारियों से कहा, "ये लोग हमारे मेहमान हैं। अगर शिकार ठीक न हुआ तो

दोनों का लाइसेन्स ज़ब्त कर लूँगा।" फिर हमसे बोले, "यदि किसी प्रकार की गड़बड़ दिखाई दे तो इनका वेतन काट लीजिये।" वह चले गये। कहते गये कि वह कल बाहर जा रहे हैं, हम लोग आफिस न जायं। हमारे परमिट और लद्दाख के पास आदि परसों तक तैयार मिलेंगे। अफ़सर के हम लोगों के होटल पर आकर मिलने का दोनों शिकारियों पर काफ़ी प्रभाव पड़ा। गेम-वार्डन ही शिकारियों को लाइसेन्स देते थे, जिसके बिना कोई भी शिकारी, साहब लोगों के साथ शिकारी बनकर नहीं जा सकता।

लगभग छः बजे मैं दोनों शिकारियों को साथ लेकर एक एजेन्सी की दुकान पर गया। दुकान में विशेष कुछ दिखाई न दिया। उसके मालिक ने हमारे शिकारियों द्वारा हमारी यात्रा का उद्देश्य सुनकर मुझे एक छपी हुई सूची दी और कहा, "इसमें से जिन-जिन चीजों की जरूरत हो, उनपर निशान लगा दें। कितनी भेजना, यह हमारा काम है। बावरची से पूछकर सब सामान याकदानों[1] में बन्द मिलेगा।" सूची लम्बी थी। पढ़कर मैंने कहा, "इसमें तो ज्यादातर अंग्रेजों की जरूरत की चीजें दी हुई हैं। मैं तो हिन्दुस्तानी हूँ। मुझे तो तरकारी और रोटी चाहिए।" फिर भी शिकारी और खानसामा आदि के समझाने पर मैंने बिस्कुट, चाकलेट और मक्खन के कुछ डिब्बे रखने को कह दिया। वे बोले कि यदि आप खर्च न करेंगे तो उसी दाम पर वापस हो जायँगे, लेकिन ले चलने में हर्ज क्या है? चाय के सामान पर बड़ी जिद हुई। मैंने कहा कि हम दोनों चाय नहीं पीते। फिर चाय की सब चीजों का बोझा बेकार ले जाने से खर्च ही होगा। जब उन लोगों ने कहा कि लद्दाख में चाय का पीना जरूरी है तो डर के मारे मैं राजी हो गया, परन्तु मन में यही समझता रहा कि नौकरों को चाय पीनी होगी, इसी से यह प्रपंच रचा गया है। इसके पश्चात् कपड़ों की बात आई। एक सूट, दो कमीजें, पाजामे, दस्ताने आदि का इंतजाम करने को कहा। जब बिस्तरे की चर्चा आई तो एजेन्ट ने कहा कि लेह तक खास ठंड न होगी, इसलिए वहींपर जाकर दो

---

१. याकदान लक्कड़ की पेटी होती है, जिसपर चमड़ा चढ़ा रहता है और कड़े लगे रहते हैं, जिससे वह टट्टू पर आसानी से कसी जा सकती है।

कम्बल और दो नमदे ख़रीद लीजिये। लेह तक हमारे पास का एक-एक कम्बल काफ़ी होगा। जब मैंने तम्बू-किराया, सफ़र-खर्च आदि के तखमीने की बात कही तो वे बोले कि कल दस बजे हमें पूरा हिसाब दे देंगे।

संध्या समय लौटकर होटल पहुंचा और दोनों शिकारियों ने दूसरे दिन नौ बजे सवेरे आने को कहकर विदा ली।

बुधवार, २८ जून

आज डाक्टरसाहब की तबीयत अच्छी है, नित्य नियम से नौ बजे तक फ़ारिग हुए। इतने में दोनों शिकारी आ गये। कुछ रुपये नक़द तथा पैट्रोल देने की शर्त पर दिनभर के लिए होटल की मोटर किराये पर ली और हम चारों सामान के लिए एजेन्सी में पहुंचे। एजेन्ट ने तीन महीने की शिकार का पूरा हिसाब बनाकर तैयार कर रखा था। लगभग ११ बजे गेम-वार्डन के दफ्तर में पहुंचे। असिस्टेण्ट गेम-वार्डन उपस्थित थे। मेरा अमन का ब्लाक तो वह बदल न सके, परन्तु डाक्टरसाहब का आयवैक्स का ब्लाक बदल दिया।

लगभग बारह बजे पुनः एजेन्ट के पास पहुंचे तो हमारे लिए एक-एक खानसामा और एक-एक नौकर तैयार मिले। उन्हें सामान बाँधने की आज्ञा देकर एक बजे होटल पहुँचे। खाना खाकर श्रीनगर के दर्शनीय स्थान देखने के लिए चल पड़े। चश्माशाही, निशातबाग़, शालामार बाग़, हरवन आदि सबके चक्कर लगाये। सन्ध्या समय पुराने शहर के सरकारी बाग़ में कुछ देर घूम कर वापस आये।

लगभग ८ बजे होटल पहुँचे। अंधेरा होता जा रहा था। शिकारी दूसरे दिन सवेरे आने को कहकर चले गये।

गुरुवार, २९ जून

आज सवेरे डाक्टरसाहब ने बताया कि वह अब बिलकुल ठीक हैं। अतः कल चल दिया जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि डाक्टरसाहब से हम बराबर मिलते थे और उन्होंने ३० तारीख को जाने की अनुमति दे दी थी। आठ बजे के लगभग दोनों शिकारियों ने आकर हमारे सामान को पुनः देखा और शस्त्र, दूरबीन, दवाई की पेटी, थर्मस इत्यादि के अतिरिक्त कपड़े, बूट, छोलदारी आदि को यहीं छोड़ देने को कहा। छोलदारी

भारी बहुत थी। हमें खेद हुआ कि व्यर्थ में यह सामान लाये और रेल-किराया दिया, परन्तु हम दोनों में से किसी को अनुभव न था। श्रीनगर के सिले कपड़े हमने पहन लिये और बाकी का सामान, और दोनों शिकारी, एजेन्सी में छोड़कर ग्यारह बजे लौटे। अब हमारे पास केवल एक बिस्तर और एक छोटी पेटी थी, जिसमें दूरबीन, दवाई, हजामत बनाने का सामान, साबुन और मंजन था।

हम गेम-वार्डन के दफ्तर में पहुंचे। शिकार-अफसर लौट आये थे। मिले। हमें लाइसेन्स तथा लद्दाख जाने के पास आदि दिये। साथ ही एक चिट्ठी लद्दाख के शिकारियों के जमादार के नाम भी दी, जिसमें लिखा था कि वह हमें पूरी सहायता दें।

शुक्रवार, ३० जून

खाना खाकर एक बजे एजेन्सी में जाकर सामान का निरीक्षण किया। सब सामान याकदानों में बन्द था। एजेन्ट ने सारे सामान की सूची दी और हम दोनों को तीन-तीन सौ रुपये, जिसमें अधिकांश चिल्लर[1] थी, दिये। जब सामान लारी में लादा जाने लगा तो रमजानखाँ बोला, "हुजूर, घोड़े के लिए एक-एक काठी खरीद लीजिये, उससे आपको आराम मिलेगा। लद्दाख में लक्कड़ की काठी होती है, जिसपर आप बैठ भी न सकेंगे।" हमारे अन्दाज से अधिक खर्च हो रहा था। इसलिए हमने कह दिया कि लद्दाखी यदि लक्कड़ की काठी पर चढ़ सकते हैं तो हम कौन रुई के बने हैं, जो न चढ़ पायेंगे। रमजानखाँ बोला, "हुजूर, यहाँपर आपको दस-दस रुपये में काठी मिल जायगी, लेह में एक तो मिलना ही मुश्किल है, अगर मिल भी गई तो मुँहमाँगे दाम देने होंगे।" इतने पर भी जब हम न माने तो वह चुप हो गया। एजेन्ट ने बताया कि लारी द्वारा वायल के पुल तक जाना होगा, जो १७ मील है। वहाँपर टट्टू तैयार मिलेंगे, जो हमें छः मील पर कंगन ले जायेंगे। आज की रात हमें कंगन रहना था। हमारी टोली में ये लोग थे :

मेरा शिकारी :	मोखतालोन
खानसामा :	गफ्फारा

१. चिल्लर—इकन्नी, दुअन्नी आदि

नौकर :	हबीबा
दाऊसाहब का शिकारी :	रमजानखाँ
खानसामा :	समदी
नौकर :	अलिया

: ३ :

नये-नये दृश्य

लगभग छः बजे सिंध[1] के वायल पुल पहुंचे। टट्टुओं पर सामान लादकर पहले चलता किया। हम दोनों के लिए १४ टट्टू सामान लादने के लिए और दो सवारी के लिए थे। इसी पुल के पास काश्मीरी पण्डितों की एक देवी है, जिन्हें 'खीर भवानी' कहते हैं। सामान के चले जाने के एक घंटा बाद हम लोग चले। लगभग दो मील गये होंगे कि एकाएक बादल उमड़ आये। काफी वर्षा हुई। हमारी बरसाती बिस्तरों में थी, अतः पानी में सराबोर हो गये और जाड़ा भी लगने लगा। मुझे यह फिक्र हुई कि दाऊसाहब को कहीं फिर बुखार न आ जाय। पानी बन्द हो जाने पर शरीर में गर्मी लाने के लिए शेष चार मील पैदल चलकर दिन डूबते-डूबते कंगन के डाक-बंगले पर पहुंचे। सामान भी भीग चुका था। अतः शिकारियों ने यह सलाह दी कि तम्बू के बजाय डाक-बंगले में ठहरने से हमें आराम मिलेगा। कंगन का डाक-बंगला काफी बड़ा है। यहाँपर श्रीनगर के शौकीन प्रायः एक-दो दिन के लिए आ जाया करते हैं। तीन कमरे भरे थे। चौथा खाली हमें मिल गया।

सूखे कपड़े पहनकर बरामदे में डट गये। बंगले पर एक मेज लगाकर कुछ स्त्री-पुरुष ताश खेल रहे थे। हम दोनों को चुपचाप देखकर एक सज्जन हमारे पास आये। बातचीत से मालूम हुआ कि वह काश्मीर राज्य की खानों के इंजीनियर हैं तथा दूसरे ठेकेदार, और उनके बाल-बच्चे हैं। हमने भी अपना परिचय तथा यात्रा का उद्देश्य बताया। थोड़ी देर में हम

१. बड़ी सिंध नहीं, काश्मीर की एक छोटी नदी

दोनों को भी पार्टी में सम्मिलित कर लिया गया।

शनिवार, १ जुलाई

"हुजूर, सलाम, चाय तैयार है।" की आवाज पर हम दोनों उठ बैठे। देखा तो पलंग की बगल में दोनों के लिए चाय तैयार थी और शिकारी खड़े थे।

शौच आदि से निवृत्त होकर चाय पीने लगे तो हमें बताया गया कि खाना तैयार है और पूछा कि क्या हम नाश्ता करेंगे? हमने इन्कार कर दिया। एक शिकारी और एक नौकर, जिसके पास थर्मस में हमारा खाना था, हमारे साथ रह गये। शेष सामान के साथ आगे चल दिये। लगभग साढ़े छः बजे हम भी चल दिये। आज हमें गूंड पहुँचना था। उस समय आकाश साफ था और कल की वर्षा के कारण ठंडक भी अच्छी थी। हमारा मार्ग सिंध के किनारे-किनारे था। कई स्थानों पर मछली के शिकार खेलनेवाले साहबों के खेमे खड़े थे। रास्ते में भोजन करके लगभग दो बजे हम लोग गूंड पहुँचे।

अब कुछ-कुछ बादल होने लगे थे, इसलिए चर्चा होने लगी कि तम्बू खड़े किये जायँ या डाक-बंगले में रहा जाय। अंत में रमजानखाँ का प्रस्ताव माना गया कि लद्दाख की ठंड और कष्टों को झेलने की आदत अभी से डाली जाय। अतः तम्बू खड़े किये गए।

थोड़ी देर बाद लद्दाख के इंजीनियर साहब सामान के साथ आ पहुँचे। बातचीत में उन्होंने लद्दाख का ऐसा चित्र खींचा कि यदि कोई कच्चे दिल का होता तो लद्दाख जाने का विचार ही त्याग देता। उन्होंने हमें डराने और हताश करने में कसर न रखी, पर हम दृढ़ थे। संध्या होते-होते वर्षा प्रारम्भ हो गई, परन्तु तम्बू में कोई खास कष्ट न हुआ।

रविवार, २ जुलाई

सवेरे से नौ बजे तक पानी बरसता रहा, अतः जबतक बन्द न हुआ, रुकना पड़ा। नौ बजे के पश्चात् सब सामान को पहले चलता करके दस बजे के लगभग पिछले दिन की तरह हम दोनों तथा हमारे शिकारी चले। बहुत-कुछ ऊँचाई पर आ जाने तथा बादलों के कारण आज ठंड थी। यहाँ से सोनमर्ग १४ मील दूर है। रास्ते में कई जगह सड़क पर मजदूर लगे

हुए थे। मालूम हुआ कि राज्य सोनमर्ग तक मोटर की सड़क बना रहा है।

दो मील निकलने के बाद हमने दोनों शिकारियों को सड़क पर खड़े भूमि पर पड़ी किसी वस्तु की जांच करते हुए देखा। जब पास पहुँचे तो रमजानखां ने शीशे का एक टुकड़ा हमें दिखाते हुए कहा, "हुजूर, एक साहब का थर्मस तो टूट गया। देखिये, ये शीशे के टुकड़े तथा खाना बिखरा पड़ा है। दोनों छोटे शिकारियों के पास खाने का एक-एक थर्मस था। किसी एक ने गलती की है। हमने तो इसीलिए इन टूटनेवाली चीजों को टट्टू पर नहीं लादा था।" क्या कहते? हमने कहा कि चलो, लेह में दूसरा खरीद लेंगे। मालूम हुआ कि वहाँ नहीं मिल सकता। अतः जिसका थर्मस फूटा होगा, उसे आगे चलकर जब दोनों पृथक्-पृथक् ब्लाकों में जायँगे तब गर्म खाने से छुट्टी लेनी होगी। जबतक साथ है तभीतक गर्म तरकारी का उपयोग कर सकेंगे।

पाँच मील पर नदी के किनारे एक पेड़ के नीचे हबीबा और अलिया मिले। पूछने पर मालूम हुआ कि अलिया की पोटली की, जिसे वह पीठ पर बांधे था और जिसमें दाऊसाहब का थर्मस भी था, गाँठ खुल गई और सड़क पर गिर पड़ी।

भोजन और कुछ देर विश्राम करने के बाद एक बजे के लगभग हम लोग चल दिये। कई जगह पहाड़ों में बर्फ जमा दिखाई दिया। जब सोनमर्ग पांच मील रह गया तो गुतकरी ग्राम के पास थोड़ी चढ़ाई के पश्चात् एकदम मैदान मिला। यह लगभग चार मील लम्बा और आध मील चौड़ा होगा। एक मील चलने के बाद दाहिनी ओर एक ग्लेशियर[1] के नीचे कुछ तम्बू देखे। शिकारियों ने बताया कि सड़क की सुविधा न होने के कारण इस ओर यात्री कम आते हैं। जब सड़क बन जायगी, यह स्थान भरा मिलेगा। ऐसे सुन्दर स्थान काश्मीर में कम हैं। वास्तव में यह उपत्यका चौड़ी तथा हिमाच्छादित पर्वतों से घिरी होने के कारण बहुत सुन्दर है।

जगह-जगह रुककर हम दृश्यों को सराहते थे। लगभग सात हजार

१. पहाड़ में इसे 'गल' भी कहते हैं। गल उस बर्फ के ढेर को कहते हैं, जो नए बर्फ के पड़ने तक गल नहीं पाता।

फुट की ऊँचाई पर पहुंच चुके थे। दिन लौट गया था और बादल तो थे ही, इससे ठंड भी खूब थी। जब सोनमर्ग का डाक-बंगला एक मील रह गया तो वर्षा प्रारम्भ हुई। अतः दृश्यों को सराहना तो गये भूल, बंगले तक पहुँचने की पड़ी। पहुँचते-पहुँचते मारे जाड़े के दांत बज उठे।

लगभग पाँच बजे तक डाक-बँगले में पहुँच पाये। वर्षा की वजह से तम्बू में कष्ट होता। इस समय तापमान ६२ डिगरी था। काश्मीर राज्य की ओर से सोनमर्ग में यात्रियों के सुभीते के लिए अप्रैल से सितम्बर तक डाकखाना, तारघर तथा खाद्य पदार्थ आदि की दुकानें खुल जाती हैं। यहाँपर प्रायः सब प्रकार की तरकारी, मांस आदि तो मिलते ही हैं, साथ ही सिगरेट, बिस्कुट, चाकलेट, चाय, काफ़ी आदि भी मिल जाती हैं। अन्य डाक-बँगलों की अपेक्षा यहां का डाक-बँगला बहुत गंदा है। कारण कि सराय भी इसी घेरे में है। नौ बजे सोते समय थर्मामीटर देखा तो तापमान ५८ डिगरी था।

सोमवार, २ जुलाई

काश्मीर में मर्ग मैदान को कहते हैं, यही कारण है कि ग्राम तथा स्थानों के साथ जहाँ-जहाँ मैदान है, यह शब्द जोड़ दिया गया है, जैसे गुलमर्ग, खिलनमर्ग, टंगमर्ग आदि। हमारे टट्टू चरते-चरते पहाड़ों पर काफ़ी ऊँचे चढ़ गये थे, जिन्हें लाने में देर होती देखकर हम दोनों ने इस समय को काम में लाने की सोची। अतः दाऊसाहब बन्दूक लेकर बर्फ की कबूतरें मारने और मैं कैमरा लेकर फोटो लेने चल दिया। दस बजे के लगभग दाऊसाहब चार फायर करके खाली हाथ लौटे, परन्तु मेरा प्रयास वृथा न गया। हमारा सामान लदकर चल चुका था, केवल सवारी के दोनों टट्टू और हबीबा और अलिया खाना लिये तैयार मिले। सोनमर्ग काश्मीरियों का लेह के मार्ग में अंतिम ग्राम है। यहां से अगला पड़ाव बालतल नौ मील है। सोनमर्ग ही से चढ़ाई प्रारंभ हो जाती है। बीच-बीच में गोटा (बेलूचिस्तानी) लोगों की झोंपड़ियां दिखाई देती हैं। इन लोगों की आर्थिक स्थिति बहुत गिरी हुई है। बर्फ की अधिकता के कारण छः महीने बेचारे अपने-अपने घरों में पशुओं समेत घिरे रहते हैं। गर्मी के छः महीनों में खेती-मजदूरी आदि, इनसे जो कुछ बन पड़ता है, करते हैं और अपनी

तथा पशुओं का जान बचाते रहते हैं।

कई जगह गूजर लोग भी अपनी बकरियाँ लिये मिले। ये लोग जम्मू और पंजाब से मार्च में बकरी, भेड़ और गाय-भैंसें लेकर पहाड़ों की ओर चल देते हैं। इनके परिवार तथा खेमे टट्टुओं पर लदे रहते हैं। बकरियों की रक्षा के लिए बड़े कुत्ते भी पाले रहते हैं। ज्यों-ज्यों बर्फ गलता जाता है, हरी घास चराने के लिए ये लोग भी अपने डेरे ऊपर ले जाते हैं। कहीं-कहीं तो इन लोगों ने लक्कड़ के मकान भी बना रखे हैं। नवम्बर के महीने तक जाड़े के आगमन के साथ-साथ ये लोग भी नीचे उतरते जाते हैं और अपने घर पहुँच जाते हैं। अन्य लोगों की अपेक्षा ये लोग काफ़ी मालदार है। खूब घी, ऊन तथा बकरे बेचते हैं। कहीं-कहीं गूजर लोग बस भी गये हैं। पुरुष प्रायः दाढ़ी रखते हैं और सफेद साफा बाँधते हैं। स्त्रियाँ काले कपड़े पहनती हैं। घी, दूध तथा भेड़ों का सम्पर्क और ठंड में रहने के कारण ये लोग बहुत गंदे होते हैं।

सोनमर्ग से तीन-चार मील चलकर एक जगह भोजन किया। एक काश्मीरी पंडित अपनी स्त्री तथा छः महीने के एक शिशु के साथ सोन-मर्ग जा रहे थे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे अमरनाथ से आ रहे हैं। दाऊसाहब ने विस्मय से जब पूछा कि क्या ऐसे शिशु भी अमरनाथ जा सकते हैं, तो पंडित ने बताया कि अमरनाथ की यात्रा, जितनी कही जाती है, उतनी कठिन नहीं है। बालतल से एक दिन में अमरनाथ जाकर वापस आ सकते हैं। हमने तै किया कि वापसी में अमरनाथ अवश्य चला जाय।

अब मार्ग में बर्फ जगह-जगह मिलने लगी। दो मील की दूरी से बालतल का बँगला दिखाई दिया। बँगले से इसी ओर बाँई तरफ के पहाड़ से एक गूजर के कुत्ते ने बारासिंघों के एक झुंड को चपेटा। यह झुंड हमसे दो सौ गज आगे रास्ते को काटकर जोरों से बहते नाले में कूद पड़ा। मैंने मोख्तालोन से कहा कि इस झुंड में से एक-दो पानी की तेजी के मारे पत्थरों से टकरा कर मर जायँगे। मोख्तालोन ने बताया कि बारहसिंघे ऐसे नाले तैरने के आदी होते हैं। एक भी नहीं मरने का। बात ठीक थी। सब पार हो गये। इतने में कुत्ता भी कूदा। वह भी पार हो गया

और देखते-देखते चपेटता हुआ लगभग तीन हज़ार फुट चढ़कर ऊपर के पत्थरों में भौंकने लगा। हम सब खड़े होकर यह दृश्य देख रहे थे। बारहसिंघा देखने का यह हमारा पहला ही अवसर था। इस झुंड में एक नर था, जो लगभग ३९ इंच का होगा। इसी का पीछा कुत्ता कर रहा था। भौंकना सुनकर मोख्तालोन बोला, "अगर हिम्मत है तो मेरे साथ दौड़ लगाइये। बँगले के बराबर में नाला पार करने के लिए पुल है। वहाँ से पहाड़ चढ़कर बारहसिंघे के पास पहुँच जाते हैं। कुत्ते ने पत्थरों के बीच उसे घेर लिया है। अगर दो कुत्ते होते तो पकड़ लेते। लेकिन कुत्ता अकेला है। बारहसिंघा पत्थर की तरफ़ पीछा किये कुत्ते को सींगों से डरा रहा होगा।" बँगले तक एक मील की दौड़ और तीन हज़ार फुट की चढ़ाई देखकर हम दोनों ने यह कहकर टाल दिया कि इतनी मेहनत के बाद क्या ठीक कि जबतक वहाँ पहुँचें, कुत्ता बारहसिंघे को रोके रहेगा।

लगभग दो बजे बालतल के बँगले पर पहुँचे। यह बँगला अच्छा बना हुआ है। यहाँ कोई यात्री नहीं था। इधर-उधर जहाँ-तहाँ गूजरों के डेरे थे। तापमान ५८ डिगरी था।

पाँच बजते-बजते ठंड काफी हो गई। कमरे में लकड़ी जलाई गई। यहाँपर संध्या समय हजारों चण्डूल बोलते हैं। हम तो यह समझते थे कि चण्डूल मैदान का पक्षी है। आठ बजे के लगभग जब आग के पास भोजन करने बैठे तो शिकारियों ने जोजीला के पार करने का वर्णन प्रारम्भ किया। तिब्बती में 'ला' का अर्थ दर्रा है। अलमोड़ा की ओर दर्रे को 'विनायक' भी कहते हैं और बुन्देलखण्डी में 'खंदा'। लेह जाते समय हिमालय इस दर्रे से ही पार किया जाता है।

: ४ :

जोजीला का रोमांचकारी अनुभव

अप्रेल के प्रारम्भ में शिकारी गूंड से कुली लेकर वहीं से बर्फ पर पैदल चलकर बालतल पहुँचते हैं। उस समय बर्फ बिछे रहने के कारण टट्टू नहीं चल सकते। जब बालतल में कम-से-कम सौ आदमियों के लग-

गग इकट्ठे हो जाते हैं तब जोज़ीला पार करने की हिम्मत की जाती है। यदि हम अप्रेल के प्रारम्भ में आते तो सोलह टट्टुओं के बोझ को उठाने के लिए अस्सी कुली लगते। कारण, बर्फ पर एक कुली बीस सेर से अधिक नहीं उठाता। वैसे सूखे में दो-दो मन तक उठा लेते हैं। जब राज्य की ओर से जोज़ीला खुला करार दिया जाता है तबसे राज्य के बोझ ढोने के नियम लागू होते हैं। वैसे जितना विशेष बर्फ होता है उसीके अनुसार कुली तथा शिकारी के बीच जो ठहराव हो जाय वही दाम देने पड़ते हैं।

जिस दिन बादल न हों और हवा कम हो, उस दिन रात के नौ बजे सब तैयार होकर बंगले से चल देते हैं। बर्फ के कारण सड़क तो ढकी रहती है और सेहे में पानी जमा रहता है, अतः सीधे चढ़ते हैं। सड़क से चार मील चढ़ाई है, परन्तु बर्फ पर सीधे दो ही मील है। दो-तीन जवान और मजबूत कुली आगे होते हैं। शेष उनसे सटे हुए भेड़ों की तरह हो लेते हैं। शिकारी तथा बूढ़े बीच में रहते हैं और सबसे अन्त में तगड़े आदमी। ऊपर से शरीर को काटती हुई ठंडी हवा नीचे को ढकेलती है और पीछेवाला आगेवाले की पीठ में सिर टिकाकर आगे ढकेलता है। इस प्रकार यह यात्रियों का दल एक बड़े कीड़े की नाईं रेंगता हुआ चलता है। यदि भाग्यवश चार बजे तक दो मील चढ़कर ऊपर पहुँच गया तो ठीक, अन्यथा वापस हो जाता है। वापसी में मुश्किल से एक घंटा लगता है। वजह यह है कि एक तो उतार, दूसरे हवा ढकेलती है। यदि चार बजे तक ऊपर पहुँच जाय तो सूर्य की किरणों में गर्मी आने के पूर्व पाँच मील चलकर मछोई के बंगले तक लोग पहुँच जाते हैं। यदि बँगले तक न पहुँच पाये तो एवलांश[1] के मारे कौन बच सकता है?

इस प्रकार कभी-कभी काफ़िले को तीन-तीन चार-चार बार लौटना पड़ता है। कभी-कभी बादल होने और बर्फ पड़ने के कारण भी रुका रहना

१. सूर्य की गरमी के मारे पहाड़ों पर से कच्ची बर्फ पिघलकर बड़े-बड़े ढेले फिसलते हैं और वे ज्यों-ज्यों नीचे आते हैं, दूसरी बर्फ को साथ लेते हुए टेकरियों के बराबर हो जाते हैं। इन्हीं को अंगरेज़ी में 'एवलांश' और अल्मोड़ा में 'भल' कहते हैं।

पड़ता है। प्राय: शिकारी तथा उनके नौकर चढ़ते समय थक जाते हैं और पेशाब करने के बहाने सुस्ताना चाहते हैं, परन्तु कुली बैठने नहीं देते। दस मिनट बैठे कि ठंड में अकड़कर मरे। जोजीला पर कई अंगरेजों के खानसामे और नौकर मरे थे। साहबों को तो काश्मीरी शिकारी तथा कुली सब देखते रहते हैं, परन्तु खानसामों को रात के उस धक्कामधक्के में कौन देखता है ? दो गज दाएँ-बाएँ निकलकर बैठे कि मरे !

यह सब वृत्तान्त सुनाकर शिकारी बोले, "मगर हुजूर, यह सब तकलीफ सहने में मजा भी तो आता है। एक बार जोजीला पार किया कि रास्ते में पास ही दोनों तरफ़ शिकार मिलती है। पहाड़ चढ़ना ही नहीं पड़ता। आज बर्फ की तकलीफ़ न होगी, लेकिन पहाड़ चढ़ते-चढ़ते दम फूल जायगा।" /

रात के दस बजे तक अंधेरा होते-होते खाना खाकर सो गये। ठंड की अधिकता के कारण आज सिकुड़ गये।

: ५ :

जोजीला के ऊपर

मंगलवार, ४ जुलाई

आज सवेरे सात बजे तैयार होकर चले। उस समय तापमान ५४ डिगरी था। बंगले से आध मील के बाद चढ़ाई प्रारम्भ होती है जो चार मील तक दर्रे की चोटी तक पहुँचने तक बहुत सख्त है। रास्ते में कई लद्दू टट्टू आते-जाते मिले। अन्य प्रदेशों में घाटी चढ़ते समय जानवरों को बढ़ाने के लिए चिल्लाते हैं या लकड़ी मारते हैं, परन्तु यहाँ केवल सीटी का प्रयोग किया जाता है। इन लोगों को जीभ को लौटा कर काफी जोर की सीटी बजाने की आदत है। जहाँ-जहाँ मोड़ आते हैं वहाँ अच्छे दृश्य दिखाई देते हैं। कई जगह मैंने फोटो भी लिये। मार्ग भी अच्छा बना हुआ है। ऊपर पहुँचते ही दृश्य एकदम बदल जाता है। दक्षिण की ओर पहाड़ पेड़ों से ढके हैं, परन्तु उत्तर की ओर पेड़ों का नाम नहीं, केवल

घास है। जहाँ-तहाँ गूजरों के डेरे हैं। जगह-जगह ठंड से बचने के लिए छोटे-छोटे मकान बने हैं। कहीं-कहीं मरे हुए जानवरों के कंकाल भी पड़े थे। कुछ तो बर्फ पर पैर फिसलने के कारण मर गये होंगे, कुछ निर्बलता के कारण भार न उठा सकने की वजह से बैठ जाते हैं और रात को ठंड से सिकुड़ कर मर जाते हैं। ठंड के सबब से कई दिनतक इनका मांस सड़ता भी नहीं है।

जोजीला के ऊपर पहुँचकर मैंने दाऊसाहब से कहा कि अब आप हिमालय की विशालता को देखिये। जब उन्होंने पहाड़ों की चोटियों को देखकर खड्ड की ओर नजर दौड़ाई तो चक्कर आ गया। हमें दस मिनट, जबतक उनकी तबीयत ठीक नहीं हुई, ठहरना पड़ा। अच्छा हुआ कि इस समय हम पैदल चल रहे थे। यदि टट्टू पर होते तो दाऊसाहब नीचे गिरते और चोट आ जाती।

ऊपर पहुँचने के बाद मछोई के तारघर और बँगले तक बहुत मामूली चढ़ाव-उतार है, परन्तु घास की हरियाली कम होती जाती है। बीच में कहीं-कहीं भोजपत्र के पेड़ पहले मिला करते थे, परन्तु अब नहीं हैं। मछोई पहुँचने के समय हमें कई जगह दो-दो फर्लांग तक बर्फ पर चलना पड़ा, दो-तीन जगह नाले भी जमे हुए थे। मछोई के बंगले से सटा हुआ एक बड़ा ग्लेशियर है। यहींपर हमने दोपहर का खाना खाया। तार-बाबू से बातचीत करने पर मालूम हुआ कि काश्मीर के प्रत्येक तार-बाबू को एक वर्ष जाड़े के दिनों में यहाँ रहना पड़ता है। बाबू के साथ लगभग बीस मजदूर रहते हैं। बँगले पर चालीस फुट बर्फ जम जाती है। बर्फ पड़ते समय मजदूर पहरा रखते हैं, ताकि ऊपर का मुँह बन्द न होने पावे। इसी बर्फ में सीढ़ी काटकर ऊपर से नीचे बंगले में पहुंचते हैं। पाँच महीने की सामग्री जोड़कर सब-के-सब कैद रहते हैं, परन्तु कहीं भी तार में गड़बड़ हुई कि इन मजदूरों में से कुछ फौरन निकल पड़ते हैं और ठीक करते हैं। मार्च के महीने में दिन के समय बीसियों एवलांश के धड़ाके होते रहते हैं। इस समय भी बँगले से बीस गज की दूरी पर बर्फ जमा था।

बँगले से एक मील चलने पर उपत्यका चौड़ी दिखाई दी और मैदान मालूम हुआ। कई जगह बर्फ के चबूतर मिले। कहीं-कहीं मामट मैंनी आश्राम

लगाते दिखाई दिये। हमने पहले मामट कहीं नहीं देखा था। यह जानवर ओद (जलमानस) से मिलता-जुलता, परन्तु उससे वजन में आधा होता है। भूमि को खोदकर दल बना लेता है और रक्षा के हेतु खतरे के समय दौड़कर दल के मुहाने पर बैठकर पैनी आवाज लगाता है, ताकि दूसरे मामट भी सावधान हो जायें। परन्तु होता यह है कि वैसे चाहे कोई देख न सके, किन्तु आवाज सुनकर यात्री की निगाह स्वयं ही आकर्षित हो जाती है। यह जानवर भोला होता है। जब चाहे हूंककर मार लो। इसका रंग गहरा कत्थई और रोम लम्बे व मुलायम होते हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि भालुओं की भाँति मामट भी जाड़े के दिनों में समाधिस्थ हो जाता है।

जब सामने एक गाँव दिखाई दिया तो शिकारियों ने हमसे कहा, "देखिये, वह गाँव मटायम है, जहाँ हमें आज की रात रहना है। इसे यहाँ से कितनी दूर समझते हैं?" हमने देखकर कहा कि वैसे तो एक या डेढ़ मील मालूम होता है, लेकिन पहाड़ पर चढ़ने और आसमान साफ होने की वजह से पास दीखता है। बहुत-से-बहुत तीन मील हो सकता है। शिकारी बोले, "आप घड़ी देख लें। हमें कोई चढ़ाई नहीं चढ़नी है, फिर भी वहाँ पहुंचते-पहुंचते दो घण्टे लगेंगे। पाँच मील से कम नहीं है।" वास्तव में शिकारियों की बात ठीक निकली। हम लोग तीन बजे के लगभग मटायम पहुंचे। एक नाले के सहारे हमारा पड़ाव था। पानी कुछ गंदला था। कैमरा में दूरबीन का लेन्स लगाकर कई फ़ोटो लिये। एक पलंग टूट गया था; दोनों ने जमीन पर बिस्तरे लगाये।

बुधवार, ५ जुलाई

सवेरे चाय लेकर शिकारी आये और बोले—"हुजूर, सलाम। मिजाज कैसे हैं? नींद अच्छी आई?"

मैंने कहा, "नींद कहाँ से आती! जमीन पर सो रहे थे और पास ही नाले की गड़गड़ाहट थी।"

आज सवेरे तापमान ५६ डिगरी था। लगभग सात बजे तैयार होकर चल दिये। रास्ते में कई जगह बल्ती लोगों की बस्ती मिली। अब चढ़ाई-उतराई कम थी और बर्फ भी कम मिला। आकाश निर्मल होने के कारण सूर्य की किरणों में काफी तीक्ष्णता थी, यहाँतक कि हमको कोट,

स्वेटर आदि उतारने पड़े। चौदह मील चलकर लगभग दो बजे द्रास पहुंचे। द्रास पहाड़ की बस्तियों के लिहाज से काफी बड़ा ग्राम है। यहां पर डाकखाना, तारघर, थाना और दूसरे दफ्तर भी है। हमारा पड़ाव डाकखाने के पास ही एक बगीचे में था। सर्दी के कारण आज सात दिन के बाद दाढ़ी बनाई और स्नान भी किया।

/काश्मीर के टट्टू और कुली द्रास तक ही आ सकते हैं। यहां से प्रत्येक पड़ाव पर टट्टू बदलने पड़ते हैं। राज्य की ओर से लेह और गिल-गित के मार्ग पर प्रत्येक पड़ाव पर यह नियम है कि आस-पास के टट्टू-वाले और कुली इकट्ठे रहते हैं। बारी-बारी से ये लोग यात्रियों का सामान लेकर दूसरे पड़ाव तक जाते हैं। इन लोगों में झगड़ा न हो, इसके प्रबन्ध के लिए प्रत्येक पड़ाव पर एक जमादार होता है, जो बारी के अनु-सार नौकरी लगाता है। इधर इस प्रणाली को 'रेस' कहते हैं। बायल-पुल से अपना सामान लानेवाले काश्मीरी टट्टूवालों को नियमानुसार हिसाब करके हमने दाम चुकाये।

यहां का पड़ाव अच्छा है। काफी पेड़ हैं और चश्मे का पानी है। संध्या समय पोस्टमास्टर तथा दो-तीन और बाबू लोग मिलने आये। उन्होंने बताया कि इधर प्रायः अंग्रेज ही आते हैं। जब कभी दो-चार वर्ष में कोई महाराजा भी आ जाते हैं। बातचीत करने पर मालूम हुआ कि द्रास में जाड़े के दिनों में बर्फ जमने की डिगरी से भी तापमान चालीस डिगरी नीचे तक पहुंच जाता है। यहां के लोग मुसलमान हैं और काश्मीरियों से इनकी आर्थिक दशा बहुत गिरी हुई है। आज संध्या समय तापमान ७८ डिगरी था।

गुरुवार, ६ जुलाई

सवेरे ६ बजे चाय पीते समय तापमान ५२ डिगरी था। मोख्तालोन चाय लेकर आया। अपने नौकरों को जोर से बोलते सुनकर हम समझ गये कि वे ठेकेदार अथवा अन्य किसीसे लड़ रहे होंगे। कारण पूछने पर मोख्तालोन बोला, "मैं अकेला बांदीपुर का रहनेवाला हूं। शेष पांचों मानसबल के हैं और एक गोल के हैं। मुझे इन लोगों के साथ रहना है। इसलिए, हुजूर, मुझसे न पूछिये। अगर इजाजत हो तो तार-बाबू को

बुलाये लाता हूँ। वे आपको सब बातें बता देंगे।" हमने मोख्तालोन को बुलाने भेजा। इतने में हल्ला-गुल्ला बढ़कर ऐसा मालूम हुआ, मानो मार-पीट हो गई। अतः हम दोनों तम्बू के बाहर निकल आये। देखते क्या हैं कि हमारे पाँचों नौकर यहाँ के कुछ लोगों से लड़ने पर उतारू हैं। इधर टट्टूवाले हमारे सामान को खींचे-खींचे फिर रहे हैं और साथ ही ऊपर से छः इञ्च की पानी की धार आ रही है। हमें देखकर हमारा खानसामा गफ्फारा बोला, "देखिए, इन बदमाशों ने ऊपर से पानी खोल दिया और सब सामान पानी में भीग गया।" रमजानखां शिकारी बोला, "हमने इन गाँव-वालों को दो आने कम में तै किया है, लेकिन यह ठेकेदार इन्हें नहीं जाने देता और कहता है कि फलाँ गाँववाले जायेंगे और पूरे दाम लेंगे।"

हमें भी यह घटना देखकर क्रोध हो आया। पूछने पर ठेकेदार बोला, "आपका शिकारी इन लोगों से कमीशन खा गया है। ये लोग कल ही बोझ लेकर आये हैं। आज नहीं जा सकते। जब इनकी बारी आयगी तब जायेंगे। आज इस गाँववाले जायेंगे। देखिये ये 'रेस' के कायदे। मैं जमादार हूं और मेरा फर्ज है कि मैं बारी के हिसाब से इन लोगों को काम पर लगाऊँ।"

इतने में पोस्ट-मास्टर और मोख्तालोन आ गये। बाबू ने भी ठेकेदार की बात की पुष्टि की और उन लोगों से कहा, "पानी तुरन्त बन्द करो।" मैंने अपने पास के कागजों को देखा तो उसमें गेम-वार्डन की दी हुई 'रेस' की नियमावली भी मिली। पढ़ने पर क्रोध शान्त हो गया और रमजानखां को डाँट दिया कि भविष्य में इस प्रकार झगड़ा न करे। यह सुनकर ठेके-दार भी खुश हो गया और बोला, "इसमें हुजूर का कुसूर नहीं है। यह शिकारी रमजानखाँ हर साल आता है और अक्सर झगड़ा करता है। यह ठेकेदारों से भी कमीशन माँगता है। मैं इसकी रिपोर्ट कारगिल के तहसीलदार साहब से कर रहा हूँ।"

झगड़ा शांत होने पर जो चूल्हे पानी से बुझ गये थे, पुनः जलाये गये। इसीसे आज हम लोग खाना बनाकर नौ बजे चल पाये। आज भोटों के टट्टू पर लक्कड़ की काठी थी, जैसीकि पंजाब में लद्दू ऊँट की होती है। जब सवार हुये तो मोख्तालोन बोला कि लक्कड़ की काठी पर काफी

तकलीफ होगी। लेकिन हमने कह दिया कि कोई परवा नहीं।

अब तो दोनों ओर पहाड़ पर घास भी नहीं दीखती। केवल पत्थर और मिट्टी है। जहाँ ग्लेशियर का पानी बहता है, वहाँ जंगली गुलाब दिखाई देता है। उसके अतिरिक्त कोई पेड़ या पौधा नहीं है। गाँव के पास दूर-दूर से नाली काटकर बड़े परिश्रम से किसान पानी लाकर थोड़ी-बहुत खेती करते है। वहींपर बिलों के पेड़ लगाये गये हैं, जिनके पत्ते काट-कर जाड़ों मे चौपायों को चराते हैं। यहा की गायें भी दूसरी जात की हैं। इन्हें इधर 'झोम्बा' कहते हैं। यह काश्मीरी गाय और याक (सुरा गाय) के बीच की नस्ल है। याक बहुत बड़ा और केवल काले रंग का और झब्बेदार पूँछ का होता है, जो १५००० फुट के ऊपर पालतू या जंगली दशा में पाया जाता है। परन्तु 'झोम्बा' काश्मीरी गाय के बरावर तथा सब रंग की होती है। इसकी पूंछ याक की भाति झब्बेदार होती है, परन्तु बाल बहुत छोटे होते हैं। यही कारण है कि इसकी पूंछ के चँवर नहीं बनते।

द्रास से कुछ दूर चलने पर हमें कई जगह उधर से आते हुए लद्दाखियों के कान में पीले-पीले फूल, जो गेंदे-से थे, नजर आये। पूछने पर मालूम हुआ कि गाँव से चार मील पर एक किसान के घर पर पीला गुलाब है, जिसका फूल बिल्कुल गेंदे की शक्ल और रंग का होता है। बात ठीक थी। चार मील पर जब मार्ग द्रास नदी की ओर उतरा तो देखते क्या हैं कि बाएँ हाथ को एक किसान के घर के पास गुलाब की बाड़ लगी है, जिसमें बिल्कुल गेंदा की शक्ल और रंग के फूल हैं। हम दोनों ने सलाह की कि वापसी में यहाँ से इस गुलाब की कलमें और पौधे घर ले जायँगे।

कल की और आज की तीखी धूप के मारे जो अंग खुले थे, जैसे मुँह, हाथ और घुटने, काले पड़ गये, यहाँतक कि नाक का चमड़ा निकलने लगा और फुन्सियाँ भी हो आईं। क्वार की घाम से भी यहाँ सूर्य की किरणों में विशेष तेजी थी। आज का पड़ाव भी बाईस मील लम्बा था। लगभग पाँच बजे शमशाखर्बू पहुँचे। तबतक लक्कड़ की काठी पर बैठने के कारण नीचे का धड़ अकड़ गया था। पड़ाव पर घोड़े से उतरने

पर चलते नहीं बना। हम अपने-आपको कोस रहे थे कि शिकारियों का कहना मानकर श्रीनगर में काठी क्यों नहीं खरीद ली।

थोड़ी देर में तम्बू खड़े करने के पश्चात् चाय लेकर शिकारी आये और आस-पास के शिकार का हाल सुनाने लगे; परन्तु यहां तो मारे दर्द के जी नहीं लग रहा था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रतिदिन सूर्यास्त या अँधेरा होने के पूर्व खाना खाकर सो जाया करते थे। आज भी झुटपुटा हो आया था। सिगरेट पीकर सोने जा रहे थे कि इतने में एक कनफटे नाथ साधु एकाएक हमारे पास आकर बोले, "बाबा, क्या तुम हिन्दू हो ?" हमारे 'हां' कहने पर उन्होंने हमसे थोड़ा खाना और रात के लिए लकड़ी मांगी। हमने उनके इधर आने का उद्देश्य पूछा तो उन्होंने बताया कि वे पंजाब में घूमते रहते हैं। कुछ दिन पूर्व उनके गुरुजी ने स्वप्न में कहा कि नेमू-मोतू में मिलेंगे। उन्हींकी खोज में जा रहे हैं। सुनकर रमजानखां बोला, "नेमूमोतू तो लेह से भी आठ पड़ाव आगे है।" मैंने नक्शा उठाकर देखा तो बात ठीक पाई। परन्तु साधु बोला कि यह नेमूमोतू नहीं। वह तो लेह से चालीस दिन परे है। हम समझ गये कि यह सनकी है। जब हमने उससे ठंड से बचने के लिए वस्त्रादि की बात पूछी तो उसने बताया कि उसके पास लम्बे कुरते और लंगोट के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

हमने उसे बहुत समझाया कि लेह तक, सम्भव है, हिन्दू मिल जायं और तापने को लकड़ी भी, परन्तु आगे तो कुछ नहीं है। इससे वापस लौटना अच्छा होगा, परन्तु वह एक न माना। हमने भी रोग असाध्य देखकर बाबा को लकड़ी और खाना देकर विदा किया।

/आज सन्ध्या समय तापमान ६९ डिगरी था। रमजानखां ने बताया कि इसी गांव से पोलो का खेल शुरू हो जाता है। हर हफ्ते हर गांव-वाले पोलो खेलते हैं। खेल दिन के दस बजे से चार बजे तक होता है। पूरे बल्तिस्तान और गिलगित तक पोलो का काफी प्रचार है।

: ६ :

कर्गिल पहुँचे

शुक्रवार, ७ जुलाई

आज सवेरे तापमान ७३ डिगरी था। लक्कड़ की काठी पर सवार होने के कारण जाँधों में काफी पीड़ा थी। सात बजे निवृत्त होकर जब टट्टू पर बैठे तो मारे दर्द के नानी याद आ गई। कुछ पैदल और कुछ दूर सवारी करते-करते चार-पाँच मील के बाद गर्मी आने पर दर्द कम हुआ। तब कहीं टट्टुओं पर जमकर बैठ सके। इधर मारे धूप के खुले अंग में जलन, उधर लक्कड़ की काठी के कारण जांघों में दर्द। अन्य दिनों की भाँति आज हमारा गिरोह चहकता हुआ नहीं था। ऐसा कोई भी दृश्य न था, जिसे लेकर बात करते। जब हम शिकारियों से पूछते तो यही पूछते थे कि कर्गिल कितनी दूर है? वे भी हमारी बेचैनी समझते थे।

लगभग तीन बजे के 'राम-राम' करते कर्गिल पहुँचे। यह ग्राम सूरू नदी के तट पर बसा है। नदी में काफी पानी था और बड़ी तेजी से बह रही थी। कर्गिल गाँव भी बड़ा है और इसके निकट कई छोटे-छोटे गांव हैं, जिनके खेतों और पेड़ों की हरियाली बड़ी सुन्दर थी; परन्तु हमारी तो हालत बिगड़ रही थी। किसे फुरसत थी कि इसे सराहते? शिकारियों ने हमें संकेत कर कई बार चाहा कि हम कुछ बातचीत करें और प्रसन्न हों, परन्तु यहां तो केवल यह पूछने के कि पड़ाव कितनी दूर है और किसी बात में जी ही नहीं लग रहा था। पूरे ग्राम को पारकर एक छोटे से खेत के पास हमारे सामान के टट्टू दिखाई दिये। अन्य दिनों की भाँति आज खेमे नहीं लगे थे। सब सामान बँधा पड़ा था। टट्टूवाले पतली-पतली लकड़ियों से भाड़ू लगा रहे थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि पहाड़ों में खेत छोटे होते हैं और प्रायः चारों ओर पत्थर की दीवार से, जो लगभग दो से चार फुट ऊँची होती है, घिरे रहते हैं। खेत को समतल बनाते समय जो पत्थर निकलते हैं, उनसे

दीवारें बना ली जाती हैं, जो खेत की रक्षा करती हैं। हम भी टट्टू से उतरे और हवा को बचाकर दीवार पर बैठ गये। झाड़ू लगाने के कारण काफी धूल उड़ रही रही थी। कुछ कुली इसी धूल में झाड़ूवालों से आगे पत्थर उठा-उठाकर फेंक रहे थे। अभीतक हमें जितने पड़ाव मिले, प्राय: गाँव से बाहर और काफी बड़े थे। कर्गिल में तहसील है और गाँव भी बड़ा है। फिर क्या कारण है कि इतना छोटा पड़ाव और वह भी खेतों से घिरा हुआ है ? पूछने पर शिकारियों ने बताया कि गांव से दो मील लेह की सड़क पर नदी के पार नई बस्ती बसाई गई है, जहां सरकारी दफ्तर आदि हैं। वहींपर पड़ाव तथा डाक-बंगला भी है। जब हमने वहींपर जाकर ठहरने को कहा तो शिकारियों ने बताया कि बस्ती दूर पड़ जाने के कारण टट्टू तथा दूध-लकड़ी जुटाने में देर लगेगी। सामान भी टट्टुओं से उतर चुका था। अतः यही उचित जंचा कि अब तो रात यहीं बिताई जाय। हम लोगों की टांगें भी काफी अकड़ चुकी थीं।

जब झाड़ू लग जाने पर धूल कुछ कम हुई तो दीवार के सहारे कई जगह शौच पड़ा दिखाई दिया। देखकर दाऊसाहब नाराज होकर बोले, "यहाँ तो सब जगह शौच पड़ा है। हम ऐसी गंदी जगह में कैसे रह सकते हैं ? मालूम नहीं, लोग यहाँपर पड़ाव की जगह को क्यों गंदा करते हैं ?" रमजानखाँ ने कहा, "देखिये, एक-एक मील तक खेत-ही-खेत दिखाई देते हैं। बेचारे टट्टी कहाँ जायँगे ? यहां तो गनीमत है; लेह के पास तो ईधन की कमी के कारण लोग सूखी टट्टी को जलाते हैं।"

थोड़ी देर बाद जब धूल कम हुई तो तम्बू लगाये गए। इतने में एक दस-ग्यारह वर्ष का सुन्दर बालक हमारे पास आकर पूछने लगा, "क्या आप हिन्दू हो ?" हमने 'हाँ' कहा। उससे पूछा तो मालूम हुआ कि वह काश्मीरी बालक है और उसके पिता अध्यापक हैं। उसने वहीं से इशारा करके पाठशाला तथा अपना घर दिखाया। पास ही कुछ पादरी भी रहते थे, जो अपने मकानों की छतों पर खड़े हमें देख रहे थे। इधर जितने भी मकान हैं, उनपर खपड़े नहीं छाते हैं। छतों पर मिट्टी डालकर पानी और खासकर बर्फ से रक्षा की जाती है। लकड़ी अभाव के कारण बहुत

मंहगी है। अतः गरीब लकड़ी का काम लम्बे-लम्बे पत्थरों से लेते हैं।

कुछ देर के बाद बालक घर की ओर गया और दूध ले आया। हमें चाय के लिए दूध की आवश्यकता थी ही। दूध देकर वह बोला, "मेरी माता ने यह दूध आपके लिए भेजा है और कहलाया है कि मेरे पिता गाँव में कहीं गये हैं। अभी वापस आनेवाले हैं, तब आपसे मिलेंगे। हम लोगों के लायक कोई सेवा हो तो बताइये।" इस बालक की शिष्टता देखकर हमें बड़ी खुशी हुई। जब हम चाय पी रहे थे, वह घर से इलायची और सुगंधित छालिया ले आया।

मोल्तालोन से टट्टू, लकड़ी तथा खाने की सामग्री गांव से जुटाने को कहकर रमजानखां ने हमसे हमारे शिकार के लाइसेंस तथा राहदारी के परवाने मांगे और बोला, "तहसीलदार साहब का पेशकार मेरा जाना-पहचाना है। सूरज डूबने के पहले ही मैं तहसीलदार साहब से परवाने पर दस्तखत कराये लाता हूँ, ताकि कल सवेरे दफ्तर खुलने तक हमें ठहरना न पड़े और सवेरे ही यहाँ से चल दें।"

मोल्तालीन बोला, "कायदे से तो साहब लोगों को खुद तहसील में जाना चाहिए। तहसीलदार, मुमकिन है, इनसे कुछ पूछे।" परन्तु रमजानखाँ ने कहा, "कोई जरूरत नहीं है।" हमारी टांगें भी दो दिन लकड़ी की काठी पर बैठने के कारण बेकार-सी हो गई थीं। जब दोनों शिकारी अपने-अपने काम से चले तो हमने उनसे कहा कि कहींपर चमड़े की काठी या जीन मिल सके तो किसी भी दाम पर खरीद ली जायँ। उन्होंने बताया कि गाँव में सिख, पंजाबी तथा काश्मीरी सौदागरों के पास काठी हैं। मुमकिन है, कोई अच्छे दामों पर बेच दे। तहसील के मुलाजिम भी काठी रखते हैं। उनसे भी पूछा जायगा।

आज सन्ध्या के छः बजे तापमान ७४ डिगरी था। सूर्यास्त से कुछ पूर्व पंडितजी तथा उनके पुत्र आये। हमारे साथ उन्होंने हिन्दू के नाते बड़ा प्रेम जताया। हमने भी उनसे इस प्रदेश के विषय में कई प्रश्न किये और उन्होंने भी हमसे बहुत-सी बातें पूछीं। वे हमें काश्मीरी शिकारियों से सावधान रहने को कहते हुए बोले, "पिछले साल बूँदी (राजपूताना)

के महाराजकुमार आयवेक्स की शिकार को यहा आये थे। एक मरतबा एक जख्मी आयवेक्स को शिकारी दूसरे दिन ढूंढ़ लाये, जिसपर महाराजकुमार के सरदार शंका करते थे कि यह महाराजकुमार का जख्मी नहीं है। आप तो जख्मी जानवर की पूरी जांच कर ले तभी लें।" हमने पंडितजी को आश्वासन दिया कि इस मामले में हम काफी अनुभव रखते हैं। पंडितजी ने बताया कि जाड़े के दिनों में कारगिल के पास ही आयवेक्स मिल जाते हैं। ठंड इतनी होती है कि लोहे की कोई चीज छूने पर हाथ बेकार हो जाता है।"

भोजन के समय मेरे मित्र बोले कि वह पंडित हमारी इतनी खातिर क्यों कर रहा है? इसका कोई मतलब तो नहीं है? मैंने कह दिया कि बेचारा इस बीहड़ देश में पड़ा है तो अपने सहधर्मियों के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है। व्यर्थ की शंका करना उचित नहीं।

शनिवार, ८ जुलाई

आज सवेरे छः बजे तापमान ६२ डिगरी था। कल सन्ध्या समय तहसील से परवाने पर हस्ताक्षर हो गये थे। तहसीलदार साहब बाहर गये हुए थे। अतः तहसील में हमारे जाने की आवश्यकता नही हुई। टट्टुओं का भी प्रबन्ध हो गया था, परन्तु काठी एक भी नहीं मिली। चाय के लिए दूध लेकर पंडितजी आ गये थे। साथ ही ये कल की भाँति इलायची और सुगन्धित छालियां भी लाए थे। रात-भर के विश्राम के बाद हम भी प्रसन्न थे। फोटो लिये गए और प्राकृतिक दृश्य भी सराहे गये। कर्गिल गाँव के आस-पास सूरू नदी के किनारे के गाँव काफी हरे-भरे हैं। खेतों में गेहूँ की फ़सल खड़ी थी और बिलों के पेड़ भी बहुत थे। आज पंडितजी खिन्न थे। जब हम चाय पीकर फोटो ले चुके और चलने की तैयारी करने लगे तो वह बोले, "क्या बताऊँ, आपकी मैं अच्छी तरह से खातिर नहीं कर सका। मेरी स्त्री अभी-अभी निमोनिया से ठीक हुई है, नहीं तो रात को भोजन अपने घर कराता। डाक्टर कहता है कि दवाई में ब्राण्डी की आवश्यकता है। यहाँ से श्रीनगर आठ दिन में पहुँचते है। मैंने लिखा है। देखें, कबतक ब्राण्डी आती है। मैं गरीब आदमी हूँ। कहाँ से इतना पैसा लाऊँ कि एक कुली भेज सकूँ?" मैंने अपने पास

से एक चौथाई बोतल ब्राण्डी उनको देकर कहा "जबतक श्रीनगर से ब्राण्डी न आ जाय तबतक इससे काम चल जाएगा।" चलते-चलते पंडितजी बोले, "फोटो की एक-एक कापी जरूर भेजिये और वापसी में कर्गिल पहुँचने की खबर दीजिये, ताकि आपकी खातिर कर सकूँ।"

विदा होकर चले तो दाऊसाहब बोले, "देखा आपने! आखिर चार रुपये की ब्राण्डी ले ली न?"

मैंने कहा, "पंडितजी ने हमारे लिए इतना कष्ट उठाया। दूसरे, उनकी स्त्री बीमार थी। ऐसी दशा में थोड़ी ब्राण्डी दे दी तो क्या हुआ?"

: ७ :

बौद्धों के प्रदेश में

पड़ाव से दो मील चलकर नदी के किनारे नई बस्ती मिली। यहाँ-पर तहसील तथा राजकर्मचारियों के लिए अच्छे मकान बने हैं। डाक-बंगला भी अच्छा है तथा थोड़ी-सी दूकानें भी हैं, जहाँ आवश्यक वस्तुएँ मिल जाती हैं। इसी नई बस्ती के पास सूरू नदी को पुल द्वारा पार किया। तहसील ऊँची जगह पर है, जहाँ से कर्गिल गाँव का दृश्य बड़ा सुन्दर दिखाई देता है। यहीं से लोगों के मंगोल चेहरे हो गये हैं। वही छोटी-छोटी आँखें, चपटी नाक तथा मुँह पर बाल कम। तहसील से चल-कर एक पथरीला मैदान, जो लगभग तीन मील लम्बा और दो मील चौड़ा था, मिला। इसे देखकर हम लोगों ने कहा कि यहाँ तो कम खर्च में हवाई जहाज उतरने का अड्डा बन सकता है। इसी मैदान से हमने सूरू नदी छोड़ी और बखा नाले के सहारे चले। दो-तीन मील के बाद हमें एक दर्रा मिला जिसको पार करने के बाद एकदम बौद्धों की बस्ती प्रारम्भ हो गई। अभीतक बल्ती मुसलमानों की बस्ती थी। यहाँ से का प्रदेश है। पहला बौद्धों का गाँव खरगोला है। यहींपर पहले-पहल गोम्पा दिखाई दिया। गोम्पा को स्तूप भी कहते हैं। इसी प्रकार पत्थर पर 'ओ३म् मणि पद्मे हूँ' के मंत्र लिख-लिख उन पत्थरों के लम्बे-लम्बे ढेर लगाये जाते हैं, जिसे वे 'मानी' या 'माने' कहते हैं। तीसरा चिह्न

तीन गुम्बज पास-पास बनाये रहते हैं। एक लाल, एक सफेद और एक काला। इने वे तीन ईश्वर के प्रतीक समझते हैं। जहांतक मालूम हुआ, लद्दाख के बौद्ध तीन ईश्वर मानते है। सम्भव है, हिन्दू-धर्म के त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश) की नकल यहां की गई हो।

शरगोला से बखा नाले की उपत्यका काफ़ी चौड़ी हो गई है और पहाड़ भी केवल मिट्टी के बने दिखाई देते हैं। यहां से चार मील की दूरी पर 'मुलबेख' लगभग चार बजे पहुंचे। यहाँ का पड़ाव और गाँव दोनों अच्छे हैं। गाँव से उत्तर की ओर एक ऊँचे पहाड़ पर दो गोम्पा है।

शारगोला से धर्म के साथ-साथ लोगों का पहनावा और शक्ल भी एकदम बदल गई। मैंने खेतों में काम करते हुए स्त्रियों और बच्चों के फोटो लेने चाहे, परन्तु सबने बख्शीश माँगी। यह देखकर हमारे शिकारी बोले कि यूरोपियन यात्रियों ने इन्हें इनाम दे-देकर रुपये मांगने का आदी बना दिया है। दाम भी मामूली नहीं माँगते थे। जैसी सूरत वैसे दाम। यहां के किसान जानते हैं कि राहगीर या तो सुन्दर स्त्री या बहुत बूढ़े की फोटो लेना चाहेंगे। साधारण चेहरा कोई पसन्द नहीं करता। कोई विशेषता होनी चाहिए। हमसे दस रुपये तक मांगे। मैंने भी यह सोच-कर कि आगे सस्ते दामों में फोटो ले लूंगा, कैमरा रख दिया। खेमे खड़े करने के पश्चात् हमने शिकारियों को तम्बू के नीचे के हिस्से को पत्थरों से दबाता देखकर पूछा तो मालूम हुआ कि यहाँ प्रतिदिन सूर्यास्त के पूर्व से लेकर रात भर बड़ी जोर की हवा चलती है। इन लोगों की बात ठीक निकली। कारण पूछने पर वे तो नहीं बता सके, परन्तु मेरा अनु-मान है कि झासकार के पहाड़ों में ग्लेशियर विशेष हैं। वहीं से बर्फ की ठण्डी हवा आती होगी।

रविवार, ६ जुलाई

आज हमारे टट्टूवाले सब बौद्ध थे। इनका वेष तथा भाषा भी एक-दम बल्तियों से पृथक थी। इनके शरीर भी पुष्ट थे। लगभग छः बजे हम चले थे। गाँव से निकलते ही तीस फुट की एक चट्टान में लगभग बीस फुट की मूर्ति खुदी मिली। लोग कहते हैं कि यह बुद्ध भगवान की है, परन्तु मुझे तो यह विष्णु की-सी मालूम दी। मैं पुरातत्त्व का विशेषज्ञ

नही हूँ और न कहीं मैंने यह भी पढ़ा है कि हिन्दू-धर्म-प्रचारक इतनी दूर गये थे। अतः मैंने भी बहस करना ठीक न समझा। फोटो लिये, लेकिन बादल होने के कारण साफ नही आगे। मूर्ति चतुर्भुजी थी, नही विष्णु के समान गदा, शंख, चक्र, पद्मधारी थी।'

' बौद्ध कुली बल्तियों से तगड़े और खुशमिजाज हैं। अभीतक द्रास से यहाँतक हमारे कुली चुपचाप टट्टुओं के साथ चले आते थे, परन्तु मुलबेख के बौद्ध आपस में काफी हँसी-मजाक करते जाते थे। बल्तियों की स्त्रियाँ हम लोगों को देखकर खेतों में काम करती हुई हमारी ओर पीठ कर लेती थीं, परन्तु बौद्धों की हमें देखकर सड़क के सहारे आ जाती थी। हमारे कुली भी उनसे हंसी करते थे। वे बराबर उत्तर देती थीं। कहने का अभिप्राय यह कि लोग हमको सुखी मालूम हुए। इन लोगों का पहनावा भी भिन्न था। पुरुष कान में बड़ी-बड़ी बालियां, जिनमें दो या तीन काच के रंगीन टुकड़े होते हैं, पहनते हैं। ऊन का पाजामा तथा एक लबादा (लम्बा कोट), यही इनकी पोशाक है। पांव में नमदे के घुटनों तक के बूट। जब कभी विश्राम करते हैं तो आप प्रायः इन्हें अपने बूट के तलों को सीते हुये पायंगे। इस प्रदेश में न तो कोई चमड़ा पकाना जानता है और न मिट्टी के बर्तन बनते है। भेड़-बकरों के कच्चे चमड़े को बूट के तले में सी लेते है। ज्यों-ज्यों चमड़ा घिसता जाता है, उनपर दूसरा चढ़ा दिया जाता है। कुछ ही महीनों में इनके जूते हाथी के पाँव से गोल हो जाते हैं। पुरुषों के वस्त्र प्रायः सफेद ऊन के होते हैं और स्त्रियों के काले रंग के। केवल सिर की टोपी में अन्तर है। पुरुषों की टोपी मथुरा के मन्दिर के पुजारियों की-सी (कनटोपी) होती है; परन्तु स्त्रियों की कनटोपी में ऊपर पीरोजा के टुकड़े आभूषणों की भाँति जड़े होते हैं तथा टोपी के दोनों ओर कान भी होते हैं, जिसमें ऐसा मालूम होता है मानो इनके सिर पर चील पंख फैलाये बैठी हो। स्त्रियों की पीठ पर एक भेड़ का चमड़ा भी बँधा रहता है। पहाड़ियों की भाँति यहाँ के बौद्ध भी पीठ पर ठोकनी लटकाये रहते हैं, जिससे वे बोझ ढोते हैं।

मुलबेख से ग्यारह मील चलकर हम 'नेमिकाला' पहुँचे। ऊपर गये

तो वहाँ हमने पत्थर का एक ढेर पाया, जिसपर कुछ फटे कपड़े पड़े थे और एक छोटी-सी छड़ी भी थी। एक कुली 'लो सलो हग्गलो—पौ गौ सलो' के नारे लगाने लगा। पूछने पर मालूम हुआ कि जब किसी पहाड़ की चोटी पर पहुँचते है तो वे अपने पीरों को धन्यवाद देकर जय-जयकार के नारे लगाते हैं। सबने उक्त पत्थर के ढेर के समक्ष नत-मस्तक होकर प्रणाम किया।

लगभग दो बजे हम लोग बौद्ध खर्बू पहुँचे। यहाँ का पड़ाव अच्छा नहीं है। रमजानखां कई बार लद्दाख आ चुका था। इससे प्रायः सब गाँव के खास-खास आदमियों को जानता था और वे भी इससे परिचित थे। इसने कुत्ते और घोड़े खरीदने की बात छेड़ी। पूछने पर उसने बताया कि लद्दाख के कुत्ते और घोड़ों की काश्मीर में माँग है। अतः साहब लोग से आज्ञा लेकर यहाँ से सस्ते दामों में खरीदकर उन्हें काश्मीर में नफे से बेचता है।

तम्बू लग जाने पर शिकारी बोले कि इस गांव में जितने शिकारी आते हैं, अपने शस्त्रों की परीक्षा करते हैं। कारण, अगले पड़ाव से शिकार मिलने लगती है। हमने भी अपनी बन्दूक निकाली। नतीजा देखी तो मेरी सात में से केवल दो गोलियां ठीक लगीं। शेष सब चल गईं। दाऊसाहब की आठ में से पांच लगीं। पूछने पर मालूम हुआ कि प्रत्येक वस्तु पास दीखने का यह परिणाम है। मैदान से आनेवालों का यही हाल होता है। हम भी समझ गये कि जानवर पर बन्दूक चलाते समय ध्यान रक्खा जाय कि बन्दूक चढ़ती है। अच्छा हुआ कि यहांपर थोड़े फायर कर लिये।

चाय पीने के पश्चात् पांच बजे हम लोग पोलो का खेल देखने गये। लगभग बारह आदमी पहाड़ी टट्टुओं पर हमारे पड़ाव के पीछे लेह के मार्ग पर पोलो खेल रहे थे। पहाड़ी-प्रदेश होने के कारण उन्हें चौड़ा मैदान नहीं मिल सकता। यह मैदान भी लगभग पचास गज चौड़ा था, परन्तु लम्बाई दो फर्लांग होगी। गोल के खम्भे नहीं होते। विपक्षी की सीमा पार कर देने से ही गोल हो जाता है। नेस्टी (Foul) भी कोई नहीं है। गोल हो जाने पर सब खिलाड़ी एक कतार में अपने-अपने

टट्टुओं पर खड़े हो जाते हैं। हारे पक्ष के खिलाड़ियों में से जिसका टट्टू अच्छा होता है, वह गेंद लेकर भागता है। लगभग तीस गज जाने-पर वह गेंद को आगे फेंक देता है। ज्योंही गेंद फिकी कि सब खिलाड़ी घोड़े दौड़ा देते हैं। इन लोगों के पास न घोड़े बदलने को हैं और न सात मिनट के बाद विश्राम की सीटी बजती है। गेंद भी चीथड़ों की बनी होती है। वही हाल लकड़ी का है। वे भी हाकी की स्टिक-जैसी होती हैं। लम्बी लकड़ी में नीचे एक टुकड़ा चमड़े से बँधा रहता है। फल यह होता है कि आप किसीको लकड़ी बांधते पायंगे तो किसीको रकाब टूटने से उतरकर ठीक करते हुए देखेंगे। जब गेंद के चिथड़े निकल जाते हैं तो खेल, जबतक गेंद ठीक नहीं होती, बन्द रहता है। लिखने का अभिप्राय यह है कि आप सब खिलाड़ियों को एक साथ घोड़े पर सवार बहुत कम देखेंगे। खेल के समय की अवधि भी नहीं है। किसीका घोड़ा थक गया तो कुछ विश्राम करने लगा और दम आने पर फिर जा मिला। इस प्रकार ये लोग घंटों खेलते हैं। लक्कड़ की काठियों के मारे हम स्वयं परेशान थे, परन्तु इन लोगों को वही लक्कड़ की काठियाँ ठीक थीं। अब हमारी टाँगें कुछ-कुछ ठीक हो चली थीं। आज सन्ध्या समय छः बजे तापमान ६६ डिगरी था।

सोमवार, १० जुलाई

बौद्ध खबूं से सवेरे ६ बजे चलकर ग्यारह मील की दूरी पर हेमिस-कोट ग्राम में हमने भोजन किया। इस ओर अब पहाड़ों में पत्थर बहुत कम दिखाई देते हैं। कहीं-कहींपर पौधे भी हैं। यहीं से चढ़ाई प्रारम्भ होकर 'फोतूला' पार किया जाता है। 'फोतूला' तेरह हजार पाँच सौ फुट की ऊँचाई पर है। इस जगह ऊँचाई के मारे कुछ-कुछ चक्कर-सा मालूम हुआ और सिगरेट भी अच्छी नहीं लगी। अब जितने भी लोग हमें मिलते थे, वे सब 'जू लेक' कहकर हमारा अभिवादन करते थे। 'जू लेक' बौद्धों का 'राम राम' है। इसी 'फोतूला' पर हमें एक फकीर मिला जिसने हमसे सिगरेट माँगी। पूछने पर मालूम हुआ कि वह लेह जा रहा था। 'फोतूला' के ऊपर पहुँचने पर वही 'लो सलो हर गलो' के नारे लगे। हम भी चढ़ाई पूरी होने की खुशी में सबके साथ शरीक हो गये। बल्ती मुसलमानों

से लद्दाख के बौद्ध कहीं ज्यादा जिन्दादिल हैं। यहाँवाले कुली बराबर हमसे बातें करने का प्रयास करते थे। कोई गाता था तो कोई हंसता था। हम भी इन लोगों से बराबर बातें करते हुए वहाँ की बोली के कुछ शब्द सीखते जा रहे थे। हमारा पहला पाठ था गिनती सीखने का। आज हम पाँच तक सीख चुके थे।[1] 'फोतूला' पार कर जब हम एक नाले की उपत्यका में पहुँचे तो हमारे स्वागत के लिए तीन पुरुष और एक स्त्री मिले। स्त्री कुछ गाती जाती थी। पुरुष डफ, शहनाई और एक छोटा-सा नक्कारा लिये था। पूछने पर हमारे शिकारियों ने बताया कि हमारे आने की सूचना पाकर वे लोग हमारा स्वागत कर रहे हैं। काश्मीर की भांति बौद्ध लोग कभी इनाम के लिए अपना हाथ पसार कर नहीं मांगते और न पीछे-पीछे चलते हैं। परीक्षा के लिए हम बिना कुछ दिये, नाच देख-कर चल दिये। जब लगभग सौ गज निकल गये तो देखा कि वे लोग भी अपने गाँव की ओर जा रहे हैं। हमने रुककर उन्हें बुलाया और इनाम दिया। इसी प्रकार बच्चे भी गाँव में प्रायः फूल या फल लेकर आपका स्वागत करते हुए मिलेंगे, परन्तु कुछ कहेंगे नहीं। यदि आप उनसे लेना चाहें तो वे फल-फूल देंगे, अन्यथा चुप खड़े रहेंगे। हाँ, कभी-कभी छोटे बालकों से तुतली ज़बान 'बछी-बछी' कहलवा देते हैं, जो अपना फूल दिखाकर कहता है, बड़ा प्यारा मालूम होता है और आपसे बिना दिये रहा नहीं जाता। परन्तु बड़े बालक कभी कुछ नहीं कहते। फल-फूल लेकर केवल बालक आते हैं।

'फोतूला' पार करते ही सिंधु की उपत्यका मिलती है। इधर नालों में पौधे भी विशेष हैं।

---

१. १. चिक, २. निस, ३. सुम, ४. जी ५. ङा।

: ८ :

लद्दाख में प्रवेश

लामायुरु लगभग दो बजे पहुँचे। कैम्प में बिलों के काफी पेड़ थे और नाले में झाऊ की प्रकार के पौधों का जंगल-सा था। पास ही टिक-टिक की आहट मिली, जिससे मालूम हुआ कि यहाँ चकोर बहुत हैं। लामायुरु से ही लद्दाख-प्रदेश प्रारम्भ होता है; वैसे बौद्धों की बस्ती शरगोला से प्रारम्भ हो जाती है। 'लामायुरु के आस-पास शापू मिल जाते हैं।'

मैंने चौकीदार से बातचीत की। पहले शिकार के बारे में पूछा। चौकीदार ने बताया कि अगर हम दो दिन ठहर जायं तो शापू की शिकार हो सकती है, परन्तु यहां का ब्लाक हमारे नाम नहीं था। 'लामायुरु का मठ लद्दाख में प्रसिद्ध है। जिन यात्रियों को समय कम होता है वे यहीं से मठ आदि देखकर वापस श्रीनगर चले जाते हैं। चौकीदार ने बताया कि कुछ ही महीनों में लासा से महन्त आने वाले हैं। लासा का नाम सुनकर मैं चौंका। जब मैंने पूछा कि यह तो काश्मीर का राज्य है, यहां पर लासा के दलाई लामा का क्या काम? तो उसने बताया कि लद्दाख 'छोटा तिब्बत' कहलाता है। तिब्बत से काश्मीर के राजाओं ने यह प्रदेश भले ही छीन लिया, लेकिन यहाँ के गोम्पा के शासन की जिम्मेदारी लासा पर है। वहीं से महन्त भेजे जाते हैं। इस तरह का समझौता भारत सरकार द्वारा दोनों राज्यों में है। लासा से लामायुरु आने में चार महीने से कुछ ऊपर ही लगता है। चौकीदार ने तीर्थयात्रा के हेतु लासा जाने की इच्छा प्रकट की। मैंने उससे कहा कि बौद्ध गया आदि स्थानों पर क्यों नहीं जाता? इस पर उसकी बातों से मुझे मालूम हुआ कि लद्दाख के बौद्ध यह भी नहीं जानते कि भगवान बुद्ध कहाँ के थे और भारतवर्ष में कौन-से तीर्थ हैं।'

'चौकीदार से महात्मा और योगियों के विषय में पूछा गया तो उसने बताया कि लामायुरु से चार-पाँच मील के फासले पर दो योगी गुफाओं में

बन्द हैं। भावुक लोग गुफा के मुहाने पर खाने की चीजें रख आते हैं। वे लोग किसीसे नहीं मिलते, यहाँतक कि शौच आदि भी गुफा के अन्दर ही करते हैं। यह सुनकर जब दाऊसाहब ने देखने के लिए जाने की इच्छा प्रकट की तो मैं सहमत नहीं हुआ। मैंने कहा, "केवल गुफा के दर्शन करने के लिए एक दिन रुकना व्यर्थ है। जब योगी के दर्शन न हों और हो भी गये तो वह बोलेगा नहीं, ऐसी दशा में जाने से क्या लाभ ? यदि आपकी यही इच्छा है तो लामायुरु के मठ को देखने चलिये। वहाँपर, सम्भव है, कोई महात्मा मिले, जो हिन्दुस्तानी जानता हो।" यह सुनकर चौकीदार ने कहा, "यदि आप इस इरादे से गोम्पा जाने का विचार रखते हैं तो आपका जाना बेकार होगा। आप देखते आये हैं और आगे चलकर और भी देखेंगे कि इस हिस्से से जितनी जमीन में खेती हो सकती है, आदमी कुदरत से लड़-लड़कर उसमें पैदा करता है। जिनके पास जमीन नहीं है वे याक, भेड़ या बकरी पालकर अपना निर्वाह करते हैं। इसके दूसरे मानी यह हैं कि हम अपनी संख्या को बढ़ा नहीं सकते। अगर बढ़ जाय तो खायंगे क्या ? इन सब बातों को देखकर हमारे पुरखों ने यह ठीक ही समझा कि एक कुटुम्ब से दूसरा कुटुम्ब न हो, यानी पिता की मिल्कियत के टुकड़े न हों। सबसे बड़ा लड़का सारी जायदाद को पाता है। उसीका ब्याह होता है। उसकी स्त्री सब छोटे भाइयों की स्त्री होती है। यदि कोई खुश न हो तो वह लामा बनकर पास के किसी गोम्पा या मठ में चला जाता है। यही दशा औरतों की होती है। अगर ब्याह हो गया तो ठीक, नहीं तो क्वारी रहकर अपने भाइयों के घर रहती हैं। अगर भावज या भाई से न बने तो वह भी औरतों के गोम्पा में जाकर "चौमो' बन जाती हैं। हमारे लामा और चौमो अलग-अलग मठों में रहते हैं। हर गाँव या दस-बीस गाँवों में जरूरत के हिसाब से इस तरह के फालतू मर्द-औरतों के लिए गोम्पा हैं, जहाँपर रहकर वे लोग काम करते हैं और जिन्दगी बिताते हैं। यह सब बच्चे पैदा होने से रोकने का तरीका है। इन पर शासन करने के लिए लासा से पढ़े-लिखे लामा भेजे जाते हैं। हर गोम्पा में काफी जमीन खेती के लिए है। साथ ही याक और भेड़-बकरी भी हैं। मठाधीश काबलियत के मुताबिक इन लोगों से खेती, ढोर

चराना और भीख का काम लेता है। यही हाल औरतों के मठों का है। वहाँ की चौमो औरतों से ऊन कातना, बुनना और भिक्षा का काम लेती हैं। इन गोम्पों में सबसे बड़ा पाप व्यभिचार है, जिसके लिए कई महीनों तक पिटाई की जाती है। अगर आप गोम्पा को देखने इस मतलब से जाना चाहते हैं कि वहाँ साधुओं के दर्शन होंगे तो आपको मायूस होना पड़ेगा। वहाँपर आपको सिर्फ मामूली किसान मिलेंगे। औरतों के मठ में आदमी नहीं जा सकते।" जब यह समाचार सुना तो केवल मकान देखने के लिए मील-भर चलकर गोम्पा देखने जाना हमने उचित नहीं समझा। दूसरे, वापसी में हमें इधर आना ही था।

मंगलवार, ११ जुलाई

लामायुरु से छः बजे प्रस्थान किया। ग्यारह मील तक अर्थात् सिंधु के पुल तक एकदम उतार है। यहाँ मिट्टी इतनी मुलायम है कि जहाँ कहीं पत्थर पड़े हैं, वहाँ उनके बोझ के मारे खम्भा-सा बन गया है। जहाँ कहीं पत्थर हैं उसके आस-पास की मिट्टी तो बह गई, परन्तु पत्थर के तले की बोझ के मारे रह गई। फल यह हुआ कि रास्ते में कई जगह खम्भे-से खड़े दिखाई देते हैं।

सिंधु का पुल लोहे के तारों के रस्सों पर बना है। वैसे तो इसे कहते हैं झूला-पुल, परन्तु जिस प्रकार झूला स्थिर नहीं रह सकता, वह बात इस पुल में नहीं है। पुल लगभग चालीस गज चौड़ा होगा। सिंधु के दोनों किनारे काफी गाँव हैं और निचाई के कारण यहाँपर गर्मी भी काफी पड़ती है। खेतों में हमें खेती भी खूब उत्तम दिखाई दी। पुल से एक मील चलने के पश्चात् हमें खल्त्सी मिला। यह गाँव काफी बड़ा है। यहाँपर डाकखाना और तारघर भी है। यहाँपर खेती के अतिरिक्त अखरोट और खूबानी के पेड़ भी यथेष्ठ हैं। खल्त्सी की ऊँचाई ८००० फुट के लगभग है। यहाँ के रहनेवाले सिंधु के किनारे पर खल्त्सी से ऊपर मार्सलंग (हिमिस) तक को ही लद्दाख मानते हैं। इस प्रकार खल्तसी सबसे नीचे होने के कारण उष्ण है। गर्मी के कारण लोग स्नान भी करते हैं और धनिकों की स्त्रियाँ रेशमी कपड़े भी पहनती हैं। यहाँवालों का रंग भी बहुत गोरा है तथा स्नान के कारण औरों की अपेक्षा कहीं स्वच्छ हैं। स्त्रियों के कपड़े

काले रंग के बजाय कासनी रंग के विशेष नजर आये। गाँव में छोटे-छोटे बालक बड़े सुन्दर दिखाई दे रहे थे। मुझे यहाँवालों को गौर से देखते हुए देखकर रमजानखाँ ने मोख्तालोन से कहा, "साहब को दो-तीन रुपये की इकन्नी दे दे। साहब को यहाँवाले अच्छे मालूम दे रहे हैं। वे जरूर बख्शीश देंगे।"

रमजानखाँ ने पते की बात कही थी। यहाँ के स्त्री-पुरुषों की सफाई और रंग को देखकर मुझसे न रहा गया। मैंने उससे कहा, "रमजानखाँ, यह क्या बात है कि खल्त्सीवाले औरों की बनिस्बत एकदम अलग मालूम देते हैं? क्या इस गाँववाले दूसरी जाति के हैं?" सुनकर वह बोला, "नहीं हुजूर, ये सब बौद्ध हैं और एक ही जाति के हैं, लेकिन सब फर्क आबोहवा का है। न मालूम क्यों, सिंधु के किनारे खल्त्सी से लेकर मार्सलंग (हिमिस) तक के रहनेवाले एकदम गोरे हैं। खल्त्सी नीचे होने की वजह से गरम है। इसलिए यहाँवाले नहा-धोकर साफ रहते हैं, लेकिन जैसे-जैसे ऊपर जाइये, ठण्ड के मारे लोग थोड़े गन्दे मिलेंगे। देखिये, पहाड़ों में रहनेवाले, जो भेड़-बकरी रखते हैं, कभी भी बिला-वजह १६००० फुट से नीचे नहीं आते। जब इतनी ठण्ड में रहते हैं तो उन्हें जरूर गोरा होना चाहिए, लेकिन वे सब काले हैं। आप जब लेह से आगे शिकार को जायंगे तब मैं आपको बताऊँगा। उन लोगों की ब्याह-शादी इन लोगों में काफी होती है। वे इन लोगों की सुन्दर लड़कियाँ ले जाते हैं, लेकिन वे सब तो भी काले ही रहते हैं।"

हम लोग खल्त्सी लगभग दस बजे पहुँच गये थे। अतः यहाँपर भोजन करने के पश्चात् यह तै हुआ कि सात मील और चलकर नुर्ला पहुँचा जाय। रास्ते में एक अँग्रेज और एक मेम लेह से श्रीनगर जाते मिले। उनसे थोड़ी देर बातें हुईं। वे लद्दाख देखने गये थे। थोड़ा और जाने के बाद साहब के दो नौकर तथा दो लद्दाखी स्त्रियाँ टट्टू पर बैठी मिलीं। उन्हें बुरके पहना रखे थे; परन्तु वे बेचारी क्या जानें परदा करना! दोनों युवा और सुन्दरी थीं। हमारे शिकारी उन्हें रोककर बातें करने लगे। जब वे हमारे पास आये तो बोले, "हुजूर ने देखा होगा, जो साहब गया वह लाहौर का डाक्टर था। उसके ये खानसामा और बैरा हैं।

दोनों ने लेह से इन स्त्रियों से निकाह कर लिया है। मेम-साहब ने खुश होकर विवाह का सब खर्च दिया है।"

मैंने कहा, "बौद्ध स्त्रियाँ क्या मुसलमान से निकाह कर लेती हैं? निकाह के लिए तो उन्हें मुसलमान बनना पड़ता होगा? लाहौर सरीखी गरम जगह में तो लद्दाख की स्त्री शायद ही बचती होगी।" रमजानखाँ बोला, "पहले तो साहब लोगों के नौकर वैसे ही औरतों को भगा ले जाते थे। यहाँ के लोग बड़े भोले हैं। उन्हें क्या मालूम कि कहींपर ११६ डिगरी गरमी भी होती है। अगर पंजाब जाकर मर गईं तो उनकी बला से। यह भी होता था कि औरतें पंजाब और काश्मीर में बेची जाती थीं। एक औरत के बहुत-से खाविन्द होने की वजह से बौद्धों में काफ़ी लड़कियाँ कुँवारी रह जाती हैं। इन्हें भगा ले जाना मुश्किल नहीं है। जब काश्मीर राज्य में शिकायत होने लगी तो अब लद्दाख में यह नियम हो गया है कि कोई भी किसी औरत को ले जाय तो विवाह करके ले जाय। उसे मजिस्ट्रेट के सामने अपनी औरत को ले जाना पड़ता है। मजिस्ट्रेट औरत से कई सवाल करके यह यकीन कर लेता है कि दरअसल ब्याह हुआ है और वह अपनी खुशी से ब्याह करके आदमी के साथ जा रही है। उसे यह भी बता दिया जाता है कि हिन्दुस्तान में काफी गर्मी पड़ेगी।" मैंने कहा, "इस तरह निकाह और ब्याह के लिए बहुत अड़चन पड़ती होगी।" रमजानखाँ बोला, "नहीं हुजूर, लेह, खल्सी तथा कर्गिल वगैरा में मौलवी, ब्राह्मण, पादरी, सब हैं। वे बड़ी खुशी से ब्याह करा देते हैं। आप जब चलेंगे, आपको सब बताऊँगा। लेह में तो काफी मुसलमान हैं। कुछ तो बना लिये गये हैं और कुछ काश्मीर और दूसरी जगहों से आकर बस गये हैं। लद्दाख में दूसरे धर्मवालों को यहाँ के बौद्धों को शुद्ध करने का काफी मौका मिलता है।[1] रमजानखाँ ने जो बताया उससे पता चला कि धर्मोपदेशक लोग खड़े होकर कहते हैं कि हमारे धर्म में प्रत्येक पुरुष पृथक्-पृथक् एक ही नहीं वरन् कई स्त्रियाँ रख सकता है तो उसे आसानी से लोग मिल जाते हैं, परन्तु वे सब बिना घरबार के हैं। बौद्ध धर्मानुसार

१ बहु-पति-प्रथा अब कानून द्वारा बन्द कर दी गई है।

केवल बड़े लड़के को जायदाद मिलती है। वही विवाह करता है। उसी-की स्त्री सब भाइयों की स्त्री होती है; परन्तु बच्चे जितने भी हों, सब बड़े के कहलाते हैं। जहाँ विवाह के हेतु छोटा भाई अन्य धर्मावलम्बी हुआ कि वह और उसकी स्त्री दोनों जाति तथा अपने-अपने घरों से निकाल दिये जाते हैं। फल यह होता है कि उनके उदर-पोषण का साधन सिवाय मजदूरी के कुछ नहीं रहता। भूमि तो जितनी जोतने लायक है, जुती है। जितने बौद्ध हैं, सबके पास भूमि है, तथा भूखे भी नहीं रहते, परन्तु दूसरे धरमवाले मजदूरी या व्यापार करते हैं।

खल्त्सी से नुर्ला सात मील है। कई जगह मैंने बच्चों से फूल ले-लेकर पैसे दिये। आज हम नुर्ला में ठहरे। रात को काफ़ी गर्मी थी।

बुधवार, १२ जुलाई

आज सबेरे छः बजे तापमान ५८ डिगरी था। नुर्ला से लगभग छः बजे चले।

सिन्धु के किनारेवालों का रंग, खासकर बच्चों का, यूरोपियनों से भी कहीं खुला हुआ है। बच्चों के गाल तो सेब के समान लाल हैं। यहाँ का जलवायु बहुत ही उत्तम मालूम देता है। बच्चे अपने-अपने हाथ पसारकर फल अथवा खूबानी दिखाते हैं और "जूलेक" कहकर ध्यान आकर्षित करते हैं। इन्हें कुछ दिये बिना नहीं रहा जाता।

दिन-पर-दिन पहाड़ों में पत्थर की माया कम होती ही जा रही है। अब तो जहाँ-कहीं हमें देखकर मवेशी भागते हैं तो धूल के गुब्बारे उड़ते दिखाई देते हैं।

नुर्ला से चार मील चलने के पश्चात् बाँईं ओर को पहाड़ के अधबारे में हमसे लगभग दो हजार फुट की ऊँचाई पर दस-बारह शापू दिखाई दिये। लद्दाख में जंगली जानवरों को, जिनकी शिकार के लिए हम निकले थे, देखने का यह प्रथम अवसर था। मैं टट्टू से उतरकर पत्थरों पर बैठ गया और दूरबीन से लगभग एक घण्टेतक खूब देखा। सब मादाएँ थीं। बड़ी चर रही थीं और बच्चे चरने के साथ खेल में एक-दूसरे के पीछे दौड़ रहे थे। जब वे दौड़ते थे तो उनके खुरों से धूल उड़ती थी। शापू एक प्रकार की जंगली भेड़ है। इससे मिलती-जुलती जात

पंजाब के केम्बलपुर के पहाड़ों में भी मिलती है, जिसे वहाँ 'उरियाल' कहते हैं।

नुर्ला से ग़ुशपुल तक सिन्धु के किनारे घनी बस्ती है और खेतों में बराबर गेहूँ की फसल खड़ी है, जिसकी हरियाली नंगे पहाड़ों के कारण बहुत ही सुन्दर मालूम देती है। आज हम ग़ुशपुल में ठहरे। यहांपर भी काफी गर्मी है। हमने मछली खाने की इच्छा प्रकट की तो मालूम हुआ कि लद्दाखी किसान न तो मछली पकड़ना जानते हैं और न खाते ही हैं।

सन्ध्या समय भोजन के पश्चात् हमारे शिकारी गाँववालों से आस-पास के नालों में शापू और आयबेक्स की खबरें पूछ रहे थे। सिन्धु के दोनों किनारों पर शापू के ब्लाक बनाये हुए हैं। जितने शिकारी लद्दाख आते हैं, उनको ओविस अमोन के ब्लाक के साथ एक शापू का ब्लाक भी मिलता है।

गुरुवार, १३ जुलाई

आज सवेरे छः बजे तापमान ६८ डिगरी था। ग़ुशपुल भी काफी गर्म है। रास्ते में बजगू एक बड़ा गाँव मिला। इस ग्राम में, जब लद्दाख का राजा था, एक किला था। गोम्पा बड़ा है और गाँव भी। हमने यहाँ पर दोपहर का खाना खाया और लगभग दो बजे के नेमू पहुँचे। नेमू से ग़ुशपुल केवल ग्यारह मील है। आज हम गर्मी के मारे हैरान थे। हमारे मुँह और हाथ-पाँव का चमड़ा सूर्य की कड़ी धूप से झुलसकर निकल चुका था। नाक का चमड़ा तो निकलकर नीचे का लाल रंग निकल आया था, जो दूर से तिलक-सा प्रतीत होता था। द्रास से लक्कड़ की काठियों पर बैठ-बैठकर जाँघें नीली हो गई थीं। श्रीनगर से यहाँतक, अर्थात् दो सप्ताह हो गये थे, नहाये भी नहीं थे। हाँ, दाढ़ी एक बार अवश्य बना ली थी।

नेमू पहुँचकर रमजानखाँ बोला, "हुजूर, आज यहींपर ठहर जाइये न? कैसा अच्छा पड़ाव है! गर्मी भी काफी है। हम सब दो हफ्ते के सफर के मारे थक भी गये हैं। आज खूब स्नान किया जाय और कपड़ों में साबुन लगाया जाय, ताकि कल लेह में घुसते वक्त थोड़े भले आदमी नजर आवें। न मालूम कल बादल हो जायें और ठण्ड के मारे स्नान न

कर सकें। लेह अठारह मील है। अगर सवेरे पाँच बजे चला जाय तो दो बजे तक पहुँच जायँगे। वैसे भी सब सामान जुटाने के लिए लेह में तीन दिन रहना ही है।"

शिकारियों का प्रस्ताव माना गया और आज यहींपर दो बजे दोपहर को ठहर गये।

आज स्नान करने से और बसन्ती ठण्ड के कारण बड़ा अच्छा मालूम होता था। सवेरे जल्दी जाना था। अतः सूर्यास्त होते-होते खाना खाकर सो गये।

: ६ :

लेह में

शुक्रवार, १४ जुलाई

आज सवेरे पाँच बजे चल पड़े। कारण दस मील जाना था और शिकारियों ने बताया था कि आज मार्ग में रेत और धूल विशेष मिलेगी। वास्तव में उनकी बात ठीक निकली। चढ़ाई या उतार तो नहीं के बराबर था, परन्तु रेत और धूल बहुत थी। सिंध के किनारे तेरह मील चलने के पश्चात् हमें एक चौड़ी उपत्यका मिली और बाईं ओर पाँच मील की दूरी पर लेह दिखाई पड़ा। लेह को बताकर शिकारियों ने पूछा कि कितना अन्तर होगा? हमने दो मील से ज्यादा नहीं बतलाया, परन्तु हमें पहुँचने में दो घण्टे लग गये। इस मैदान में धूल बहुत अधिक थी। जगह-जगह मानी और चोरतेन बने थे। जब गाँव एक मील रह गया तो पत्थरों की दीवारों से घिरे छोटे-छोटे खेत और बगीचे मिले, जिनमें खूबानी के पेड़ थे। लेह में सेब और अखरोट के पेड़ नहीं हैं। लेह के पास पहुँचने पर शिकारियों ने हमें बताया कि गाँव से डाक-बँगला एक मील दूर है। वहाँपर प्रायः यात्री आकर ठहरा करते हैं। अतः कभी कमरा नहीं मिलता। यदि गाँव के पास ठहरा जाय तो सामान आदि के खरीदने में आसानी रहेगी। इसलिए गाँव में एक बगीचे में ठहरने का निश्चय हुआ। हम लोग बस्ती में दक्षिण की ओर से घुसे थे। थोड़े-से घरों को पार कर बगीचे में पहुँच गये।

यह बग़ीचा लगभग एक एकड़ का होगा। इसके पश्चिम की ओर सीमा पर उत्तर से दक्षिण की ओर एक नाला बहता है। चारों ओर छः फुट की दीवार से घिरा है और इसमें ख़ूबानी के पेड़ों की काफ़ी छाया है। पूर्व दक्षिण के कोने पर एक छोटे-से मकान में यहाँ की देख-रेख करने के लिए एक स्त्री रहती है। स्त्री थी तो अधेड़, परन्तु देखने में सुन्दरी थी। /बारह आना रोज किराया ठहराकर टट्टुओंसे सामान उतारा जाने लगा।/ शहर होने के कारण इस बग़ीचे में जगह-जगह टट्टी पड़ी थी, यहाँतक कि तम्बू लगाने की जगह भी खाली न थी। दाऊसाहब को यह पसन्द नहीं आया, परन्तु जब उनसे कहा गया कि सब जगह ऐसा ही पाओगे तो विवश होकर राजी हो गये। जहाँ-जहाँ हमें ठहरना था, वह स्थान साफ करने के लिए उस स्त्री से कहा। वह सूखी टट्टी अपनी पीठ पर बँधी टोकनी में इकट्ठी करने लगी और गीली को उठाकर दीवारों के सहारे फेंक दिया। इसके पश्चात् झाड़ू लगाई। तब कहीं टट्टू पर से सामान उतारा गया। नाले के सहारे नौकरों की झुंगियाँ और बीचोंबीच हमारे दो तम्बुओं के लिए जगह साफ की गई। अभीतक हम एक ही तम्बू में ठहरते आये थे, परन्तु यहाँ तीन दिन रहना था। अतः पृथक्-पृथक् तम्बू लगाने की ठहरी, ताकि बैठने-उठने और सामान रखने में सुविधा रहे। दो जगह सामान उतरा गया। एक जगह हमारे तम्बू और सामान तथा दूसरी जगह नौकरों की झुंगी और खाने-पीने का सामान। मैं तम्बू और दाऊ-साहब झुंगी तथा दूसरे सामान की देखरेख कर रहे थे। तम्बू लगने पर सामान रखने की बारी आई। इतने में वह स्त्री झाड़ू लगाकर मेरे पास आई। इसे प्रतिदिन नये आदमियों से पाला पड़ता था। अतः काफी वाचाल थी। हिन्दुस्तानी अच्छी बोलती थी। उसने मुझसे कहा, "बाबू-जी, मैं भी मदद करूँ?" मैंने दाऊसाहब के तम्बू की ओर संकेत करके कहा, "वह साहब का तम्बू है। उसीमें सामान जमा दे और बिस्तर भी लगा दे।" दाऊसाहब की पेटी आदि लगाकर बिस्तर लगा रही थी कि इतने में दाऊसाहब आ गये और उसे गालियाँ देकर भागने के लिए कहा। वह कब माननेवाली थी? बोली, "बाबूजी, आपको तो मेरा शुक्रिया अदा करना था। उल्टे नाराज होते हैं।" दाऊसाहब निरुत्तर हो गये।

मुझसे भी न रहा गया। बोला, "बात तो इसने पते की कही; बेचारी एक तो आपका सामान लगा रही थी, ऊपर से आप इसे डाँटते हैं!" दाऊसाहब ने कहा, 'आपने देखा नहीं, अभी तो वह टट्टी उठाकर फेंक रही थी और बिना हाथ धोये मेरे सामान के हाथ लगा दिये और अब मेरा बिस्तर लगा रही है। क्या इसे कोई सहन कर सकता है?" मैं कुछ कहना ही चाहता था कि इतने में वह बोली, "नाराज न होइये, यहांपर लकड़ी की कमी की वजह से हमें टट्टी जलानी पड़ती है। इसीसे मैंने सूखी टट्टी ठोकनी में और गीली दीवार के सहारे फेंक दी। जब सूख जायगी तब उठा लूँगी। हिन्दुस्तान में इससे बहुत नफरत करते हैं। अच्छा, मैं आज ग़ुसल कर लूंगी।" कहकर वह हँसती हुई चली गई।

सामान ठीक हो जाने पर हम सब इकट्ठे हुए और सौदा खरीदने की बातचीत हुई। यहीं से आटा, दाल, सिगरेट आदि कुछ लेना था। लेह के कुछ ही पड़ाव बाद जनशून्य प्रदेश में शिकार को जाना था और छः सप्ताह के बाद लौटकर इसी गाँव में सामान मिल सकता था। सबसे पहले तो हमने अंग्रेजी काठी खरीदने के लिए कहा। अन्य सामान की खरीद को हमने शिकारियों पर छोड़ दिया।

लगभग तीन बजे हमारे नौकर और शिकारी बाजार गये और छः बजे लौटकर बताया कि और सामान तो सब ठीक हो गया, परन्तु आटा रविवार अर्थात् परसों तक मिल सकेगा, अतः हमने सोमवार को चलने का निश्चय किया।

लगभग सात बजे हम यूरोपियन स्टोर में सामान खरीदने गये। सिगरेट, बिस्कुट तथा चाकलेट खरीदकर लाये। वहींपर ब्रिटिश इण्डिया के सी० आई० डी० के इन्सपेक्टर साहब, जो मुसलमान थे, मिल गये। उन्होंने कहा कि वे हमसे मिलने आ ही रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि लेह में एक अफसर रहता है, जिसे ब्रिटिश ज्वाइंट कमिश्नर कहते हैं। यही लद्दाख का सर्वेसर्वा है। बाहर (चीन, तिब्बत तथा रूस) से आनेवाले और भारत से जानेवाले यात्री तथा व्यापारियों की देखभाल तथा पासपोर्ट आदि का प्रबन्ध यही करता है। लद्दाख का गवर्नर, जिसे यहाँ के लोग 'वज़ीर' कहते हैं, इस अफसर का एक प्रकार का मातहत

है। इसी कमिश्नर की सहायता के लिए खुफिया पुलिस भी रहती है। जब ज्वाइंट कमिश्नर बाहर होता है तब साधारण काम यहाँ के मोरेवियन मिशन के पादरी कर लेते हैं। आजकल कमिश्नर यहाँ नहीं था। हमें भारत की सीमा पर जाना था। अतः हमें मि० वाल्टर एसबो से, जो मोरेवियन मिशन के सुपरिन्टेण्डेण्ट थे, मिलना था। यह सब हमें उक्त इन्सपेक्टर ने बताया। उन्हें हमारा सब पता था। उक्त साहब को हम अपने डेरे तक लाये और कल मि० एसबो से मिलने का प्रबन्ध करा देने की कहकर उन्हें विदा किया।

हमारे तम्बू से बीस गज पर अपने मकान के दरवाजे में हमारी चौकीदारिन बैठी हुई मोजे बुन रही थी। इस समय वह स्नान आदि करके साफ कपड़े पहने तथा सुरमा लगाये बड़ी सुन्दर मालूम दे रही थी। जब इन्सपेक्टर साहब चले गये तो वह उठकर हमारे पास आई और बोली, "कहिये, अब तो मैं गन्दी नहीं हूँ।" दाऊसाहब नाराज थे ही, बोले, 'यह सब रमजानखाँ की बदमाशी है। मालूम होता है उसने इसे सिखा दिया है। तू यहाँ से चली जा, नहीं तो पुलिस में रिपोर्ट करता हूँ।" वह बोली, "अच्छा बाबूजी, मै जाती हूँ। मुझे मालूम है कि आपके बीबी नहीं है। लद्दाख से अच्छी बीबी हिन्दुस्तान में कभी नहीं मिलने की। मेरे भी शौहर नहीं है। मैं कसीदा और बुनने का काम भी अच्छा जानती हूँ।" यह कहकर वह घर की ओर गई और बहुत-सा सामान ले आई और दिखाकर बोली, "कुछ खरीदोगे ?" दाऊसाहब को नाराज़ देखकर मैं बोला, "इसमें चिढ़ने की कौन-सी बात है ?' यदि कोई चीज़ पसन्द आए तो ले लीजिए। आखिर देखने में क्या हर्ज है ?" कुछ देर बातचीत करने के बाद वह अपना भोजन पकाने चली गई।

लगभग दस बजे हम लोगों ने भोजन किया और सोने के लिए अपने-अपने तम्बुओं में गये। थोड़ी ही देर बाद दाऊसाहब अपने तम्बू से बिस्तरा लेकर मेरे तम्बू में आ गये और बोले कि मैं भी आपके तम्बू में सोऊँगा। पूछने पर बताया कि वहाँ हमारी चौकीदारिन पहुँच गई है। मेरे शिकारी भोखलालोन और नौकर हबीबा को बुलाकर दाऊसाहब ने कहा कि वे उनके तम्बू में सोएँ। हम दोनों एक ही तम्बू में सो गये।

शनिवार, १५ जुलाई

लेह का बाजार लम्बा और काफी चौड़ा है, परन्तु रूस का व्यापार बन्द होने से अधिकांश व्यापारी चले गये थे। दस दुकानों में से आठ में ताले पड़े थे। बाजार सुनसान था। कुछ देर इधर-उधर भटककर लगभग ग्यारह बजे डेरे पर आये और अपनी डाक पढ़ने तथा पत्रों का उत्तर देने में लग गये। उधर हमारे नौकर भी छः सप्ताह के लिए सामान जुटाने में लगे थे। बराबर कुलियों द्वारा सामान आ रहा था। दो काठियाँ बड़ी खोज के बाद मिल सकीं। एक के दाम चालीस रुपये तथा दूसरी के पच्चीस रुपये बताये। सिवाय लेने के दूसरा चारा न था।

लगभग तीन बजे बादल हो गये और बूंदा-बाँदी प्रारम्भ हुई, जिससे ठण्ड भी काफी हो गई। हमारे खुफिया इन्स्पेक्टर साहब ने कहला भेजा था कि मि० वाल्टर एसबो पाँच बजे बँगले पर मिलेंगे। अतः हम नियत समय पर उनके बँगले पर पहुँचे। इधर-उधर की बातें होने के पश्चात् हमने उनसे अखबार माँगे और संसार के समाचार पूछे। इनके पास बैटरी से चलनेवाला रेडियो भी था। साहब ने हमें कई अखबार दिये तथा रेडियो की खबरें सुनाईं। इन्हींसे मालूम हुआ कि ज्वाइंट कमिश्नर तथा इनके अतिरिक्त यहाँ तीसरा यूरोपियन नहीं है। नवम्बर में कमिश्नर काश्मीर चला जाता है और मई में आता है, अर्थात् जाड़ों में साहब अकेले रह जाते हैं। गर्मी के दिनों में कई यात्री आते हैं तब उन्हें अंग्रेजी बोलने का अवसर मिलता है। साहब ने हमारा काफी सत्कार किया और बाद में हमें अपना कार्यालय दिखाने ले गये। ये लोग बौद्धों को कोरे क्रिस्तान नहीं बनाते। उनको शिल्पकारी सिखाकर खाने-कमाने के योग्य भी बना देते हैं। बच्चों को निःशुल्क पढ़ाते हैं। कार्यालय में कताई और बुनाई पर काफी ध्यान दिया जाता है। बौद्ध लोग चर्खा और करघा नहीं जानते। वे तकली पर ऊन कातते हैं और आठ इंच चौड़ी पट्टी बुनते हैं, जिसमें काफी समय लगता है और परिश्रम भी बहुत करना पड़ता है। साहब के कार्यालय में कई स्त्री-पुरुष बड़े अच्छे ढंग से चर्खे और करघे पर काम कर रहे थे। हम लोगों ने एक-एक बालदार कम्बल और दो-दो नमदे खरीदे। कम्बल के दस और नमदे के चार रुपये देने पड़े। ऐसी वस्तु भारतवर्ष में

दूने दाम पर भी नहीं मिल सकती थी। हमने साहब को धन्यवाद दिया और कहा, "आप इन लोगों का उपकार कर रहे हैं। आप इन्हें क्रिस्तान बनाने के साथ खाने-कमाने के लायक भी बना रहे हैं।" साहब बोले, "इस हिस्से में बौद्ध तो नाम को हैं। वे धर्म की परवा नहीं करते। यहाँपर सबसे पहले तबलीगवाले मुसलमान और बाद में हिन्दुओं के आर्यसमाजी आये। ब्याह के आनन्द की दुहाई देकर कई बौद्धों को अपने धर्म में मिलाया जा रहा है, परन्तु वे यह नहीं सोचते कि इसका नतीजा सिवाय माँगनेवाले कुली या दुराचारी औरतों के क्या होगा? कुदरत यहाँपर इतनी कठोर है कि खेती करने के लायक जितनी जमीन थी सब काम में लाई जा रही है। बढ़ती आबादी क्या करेगी, इसपर कोई धर्मोपदेशक विचार नहीं करता। हम लोग या तो इन्हें कारीगर बनाते हैं, या कुछ रुपया देकर भेड़-बकरी खरीद देते हैं, ताकि उनकी गुजर-बसर हो सके। रूस का माल बन्द होने से कुलियों को भी अब काफी मजदूरी नहीं मिलती।" हमने उनसे कहा, "हम सब सुन चुके हैं। तभी तो आपके काम की तारीफ कर रहे हैं। जबतक बढ़ती हुई आबादी के खाने का इन्तजाम नहीं होता तबतक बौद्धों का एक से ज्यादा खाविन्द रखने का रिवाज अच्छा है।"

सन्ध्या होते-होते हमने भोजन कर लिया। बादल काफ़ी थे। थोड़ी वर्षा भी हो रही थी। अतः तम्बू के भीतर मोमबत्ती जलाकर हम लोग समाचार-पत्र पढ़ने लगे।

रविवार, १६ जुलाई

सवेरे चाय पीकर तम्बू में बैठे लगभग ९ बजे हम जब पत्र आदि लिख रहे थे कि पड़ोस से डफ के साथ किसी स्त्री के गाने की आहट आई। मैंने शिकारियों से बुलाकर पूछा तो बोले—यह छंगवाली है, जिसे फारसी में साक़ी (मधुबाला) कहते हैं। इस प्रदेश में तरुणियाँ एक डफ, सुराही तथा कुछ प्याले लेकर घूमती हैं। जो चाहता है उसे शराब का प्याला पीने को दे देती हैं और जबतक वह पीता है, उसके सामने बैठकर डफ बजाकर गाती हैं और हाव-भाव द्वारा उसका मनोरंजन करती हैं। थोड़ी ही देर में रमजानखाँ छंगवाली को बुला लाया। सुन्दर तो थी ही, परन्तु अन्य स्त्रियों की अपेक्षा वस्त्रादि से खूब सजीधजी थी। एक-एक गिलास

ि आठ-आठ आने ठहरे। उसने हमें गिलास में शराब डालकर गाना ारम्भ किया। शराब बहुत बदबूदार थी। अतः हम पी न सके। गाने में ी कुछ नहीं समझे, परन्तु उसका गाने का ढंग अच्छा लगा। लगभग ाध घण्टे के बाद एक रुपया देकर उसे जाने को कहा। भरे प्यालों की ाराब उसने वापस सुराही में डाल ली और चल दी। दाऊसाहब बोले, 'देखिये, इसने हमारी झूठी शराब सुराही में डाल ली। इस प्रकार न ालूम कितनों की झूठी शराब यह हमें पिलाना चाहती थी।"

लगभग दो बजे वर्षा बन्द हुई और बादल भी फटने लगे। रमजान-ाँ आकर बोला, "हुजूर, आज मौसम अच्छा है। घूमने बाजार न चलि-ेगा? काठी का सामान टूटा था, जिसे ठीक कराने मैं एक तुर्क (मध्य ्शियाई) के पास गया था। वह रूस से भागकर आया है और बड़ी ्रजीब बातें सुनाता है। आपको उससे मिलकर कई बातें मालूम होंगी।" ्म भी राजी हो गये। कारण, ठंड और वर्षा के मारे बैठे-बैठे उकता ाये थे। वैसे कल यहाँ से चल देना था। हमें गाँव में घूमना और फोटो ्रादि भी लेना था।

जैसा कि पहले लिख चुका हूँ, लेह में धर्म-प्रचारकों के कारण फालतू ौद्ध अन्य मतावलम्बी होते जा रहे हैं। इस्लाम सबसे बाजी मार रहा ्है। यहाँ के अधिकांश व्यापारी पंजाब के हिन्दू थे, जो रूस और सिनयांग (चीन का प्रान्त) के व्यापार के बन्द हो जाने के कारण चले गये हैं। ्क कारण यह भी है कि लेह में अधिकांश लोग मुसलमान ही दिखाई ्देते हैं। बाजार में कुछ हिन्दू (आर्यसमाजी) कार्यकर्त्ता भी मिले और ्मुझसे समाज-भवन में चलकर व्याख्यान देने के लिए आग्रह किया; परन्तु ्मैंने इन्कार कर दिया और कह दिया कि जबतक किसीके निर्वाह का ्रबन्ध नहीं होता, भीख माँगनेवाले हिन्दुओं की संख्या बढ़ाने से क्या ्लाभ?

चलते-फिरते हम उक्त रूसी (तुर्क) मोची की दूकान पर पहुँचे। सफेद ्वस्त्र तथा साफाधारी बुड्ढा बड़ा ही सौम्य मालूम देता था। उसकी ्पोशाक तथा एक फुट लम्बी दाढ़ी सुन्दर थी। वह चप्पलें बना रहा था और उसके पीछे काला बुरका डाले उसकी लड़की नमदे पर रेशम का

काम कर रही थी। बुड्ढा सत्तर वर्ष के लगभग होगा और उसकी पुत्री बीस वर्ष की। हमने भी अपनी बन्दूकों की स्लिंग आदि ठीक करने का काम देकर बुड्ढे से बातचीत प्रारम्भ की। रूस का हाल पूछने पर वह गम्भीर होकर बोला, "मैं समरकन्द का रहनेवाला हूँ। जिस वक्त रूसी आये, मैं अपनी इस छोटी लड़की के साथ ताशकंद की तरफ रिश्तेदारी में गया था। वहाँपर सुना कि एक दिन सवेरे रूसी फौज ने समरकंद घेर लिया है। उनके साथ पाँच हजार हज्जाम (नाई) थे और पाँच हजार औरतें फौजी वरदी में थीं। ऊपर आसमान में हवाई जहाज मँडरा रहे थे। सब लोगों को बड़ी मस्जिद में इकट्ठा करके हज्जामों द्वारा दाढ़ी-मूँछ मुड़वा डाली गईं। फौजी औरतों ने परदानशीन औरतों को पकड़कर बाहर निकाला और उनके बुरके फाड़ डाले। तुर्कस्तान में इस समय शैतान की हुकूमत है। इस्लाम का कहीं पता नहीं है। मसजिदों में लोग बूट पहनकर नाचते और गाते हैं। मेरा घर, औरत, बेटे-बेटियों से भरा था। न मालूम उनका क्या हुआ होगा। मैं और मेरी यह छोटी बेटी पाँच बार नमाज पढ़ते हैं। हम लोग अपने ईमान को बचाने की खातिर यारकंद आये, लेकिन दो बरस बाद सुना कि रूसी वहाँ भी पहुँच रहे हैं। तब जान बचाकर लेह में अंग्रेज सरकार की पनाह ली।"

मैंने बूढ़े को रोककर कहा, "बाबा, यारकंद तो चीनी लोगों के सिक्यांग सूबे में है। वहाँ रूसियों का क्या काम ?"

बुड्ढा बोला, "आपको सिक्यांग का क्या पता है ? यह कहने को चीनी सूबा है, लेकिन वहाँपर रूसियों ने सड़कें बनाली हैं और उनके हवाई जहाज रोजाना आते-जाते हैं। उन्हीं लोगों का वहाँ बोलबाला है। एक दिन आनेवाला है, जब दुनिया से सब मजहब गायब होंगे और शैतान की हुकूमत होगी। सुनता हूँ, लद्दाख को लेकर हिन्दुस्तान पर भी हमला करने की तैयारी रूसी कर रहे हैं। दुनिया के हर हिस्से में इनके आदमी पहुँच चुके हैं। अल्लाह बचाये इन शैतानों से।"

हमने बूढ़े से बहस करना उचित नहीं समझा। उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाते गये। वह कहने लगा, "इन रूसी लोगों के न ईमान है, न कोई समाजी बंधन। चाहे औरत हो या मर्द, जब चाहे बिना निकाह के, जब-

तक जी में आया मियाँ-बीवी बन कर रहे। किसीको अपनी हुकूमत में नहीं आने देते और न किसी को अपने यहाँ से बाहर जाने देते हैं। मुझे पता नहीं कि मेरे खानदान का क्या हुआ? /पहले सौदागर आया-जाया करते थे। उनसे कुछ हालात मालूम होते थे, अब तो वे भी बन्द हैं। अपनी लड़की की शादी के लिए परेशान हूँ, कोई ईमानदार मिलता ही नहीं।"

मैंने कहा, "यहाँपर काफी मुसलमान हैं और उनमें कई व्यापारी हैं। क्यों नहीं लायक आदमी ढूढ़ लेते!" बूढ़ा उत्तेजित होकर बोला, "जनाब हिन्दू मालूम देते हैं। यहाँ के मुसलमानों की न पूछिये। जितने यहाँ आते हैं, एक-एक लद्दाखी औरत रखे हुए है। उनकी औलाद को यहीं छोड़कर चले जाते हैं। न उनके खाने का और न उनके रहने का इंतजाम करते हैं। ऐसे बदमाशों को मैं अपनी लड़की, जो पांच मरतबा नमाज पढ़ती है, कैसे दे सकता हूँ? मैंने कई मरतबा इससे अफगानिस्तान चलने को कहा। वहाँ पर सुनता हूँ कि हमारी तरफ़ के तुर्क भागकर बसे हुए हैं, लेकिन यह नहीं मानती। हमेशा क्वारी रहकर खुदा की इबादत करना चाहती है।"/

इस प्रकार उसके विचार सुनकर हमने बूढ़े से विदा ली। आपस में कहते जा रहे थे कि लड़की पाँच फुट नौ इंच से कम ऊँची न होगी। ऐसी दशा में यहाँपर इसका जोड़ मिलना भी तो कठिन था। हम लोग पुनः यूरोपियन स्टोर में पहुँचे। कुछ सामान लेने पर हमने स्टोर-कीपर से पूछा कि यहाँ से भारत से बाहर की वस्तुएँ इतनी दूर टट्टू पर लाने पर भी श्रीनगर की अपेक्षा सस्ती क्यों हैं? मालूम हुआ कि लद्दाख के लिए जो सामान आता है, उसपर काश्मीर राज्य कस्टम नहीं लेता। यदि हमारे पाठक उस ओर शिकार को जायं तो लद्दाख से ही उक्त वस्तुएँ खरीदने में उन्हें सस्ती पड़ेंगी तथा व्यर्थ को श्रीनगर से सामान लादने का कष्ट बचेगा। केवल अंग्रेजी शराब के लिए स्टोर को पहले से सूचना देनी पड़ती है। वैसे तो इतनी ऊँचाई पर न इसकी आवश्यकता है और न कोई पी सकता है। फिर भी हमने जानकारी के लिए लिख दिया है।/ स्टोर में कप्तान मोबरले मिल गये, यह भी लद्दाख की

शिकार के लिए आज ही लेह पहुँचे थे। इनको चांगचेनमो में तिब्बती हिरन का परमिट नहीं मिला था, परन्तु अमन का नम्बर दस और शापू का नम्बर ग्यारह ब्लाक मिला था। हमें कल जाना था। इन्हें अभी दो दिन सामान खरीदना था। शराब न मिलने से वे चिंतित थे, परन्तु जब हमने उनसे पूछा कि जोजीला पार करने के पश्चात् कितनी पी सके तो वे बोले कि ऊँचाई के मारे थोड़ी-सी शराब से सिर चक्कर खाता है। तब हमने उनसे कहा कि शिकार की जगह तो और भी ऊँची है। वहां कैसे पी सकोगे ? तब कहीं वे सन्तुष्ट हुए।

सन्ध्या होते समय हम लोग लौटकर डेरे पर आ गये और भोजन किया। दाऊसाहब ने मोख्तालोन को बुलाकर कहा, "देखो, आज खुला है। अतः तुम अपने तम्बू के परदे खुले रखना और देखते रहना कि रात को कोई आने न पाये। मैंने इन्हें बता दिया कि दो दिन रमजानखाँ ने आपसे मजाक की थी। यहाँ कोई नहीं आने का। आप निश्चिन्त सोइये।

: १० :

शापुओं की टोह में

सोमवार, १७ जुलाई

आज सवेरे लेह की खरीद का सब सामान, जो रात को बाँध चुके थे, लेकर सात बजे चले। नौकरों ने बताया था कि लेह के बाद यह दस्तूर है कि प्रत्येक शिकारी साहब अपने तीन नौकरों के बीच सवारी के लिए दो घोड़े देते हैं। हमने भी एक घोड़ा शिकारी को तथा एक घोड़ा दोनों नौकरों को दिया। अभीतक सब नौकर पैदल ही आये थे। इस प्रकार आज सामान के घोड़ों के अतिरिक्त सवारी के छः घोड़े थे। लगभग बारह बजे हम तेरह मील चलकर रनबीरपुर पहुँचे, जहाँ आज हमें ठहरना था। मार्ग बिल्कुल समतल था। कारण, हम सिंधु के किनारे जा रहे थे। लेह से छः मील पर शै नाम का एक अच्छा ग्राम मिला,

जहू पर एक पहाड़ी पर सुन्दर गोम्पा बना है। लेह और शै के बीच कई मानी मिली थीं। लेह से रनबीरपुर तक बराबर खेत मिलते गये। रनबीरपुर पहुँचने पर रमजानखाँ ने प्रस्ताव रक्खा कि सरकारी पड़ाव ग्राम से एक मील उस पार है, जहाँ से सामान जुटाने में कठिनाई होगी। अतः गाँव में ही क्यों न ठहरा जाय ? उसने बताया कि उक्त गाँव में अब्दुल अजीज नाम का एक किसान रहता है, जो उसका परिचित है तथा यारकंद की ओर कई बार जा चुका है और उस ओर की शिकार को काफी जानता है। यह सुनकर मेरे शिकारी मोख्तालोन ने मुझसे धीरे से कहा, "हुजूर, सरकारी पड़ाव पर ठहरना ठीक होगा। रमजानखा के सब दोस्त ठग हैं। सवेरे आपसे बख्शीश माँगी जायगी। न देंगे तो बेकार कहा-सुनी होगी।" रमजानखाँ ताड़ गया। बोला, "नहीं, ऐसा नहीं होगा। वह तो महज पड़ाव के जो दाम सरकार को देते हैं, लेगा। बाकी सामान, जो उससे खरीदा जायगा, उसके दाम लेगा। मैं उसे अच्छी तरह से जानता हूँ। भला आदमी है।" अन्त में यही ठहरा कि अब्दुल अजीज के बगीचे में, जो रनबीरपुर ग्राम से लगा हुआ है और लेह-मार्सलिंग (हिमिस) के मार्ग पर है, ठहरा जाय और वहीं हम लोग ठहरे। लेह के परे रेस सिस्टम नहीं है। यहाँ से जहाँतक के टट्टू किराये पर किये जायँ, वहींतक जाते हैं तथा किराया भी निश्चित नहीं है। हमारे टट्टू साकटी, अर्थात् अगले पड़ाव तक के लिए किये गये थे।

अब्दुल अजीज सफेद सलवार, कुर्ता तथा कुल्ला पर सफेद साफा बाँधे सफेद दाढ़ी युक्त बड़ा भला मालूम दिया। उसकी दोनों स्त्रियों तथा उसने तुरन्त हमारे ठहरने की जगह साफ की। बगीचे में बिलों के काफी पेड़ थे तथा नहर का पानी बह रहा था। यही कारण था कि अच्छी ठंडक थी। जब डेरे लग चुके तो हमने अब्दुल अजीज से बातचीत प्रारम्भ की। उधर हमारा शिकारी रमजानखाँ उन लोगों से हिलमिल गया था। वह कई बार इधर आ चुका था और इन लोगों से उसकी घनिष्ठता थी। अब्दुल अजीज ने बताया कि किस प्रकार वह यारकन्द से इधर आया और परिश्रम करके बगीचा खरीदा और शादियाँ कीं। वह बार-बार इस बात पर खेद प्रकट करता था कि उसके कोई

सन्तान नहीं थी। सन्तान के लिए ही तो उसने तीन वर्ष पूर्व एक पत्नी और की थी।

खेती के अतिरिक्त उसका निर्वाह यात्रियों को ठहराने तथा सत्कार पर भी निर्भर था। एक घर यात्रियों के लिए भी उसने बना रक्खा था। चीन तथा मध्य एशिया के व्यापार के दिनों की प्रशंसा करता था तथा अब बन्द हो जाने से उसकी आय यात्रियों से लगभग नहीं के बराबर हो गई थी। उसके कहने से यह मालूम होता था कि यदि यही हाल रहा तो उसे अपनी भूमि तथा मकान बेचकर पंजाब या काश्मीर जाना होगा। हम भी उसकी दुख-गाथा सुनकर सहानुभूति प्रदर्शित करते गये। जब हमने इच्छा प्रकट की कि हमें यहाँ की स्त्रियों, बच्चों, लामा तथा चोमो (साधु-स्त्रियाँ) आदि के फोटो लेने हैं तो उसने सन्ध्या को सब ठीक कर देने का वचन दिया। हमने मोखतालोन से कहा कि अब्दुल अजीज भला आदमी मालूम देता है तो वह हँसकर चुप हो गया।

लगभग छः बजे हमारी इच्छानुसार उसने फोटो के लिए सब प्रबन्ध ठीक कर दिया। जिन्हें हम चाहते थे, वे सब लोग उपस्थित थे। जब मैं फोटो ले रहा था तो मोखतालोन ने चुपके-से पास आकर कहा कि जिस स्त्री का मैं फोटो ले रहा हूँ, वह अब्दुल अजीज की नई बीवी है। जब फोटो लिये जा चुके तो मैंने उन लोगों को कुछ दाम देने चाहे। इसपर अब्दुल-अजीज ने टाल दिया। उसने कहा, "ऐसे कामों के लिए लेह और उससे आगे यानी श्रीनगर की तरफ के लोग दाम लिया करते हैं। यहाँ कौन आता है? यह तो मामूली बात है। अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं तो वापसी में दीजिए।"

सन्ध्या होते-होते जोर से हवा चलने लगी और रात-भर खूब चलती रही। ठण्ड विशेष न थी। चीनी-तुर्कस्तान की शिकार की बातें होती रहीं। अब्दुल अजीज यारकन्द को सबसे बड़ा शहर मानता है। वह समझता है कि संसार में उसके समान कोई नगर नहीं है। वह यात्रियों के साथ लगभग तीस बार यारकन्द की यात्रा कर चुका है।

मंगलवार, १८ जुलाई

आज बड़े सवेरे उठ बैठे और अब्दुल अजीज को ठहरने के तथा दूध,

लकड़ी आदि वस्तुओं के दाम चुकाकर छः बजे चल दिये। दाम आदि चुकाने में और स्थानों की तरह यहाँ कोई झगड़ा नहीं हुआ। यह देखकर हमें अब्दुल अजीज बहुत पसन्द आया। बिचारा हम लोगों के लिए काफी दौड़ा था। इसलिए हमने उसे कुछ देना चाहा, परन्तु उसने इन्कार कर दिया। बोला, "हुजूर, अभी कुछ नहीं लूँगा। लौटते में जो जी में आये दे दीजियेगा।" हम भी क्या कह सकते थे?

जब हम लगभग सात मील निकल गये होंगे तो हमारे शिकारियों ने टट्टूवालों से सलाह कर हमसे कहा कि बाँई ओर के नाले में शापू मिला करते हैं। सामान के टट्टुओं को आगे जाने दिया जाय और हम कुछ दूर जाकर शापू देखें। हमने उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

नाले में सवारी के छहों टट्टू खड़े करके हम लोग बाँई ओर की उपत्यका में बढ़े। यह लगभग आध मील चौड़ी और तीन मील लम्बी है। आध मील चलने के पश्चात् एक टीले की ओर से उत्तर की ओर उपत्यका में दूरबीन से देखा तो आठ शापू लगभग एक मील पर दिखाई दिये। वे चरते हुए ऊपर की ओर जा रहे थे। हम भी तेजी से नाले के भीतर-भीतर उधर बढ़े, परन्तु ज्यों-ज्यों ऊपर की ओर जा रहे थे त्यों-त्यों नाला छोटा और उथला होता जा रहा था। जब हम उनसे लगभग आधा मील रहे होंगे, तब नाला दो फुट से अधिक गहरा नहीं रहा था। उधर शापू पहाड़ के निकट पहुँच चुके थे। दूरबीन से देखने से मालूम हुआ कि सबसे बड़ा शापू लगभग तीस इंच का होगा। जब हमने यह देख लिया कि सीधे पहुँचना असम्भव है तो यह सलाह हुई कि पीछे हटा जाय और बाँई ओर की पहाड़ी पर चढ़कर उन शापुओं का रास्ता रोका जाय। जैसे-तैसे हाँफते हुए जब उक्त पहाड़ी पर चढ़े और दूरबीन से देखा तो हमें शापू भागते हुए दिखाई दिये। मालूम होता है, उन्हें हमारी गन्ध पड़ गई। हमें बाँई ओर की पहाड़ी न चढ़कर पूर्व की ओर की, अर्थात् दाहिनी पहाड़ी चढ़ना था। यदि वायु का रुख देख लेते तो यह भूल न होती। पहाड़ में शिकारी को बार-बार वायु का रुख देखना आवश्यक है। कारण, उपत्यकाओं से बहुधा वायु उलट-पुलट बहती है। यहाँ के सब जानवरों की नाक बहुत तेज है। शापू पाने की आशा छोड़ हम

टट्टुओं की ओर लौट पड़े, जो हमसे दो मील दूर होंगे। मोख्तालोन यह कहकर आगे बढ़ गया कि वह हमारे लिए टट्टू लायगा। टट्टू नाले में खड़े थे। अतः हमको नहीं दीखते थे। जब हम उनसे चार-पांच फर्लांग रहे होंगे तो हमने एकाएक टट्टू इधर-उधर भागते देखे तथा एक भोटे का पीछा करते हुए मोख्तालोन दिखाई दिया। हमारी समझ में नहीं आया कि यह झगड़ा क्यों हुआ? मोख्तालोन टट्टू हाँकने की पतली लकड़ी का प्रहार करता जाता था और भोटा भागता जा रहा था। दोनों मोड़ पर रनबीरपुर के मार्ग पर ओझल हो गये। जब हम टट्टुओं के पास पहुँचे तो हमने अपने खाने की खुरजी नीचे पड़ी देखी। थर्मस फूटा पड़ा था और तरकारी फैल जाने से खुरजी खराब हो गई थी। अब पूछने की आवश्यकता न थी कि मोख्तालोन उस भोटा का पीछा क्यों कर रहा था। हम दोनों के पास केवल दो थर्मस थे, जिनमें हम तरकारी गर्म रखने को भर लेते थे। दाऊसाहब का तो गूँड के पास टूट चुका था और रहा-सहा मेरा भी टूट गया। अभी शिकार की जगह पहुँचे भी न थे। वहाँ की ऊँचाई और ठण्ड का विचार करके बड़ा खेद होता था कि रोटी के साथ तरकारी भी बर्फ के समान ठण्डी मिलेगी। चाय तो सिवाय डेरे के रास्ते में असम्भव हो गई।

बड़ी देर के बाद लगभग बारह बजे मोख्तालोन तथा वह भोटा हाँफते हुए लौटे। मोख्तालोन ने लौटते ही दूसरे दोनों भोटों के हंटर जमाए और बोला, "तुम सब सूअर हो। हम तुमको इसीलिए छोड़ गये थे कि कोई नुकसान न हो। अब थर्मस कहाँ से आयगा और अपने साहब को गरम खाना हम कहाँ से लाकर देंगे?" इस समय मैं भी आपा खो बैठा था। ज्यों-ज्यों शिकार में बर्फ के समान ठण्डे खाने का विचार आता था, रोना-सा आ जाता था। अभीतक हम इस थर्मस में मांस या तरकारी भर लेते थे, जो गरम रहती थी। केवल रोटियां ही ठण्डी मिलती थीं। इन ठण्डी रोटियों को चबाने में काफी कष्ट होता था। यह देखकर रमजानखां बोला, "मैंने साहब के थर्मस के खोखे में बजाय कांच के, जो फूट गया है, नमदा लगा दिया। तुम भी बड़े साहब के थर्मस के साथ ऐसा ही करो।" मैंने अपने शिकारी मोख्तालोन को ऐसा करने से रोक

दिया । काश्मीर का नया नमदा मिलता तो बात दूसरी थी, परन्तु इस गन्दे भोटे का दिया हुआ नमदा और वह भी काम में लाया हुआ, उसे तो छूना भी कठिन था। उसमें रक्खा हुआ भोजन कैसे खाया जा सकता था । जब कुछ शान्त हुए और चलने की सोचने लगे तो रमजानखाँ बोला, "हुजूर, खाने का समय हो रहा है । दूसरे थर्मस फूटने से शोरबा गिर चुका है और काँच के टुकड़े भी मिल गये हैं । इसलिए यहींपर बैठकर खाना खा लिया जाय तो ठीक हो ।" हम सहमत हो गये । जब पेट में अन्न पहुँचा तो क्रोध भी शान्त हुआ और बातें होने लगीं । रमजानखाँ उधर की बोली में भोटों से बात करता जा रहा था । साथ ही खाना भी खाता जाता था । जब हम चलने को उद्यत हुए तो रमजानखाँ बोला, "हुजूर, शापू को अपनी हवा नहीं पड़ी थी । इस नाले में टट्टू आपस में लड़ गये और लातें मारने लगे और नाले के बाहर भाग निकले । उस समय भोटे पानी के किनारे बैठे सत्तू खा रहे थे । इसी लतियाव में थर्मस फूट गया और इन्हें भी टट्टुओं के पकड़ने के लिए बाहर निकलना पड़ा । उस समय हम लोग बाँई ओर को पहाड़ी पर चढ़ रहे थे । शापुओं ने टट्टुओं को दौड़ते तथा उनके पीछे इन भोटों को देख लिया और भागकर पहाड़ पर चढ़ गये ।" यह सब रमजानखाँ को उन भोटों से मालूम हुआ था । यह सुनकर और भी दुख हुआ कि थर्मस तो फूटा ही, परन्तु उन्होंने शिकार भी बिगाड़ दी ।

जोजीला पार करते ही तीन मील की दूरी पर मनुष्य को देख लेना मामूली बात है । थोड़ ही आगे जाने के पश्चात् सिन्धु का किनारा तथा मार्सलिंग या हिमिस तक मार्ग अच्छा है और एक मील आगे चलकर सिन्धु को पुल द्वारा पार करके मार्सलिंग पहुँचते है । वहाँ का वर्णन आगे दिया जायगा ।

अब हम बराबर ऊपर चढ़ते जा रहे थे और उपत्यका सँकरी होती जाती थी । दो मील बढ़ने पर हमें कुछ चकोर दिखाई दीं । मैंने दो फ़ैर किये, परन्तु दोनों बच गईं । जब साकटी लगभग आधा मील होगा तब दाहिनी ओर की एक छोटी-सी पहाड़ी पर एक किला दिखाई दिया । यह लद्दाख के राजाओं का बनवाया हुआ था और उत्तर की ओर से

चौथा था। यह मिक्यांग के डाकुओं को रोकने के लिए था। वे लोग चाँगला के रास्ते यहीं होकर लद्दाख जाते थे। किले के नीचे कई बकरियाँ चर रही थीं, जिनका तथा किले का फोटो लिया। अब हम काफी ऊँचाई पर आ चुके थे। कई जगह हमें बर्फ के कबूतर मिले।

लगभग तीन बजे हम साकटी पहुँचे। टट्टूवाले तुरन्त वापस जाना चाह रहे थे। मोख्तालोन कहता था कि थर्मस के दाम काटे जायं, परन्तु मैंने गरीबों का पैसा काटना अन्याय समझा। काफी झगड़ने के पश्चात् टट्टू-वालों को दाम चुका कर विदा किया।

चाँगला के पार ऊँचाई अधिक होने के कारण बताया गया कि आगे लकड़ी बिलकुल नहीं मिलेगी। हमें पड़ावों पर पड़े हुए गोबर अथवा बुर्सी या बुर्तजी नाम के पौधों की जड़ से काम निकालना होगा। मैंने शिकारियों को समझा दिया कि गरिष्ट भोजन नहीं करेंगे, उससे ऊँची जगह सिर में दर्द होता है। साथ ही यह भी कह दिया कि कल चलते समय जेब में सोंठ के टुकड़े तथा प्याज रख दिए जाएँ, ताकि ऊपर पहुँचते समय सोंठ मुँह में डालकर रस चूसा जा सके और प्याज सूंघा जाय। यह हमें लेह में मि० एसबो ने बताया था। वे कहते थे कि ऐसा करने से बहुत ऊँचाई पर सिर नहीं चटकता।

जहाँ हम ठहरे थे, वहाँ से दृश्य बहुत अच्छा था। आज ऊँचाई के कारण दिन डूबते ही काफी ठण्ड हो गई।

: ११ :

कसाले का रास्ता

बुधवार, १९ जुलाई

आज सवेरे छः बजे तापमान ४८ डिगरी था। सवेरे सात बजे साकटी से प्रस्थान किया। आज पड़ाव से ही चढ़ाई थी तथा और दिनों की अपेक्षा ऊँचाई के कारण ठंड भी अधिक थी। गाँव से एक मील निकलने के बाद जगह-जगह चकोर दिखाई देने लगे। ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते थे, सेह्वा तंग होता जा रहा था और पहाड़ ठाँठे होते जा रहे थे।

दाऊसाहब ने कई बार प्रयत्न किया कि चकोर मार लें, परन्तु न मार सके। एक तो छिपकर जाने के लिए न कोई पेड़ था और न बड़े पत्थर, दूसरे पहाड़ इतने ठाँठे थे कि चढ़ना भी कठिन था। हमारी चढ़ाई भी धीरे-धीरे कठिन होती जा रही थी। अतः हमारी गति बहुत धीमी थी। रास्ते में भोटों से शिकार की पूछ-ताछ होती जा रही थी। यहीं से पूर्व की ओर दाऊसाहब का शापू का ब्लाक था। सात मील पहुँचते हमें बारह बज गये, अर्थात् हम एक घण्टे में एक मील चल सके। बारह बजे हम घोड़ों को विश्राम देने ठहर गये और भोजन किया। थर्मस फूट जाने के कारण सब चीजें बर्फ के समान ठण्डी थीं। यह हमारी भूल थी कि चाँगला पर पहुँचने के थोड़ी देर पूर्व भोजन किया। हमें सवेरे ही साक्टी में खा लेना था। ज्यों-ज्यों चांगला पास आता जा रहा था, त्यों-त्यों घोड़ों का दम फूलता जा रहा था। जब चाँगला पाँच सौ फुट रह गया तो शिकारियों ने हमें घोड़ों से उतरकर पैदल चलने के लिए कहा। इस समय हम अठारह हज़ार फुट पर होंगे। यहाँ के रहनेवाले भोटे भी घोड़े की पूँछ पकड़े हुए चल रहे थे। घोड़े चालीस-पचास गज़ चलकर दम लेने खड़े हो जाते थे और बुरी तरह हाँफते थे। जब घोड़े खड़े होते तब भोटे झुककर दोनों घुटनों पर हाथ टिकाकर दम लेते थे। हमने शिकारियों से इसका कारण पूछा तो मालूम हुआ कि इस प्रकार फूला हुआ दम शीघ्र शान्त होता है तथा फेफड़ों और हृदय को आराम मिलता है। देखने के लिए हम भी घोड़ों से उतरे। मैं तो केवल पचास-साठ गज चल पाया। इसमें भी मुझे प्रत्येक दस गज पर साँस ठीक करने के लिए पाँच-पाँच मिनट रुकना पड़ा। भोटों की नकल की, परन्तु कुछ आराम न मिला। देर होते देख मैं पुनः घोड़े पर चढ़ गया, परन्तु दाऊसाहब लगभग डेढ़ सौ गज चले।

करीब तीन बजे हम ऊपर पहुंचे। अन्य दर्रों की भाँति यहाँ भी पत्थरों का ढेर था और कई झाड़ियाँ थीं। वही 'लो सलो हूर गलो' के नारे भोटों ने लगाये। हम, सबको विश्राम देने के उद्देश्य से, घोड़ों से उतर पड़े और पत्थरों पर बैठ गये। आज बादल बिल्कुल नहीं थे। बैठकर सिगरेट जलाने के पश्चात् दृश्य सराहने लगे। दो मिनट बाद ही

भोटों ने आकाश की ओर देखकर हाथ से चलने का संकेत किया। सामान-वाले तो चल भी पड़े। इनका यह बर्ताव देखकर हमें आश्चर्य हुआ। हम तो यह जानते थे कि अभी अन्य दरों की भाँति भोटा लोग काफी देर विश्राम करेंगे तथा हमको चलने का तक़ाजा करना पड़ेगा। कारण पूछने पर हमारे शिकारियों ने बताया कि यह जगह बहुत ऊँची है। यहाँ-पर एक प्रकार की घास होती है जो बादल न होने के दिन सिर-दर्द कर देती है। जब बादल होते हैं तो इस घास के फूल की बू नहीं फैलती, परन्तु खुले हुए में फैलकर हानि पहुँचाती है। मैं पुस्तकों में पढ़ चुका था कि इन लोगों का यह विश्वास कितना भ्रमात्मक है। बात वास्तव में यह है कि जिस दिन बादल होते हैं उस दिन ठंड के कारण वायु की गुरुता बढ़ जाती है। एक तो ऊँचाई के कारण हवा पतली और ऊपर से सूर्य की गर्मी हो तो हवा और भी पतली हो जाती है, जिससे फेफड़ों को और हृदय को अपने काम में बहुत परिश्रम करना पड़ता है और सिर में दर्द हो जाता है। मैंने उक्त बात बताई, पर वे कब मानने चले। मुझे भी कुछ-कुछ सुस्ती आनी प्रारम्भ हो गई थी और ऐसा मालूम होता था मानो उदासी छा गई हो। सिगरेट अच्छी नहीं लगी। अतः फेंक दी और चलने को उद्यत हो गया।

अब उतार साधारण था। लगभग एक मील चलने के बाद मुझे बहुत जोर की प्यास लगी। मैं दोनों ओर देखता जाता था कि कहीं पानी मिले तो पीऊँ, परन्तु यहाँ केवल बर्फ था। एक जगह पानी देखकर मैंने नौकर से पानी लाने को कहा तो शिकारी बोले, "पानी पीने से हानि होगी। यहाँ तो केवल चाय पीनी चाहिए। तीन मील के बाद पड़ाव आ जायगा तब चाय बनाकर पीना ठीक होगा।" ऊँचाई पर क्रोध बहुत आता है। मेरे जी में तो उसी समय लड़ने की आ गई थी, परन्तु चुप रहा। एक मील और चला होऊँगा तबतक सिर में दर्द प्रारम्भ हो गया। प्यास भी बहुत लग चुकी थी। अब मुझसे न रहा गया। मैंने कहा कि कुछ भी हो, मैं कुछ-न-कुछ अवश्य पीऊँगा। शिकारियों ने नीचे की ओर दो मील की दूरी पर एक छोटा-सा तालाब तथा एक घर बताते हुए कहा कि थोड़ा-सा साहस और कर जाइये तो वहाँ गोबर मिल जायगा, जिससे जल्दी चाय

मिल जायगी। परन्तु मैं न माना। वे लोग कई साहबों को देख चुके थे। अतः जानते थे कि ऊँचाई का साधारण मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है। सामानवालों से आगे बढ़ने को कहकर वे रुक गये। मैं भी घोड़े से उतर कर लेट गया। वे बोले कि अगर मैं औंधा सोऊँ तो अच्छा होगा। ऐसा करने पर मुझे थोड़ा आराम मिला। उन लोगों ने पहले से ही चाय तथा ऐस्प्रिन जेब में रख छोड़ी थी। पास से बुर्त्सी खोदकर आग जलाई और चाय बनाई। चाय के साथ ऐस्प्रिन खाई। तब कहीं एक घण्टे में कुछ तबियत ठीक हुई।

सामान के तम्बू लग चुके थे और आग का धुँआ हो रहा था। वह छोल-तक का तालाब अब सुन्दर दिखाई दे रहा था। किनारे पर याक (सुरा-गाय) चर रही थीं। लगभग चार बजे हम भी तालाब के किनारे डेरों पर पहुँच गये। हमने सुरा गायें पहले-पहल देखी थीं। फोटो लिये। जल का रंग गहरा नीला दिखाई दे रहा था और चारों ओर की जल के सहारे की छोटी-छोटी बनस्पति के रंग-बिरंगे फूल ऐसे मालूम दे रहे थे, मानो अच्छा कालीन बिछा हो। यह स्थान लगभग सत्तरह हजार फुट ऊँचा होगा। चाय तैयार थी ही। पी और जो थोड़ा सिर-दर्द रह गया था, मिटाने के लिए एक गोली ऐस्प्रिन की फिर खाई।

हमें देखकर एक जोड़ा कौओं का पास आकर बैठ गया। वे चील से भी बड़े थे तथा एकदम काले थे। पूछने पर मालूम हुआ कि ये तिब्बती कौए हैं। हमने भी इनके डील-डौल को देखकर अनुमान लगाया कि इन्हीं-में कागभुशुण्डजी हुए होंगे। दाऊसाहब ने देखने के लिए एक मार डाला। दूसरे को वहीं मँडराता देखकर मुझे दया आई और उसे भी मार डाला। दोनों के चमड़े निकालकर रख लिये।

नौकर जब भोजन लाये तो खाते ही न बना। उसने बताया कि ऊँचाई पर न भूख लगती है और न नींद आती है। अतः थोड़ा-बहुत निगलकर सो गये। रातभर करवटें बदलते रहे। जब कभी थोड़ी झपकी आ जाती थी।

गुरुवार, २० जुलाई

यह पहले ही बताया जा चुका है कि प्रदेश उत्तर में होने के कारण

यहाँ चार बजे के लगभग उषाकाल हो जाता है। हमें नींद नहीं आई थी और सिर में दर्द था। अतः तीन बजे ही हम लोग उठ बैठे। अभिवादन के पश्चात् दाऊसाहब से कुशल पूछी तो वे बोले, "कल चाँगला से ही सिर-दर्द है और अभीतक वैसा ही है।" वे केवल अकड़ में रहे और ऐस्प्रिन नहीं खाई थी। सवेरे उन्हें भी ऐस्प्रिन दी और हमने भी खाई। साथ के भोटे लोग बुर्सी खोदकर ला रहे थे और आग जलाये, उसे घेरे कुछ बैठे थे और लड़के सो रहे थे। आग पर एक पीतल का बर्तन रक्खा था, जिसमें चाय और मक्खन उबल रहा था। जब जिसकी इच्छा होती थी, अपने-अपने लकड़ी के कटोरे में चाय लेते जाते थे और पी रहे थे। जितने हाथ-पैर सिकोड़े सो रहे थे, सब औंधे पड़े थे और उनकी पीठ पर केवल एक भेड़ का चमड़ा था। कहते हैं कि ऐसा करने से ठण्ड कम लगती है। यह तो मैंने करके नहीं देखा, परन्तु औंधे सोने का फल यह देखा कि सब भोटों की आँखें दोपहर तक लाल रहती हैं।

तालाब कुछ बड़ा नहीं है, परन्तु जल बहुत साफ है। इसके किनारे घूमकर मछली देखते रहे, परन्तु कहीं भी नजर नहीं आई। रात को तीन-चार जोड़े चकवों के अवश्य आ गये थे। जल से कहीं-कहींपर जहाँ सम-तल भूमि थी, सौ गज तक हरी घास थी और उसमें नाना प्रकार के रंग-बिरंगे फूल थे। फूलों के मारे हरी घास ढक गई थी। हमने विचार किया कि इन वनस्पति-हीन पहाड़ों में चलता हुआ आदमी जब कभी ऐसी झीलों को देखता है तो सहसा उसके मुँह से 'वाह-वाह' निकल पड़ती है।

रात को उन पहाड़ों पर थोड़ा-सा बर्फ पड़ गया था, जिससे वे अच्छे मालूम दे रहे थे। यह बताया जा चुका है कि इस ओर बाईस या तेईस हजार फुट के ऊपर ही बर्फ रहता है। नीची जगह का गल जाता है।

खाने और चाय पीने से जब सिर का दर्द बन्द हुआ तो लगभग सात बजे के चल पड़े। हम बराबर उतरते आ रहे थे। अतः दस मील चलकर जब दुरगू नामक ग्राम में पहुँचे तो हमारी तबियत बिल्कुल ठीक हो गई। यहींपर खाना खाया।

प्रथम बार यहाँ पर चाँपा[1] का तम्बू देखा। ये लोग छाते के आकार

१. घर-रहित भेड़-बकरीवाले, जो ऊजड़ प्रदेश में घूमते रहते हैं।

का आठ-नौ फुट चौड़ा तम्बू रखते हैं। चारों ओर रस्सी पर पत्थर रख देते हैं, जिससे आँधी में तम्बू उड़ न सके। ऊपर की ओर बीच में एक छेद रखते हैं, जिसमें से धुँआ निकल जाता है। भेड़-बकरे तो जंगल में थे, परन्तु स्त्री-बच्चे तथा भोटिया कुत्तों के दो-तीन पिल्ले घर पर ही थे। हमारे शिकारियों ने पिल्ले खरीदने चाहे, परन्तु उन्होंने नहीं बेचे। इस प्रदेश में जो पिल्ले चार या पाँच रुपये में मिलते हैं, वही लेह में दस या पन्द्रह रुपये को तथा भारत में जाकर चालीस या पचास रुपये तक के हो जाते हैं। यह सब कुत्ते पर निर्भर है। इन लोगों के कुत्ते बड़े और पहरा देने में बहुत अच्छे होते हैं, परन्तु भारत की गर्मी में बचते बहुत कम हैं।

लगभग दो बजे हम टाँगसी पहुँचे और वहाँ ठहर गये। आज संध्या से ही बादल घिर आये और रात को बारह बजे थोड़ा पानी बरसा तथा हवा बहुत जोर से चली, जिससे नींद लगभग दो बजे आई। वैसे और कोई कष्ट नहीं हुआ।

: १२ :

लद्दाख का आखिरी गाँव

शुक्रवार, २१ जुलाई

आज सवेरे छः बजे तापमान ५८ डिगरी था। चारों ओर की पहाड़ों की चोटियों पर रात को थोड़ा बर्फ पड़ा गया था। टाँगसी इधर बड़े गाँवों में माना जाता है। वैसे यहाँ सौ घर से अधिक नहीं होंगे। यहीं से एक मार्ग चुशल तथा हनले की ओर जाता है, परन्तु हमें तो फोबरंग और चाग चेनमो, जो सिक्यांग के मार्ग पर है, जाना था।

आज कुहरा दबा था और बादल भी थे। अतः जबतक ये थोड़े साफ न होने पाये, चलने की हिम्मत नहीं हुई। लगभग सात बजे चले। दस बजे के करीब मुग़लिक नाम का छोटा-सा गाँव मिला। हमारे कुलियों ने गाँव देखकर गाना प्रारम्भ किया। इसे सुनकर गाँव की छः-सात स्त्रियाँ चाय के बर्तन तथा सत्तू लेकर आ गईं। इस आतिथ्य को

देखकर हमें आश्चर्य हुआ। पूछने पर मालूम हुआ कि इस प्रदेश में बस्ती कम होने से यात्री कम आते हैं। अतः इस ओर अतिथि-सत्कार बहुत होता है। यह बात ठीक भी थी। बड़े शहरों में, खासकर बम्बई में, एक ही मकान में रहनेवाले को लोग प्रायः महीनों तक नहीं जानते हैं; बुलाने और सत्कार करने की तो बात ही दूर है। इधर केवल गाना सुनकर स्त्रियाँ खातिर करने दोड़ी आईं। हमने यहां ठहरकर भोजन किया और कुछ फोटो लिये। भोजन के पश्चात् चल दिये और लगभग बारह बजे चकर तालाब पहुँचे। आज चढ़ाई-उतराई न थी। रास्ता साफ था। अतः शीघ्र पहुँच गये। चकर तालाब एक झील का नाम है, जो छोलतक की झील से कहीं बड़ी है। लगभग एक मील लम्बी और दो फर्लांग चौड़ी होगी। इसके किनारे कहीं-कहीं ऊँचे टीले भी हैं, जिनपर चढ़कर हमने पानी में मछली देखनी चाहीं, परन्तु एक भी न देखने पाये। पानी इतना निर्मल था कि आठ-दस फुट गहरे तक बिल्कुल साफ दिखाई देता था। इस झील में दस-बीस काले रंग की बत्तखें भी थीं। हमारे पास डोर और बंसी थी। अतः आटा लगाकर डाले रहे, परन्तु मछली का पता तक नहीं लगा। इस झील के पास कोई गाँव नहीं है। केवल पड़ाव है, जहाँपर यात्री ठहरा करते हैं। इस जगह हवा भी संध्या से काफी चली और ठण्ड भी अच्छी थी, परन्तु नींद खूब आई।

शनिवार, २२ जुलाई

सवेरे उठकर देखा तो आस-पास बर्फ दिखाई दी। रात को काफी बादल थे। अतः बर्फ गिरी होगी। इस समय भी हवा बड़े वेग से चल रही थी और ठण्ड भी काफी थी। जबसे हमने थांगला पार किया, हमारे तम्बू के पीछे के भाग में नौकर छः इंच चौड़ा तथा एक फुट गहरा गड्ढा बना देते थे, ताकि शौच के लिए बाहर न जाना पड़े। शौच के पश्चात् गड्ढे में मिट्टी डाल देने पर दुर्गन्ध नहीं आती थी और वैसे भी हमें सवेरे चल देना पड़ता था। सन्ध्या को तो तम्बू में शौच करने की आवश्यकता न होती थी। कारण, उस समय इतनी ठण्ड नहीं होती थी, परन्तु सवेरे तो वहीं तम्बू में जाना पड़ता था। चाय पीकर तथा गरम कपड़े पहनकर चलते समय बाहर निकलते थे।

श्रीनगरसे चलते-चलते अब हमारी टांगें, जो टट्टुओं पर बैठकर अकड़ गईं थीं, बिलकुल ठीक हो गई थी। हाथ-पांव तथा मुंह और खासकर नाक का चमड़ा, जो सूर्य-किरणों के मारे दो-दो बार निकल गया था, अब ठीक हो गया था, परन्तु चाँगला पार करने के पश्चात् ओंठ फटने लगे थे, यहाँतक कि हँसते समय खून आने लगा था। वैसे ऊँचाई के कारण मन की दशा कुछ ऐसी हो जाती है कि किसीसे बात करने की इच्छा ही नहीं होती। फिर हँसने की नौबत तो बहुत ही कम आती है। हम ही क्या, यहाँ के रहनेवाले भी आपस में बहुत कम बातें करते हैं। खासकर ऊँची जगह पर तो सब इसी ताक में रहते हैं कि कोई बोले और उससे लड़ा जाय। मैं चिड़चिड़े स्वभाव का नहीं हूँ, परन्तु मुझे भी कई बार ऐसा हुआ कि लड़ पड़ूँ। जिसे देखो, सन्नाटे में बैठा पाओगे। मुझे तो ऐसा लगा कि भारतवर्ष से ऋषि लोग यही देखकर तपस्या करने ऊंची जगह जाते थे।

हम लोग सात बजे के पश्चात् चकर तालाब से चले और छः मील चलने पर पंगुङ्गत्सो नाम की झील के किनारे पहुंचे। यह झील तिब्बत में सबसे बड़ी है। जहाँ हम खड़े थे, वहाँ से हमें लगभग चालीस मील लम्बी और दस मील चौड़ी दीख रही थी। कहते हैं, १६० मील लम्बी है। चौड़ाई कहीं-कहीं एक फर्लांग ही रह गई है। हम लोग उत्तर-पूर्व की दिशा में चल रहे थे। यही कारण था कि प्रतिदिन सवेरे चलते समय सूर्यनारायण सामने पड़ते थे। पंगुङ्ग तो झील का नाम है और 'त्सो' तिब्बती में शायद पानी को कहते हैं। सम्भव है, खारे पानी को कहते हों। झील में हम बाँई ओर उत्तर को मुड़ गये। दाहिनी ओर मार्ग मन, पवम गाँवों में होता हुआ चुशल जाता है। यहाँ से दो मील चलने पर लुकिंग नाम का ग्राम मिला। इसीके पास नाले में हमने भोजन किया। यहाँपर बगदर[1] बहुत थे, जिन्होंने काफी हैरान किया। अब हमको एकदम चढ़ाई मिली और छः मील के पश्चात् फोबरंग पहुँचे।

---

१. एक प्रकार के मच्छर जो काटते तो नहीं, परन्तु आस-पास उड़कर तंग करते हैं।

इस समय एक बजा था। यही हमारा अन्तिम ग्राम था और यहाँ से हमें चाग चेन मो ब्लाक मे जाना था। जितने शिकारी इस ब्लाक में जाते हैं, उन्हें यहाँ आना अनिवार्य है। कारण, भारतवर्ष से आनेवालों को और मार्ग ही नही है। गाँव के पुरुष तो सब अपनी-अपनी भेड़-बकरी तथा याक लेकर पहाड़ों पर चराने निकल गये थे, परन्तु स्त्रियाँ और बच्चे वहीं थे। हमने एक स्त्री को बाहर बैठे बुनते देखा। शिकारियों ने बताया कि यह नम्बू कत्तख बुन रही है। नम्बू कत्तख बकरी के पश्मीने का बनता है, जो बहुत गरम होता है। इन लोगों के पास करघे न होने के कारण इसकी चौड़ाई आठ इंच से अधिक नहीं होती। एक कोट बनाने के लिए एक कत्तख काफी होता है, जो यहाँ बीस रुपये में मिलता है। हमने खरीदना चाहा, परन्तु तैयार न था। दूसरे, लेह के और दूसरे व्यापारी पहले से रुपये दे रखते हैं। इससे इन लोगों से मिलना कठिन है। एक तो कत्तख बनता ही कम है। श्रीनगर में तो मिलता ही नही, परन्तु लेह में भी कम मिलेगा। वह भी लगभग सौ रुपये देने पर। जितने मालदार भोटा हैं, कत्तख का लबादा पहनते हैं।

गाँव में चक्कर लगाकर डेरे पर आए तो हमने लड़कों को पानी में हाथों से कुछ टटोलते देखा। हमारा डेरा गाँव से पूर्व में लगभग एक फर्लांग की दूरी पर दो नालों के संगम पर था। हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऐसे ठण्डे पानी में लड़के क्यों घुसे हैं। वैसे भोटा ठण्डे देश का होने से पानी से बहुत घृणा करता है। हाथ-मुँह कभी नहीं धोता और सम्भव है कि वर्ष में एकाध बार नहाता हो। प्रायः यहाँ की स्त्रियों के मुँह काजल के मारे काले दीखेंगे। हमारे शिकारी किनारे खड़े लड़कों को उत्साहित कर रहे थे कि पकड़ो, इनाम मिलेगा। पकानेवाले नौकर गफ्फारा ने बताया कि इस नाले में स्नोत्रोट[1] है। जब कभी शिकारी यहाँ आते हैं तो लड़के स्नोत्रोट पकड़कर लाने में इनाम पाते हैं। यह मछली बड़ी स्वादिष्ट मानी जाती है।

छः बजे के लगभग चाय के साथ केवल नमक और मिर्च का पानी

१. बर्फ की त्रोट मछली।

लगाकर घी में तली हुई स्नोओट मछली आई। चाँगला पार करने के पश्चात् हमें मीठी वस्तु के अतिरिक्त किसीमें भी स्वाद नहीं आता था। केवल भूख का भ्रम दूर करने के लिए हम दो-दो रोटियाँ खा लेते थे। स्नोओट बहुत ही स्वादिष्ट लगी। इस ओर जानेवाले शिकारियों को चाहिए कि मीठी चीजें साथ में अधिक ले जायें, जैसे टॉफी, कोको, मुरब्बे, मिठाई तथा चाकलेट आदि। हमारे पास दुर्भाग्यवश चाय के लिए शक्कर के अतिरिक्त अन्य कोई मीठी वस्तु न थी। इस ग़लती पर हम अपने आपको बहुत कोसते थे, परन्तु हमने न कहीं सुना था और न पढ़ा था कि ऐसी जगह मीठी वस्तु के अतिरिक्त किसीमें स्वाद ही नहीं आता।/

सन्ध्या समय लोग लौटे। उनसे बातचीत की तो मालूम हुआ कि वे कल नहीं जा सकेंगे। उन्हें बाहर से घोड़े लाने होंगे और खाने का प्रबन्ध करना होगा। अब हमें जल-शून्य प्रदेश में जाना था। फोबरंग लद्दाख का आखिरी गाँव है। यहाँ से सात पड़ाव के पश्चात् सिक्यांग (चीनी तुर्कस्तान) की सीमा मिलती है और उसके चार दिन पश्चात् उधर गाँव मिलता है।

और गाँवों की अपेक्षा यह बहुत ऊँचाई पर है। आज हवा भी बहुत तेज थी। अतः ठण्ड काफ़ी थी। हम लोग भी दिन डूबते ही तम्बू में घुस गये। आज तम्बू के चारों ओर बड़े-बड़े पत्थरों से तम्बू के छोर को दबा दिया गया था, ताकि हवा भी न घुसे और तम्बू भी गिर न सके।

रविवार, २३ जुलाई

रात में काफ़ी बारिश हुई थी। सवेरे उठकर देखा तो चारों ओर पहाड़ों पर बर्फ़ थी। लगभग दस बजे बहुत-से गाँववाले हमारे पास आये। यहाँ के प्रायः सभी वयस्क पुरुष काफी अच्छी हिन्दुस्तानी बोल लेते हैं। कारण पूछने पर मालूम हुआ कि इन्हें प्रत्येक वर्ष गर्मी के दिनों में दो बार शिकारियों के साथ जाना पड़ता है। जो केवल तिब्बती हिरन मारना चाहते हैं, वे तो एक सप्ताह या दस दिन में लौट आते हैं, परन्तु अमन की तथा अन्य जानवरों की शिकार के इच्छुक तीन सप्ताह तक नहीं लौटते। इतने दिनों साहब, उनके नौकरों तथा शिकारियों से हिन्दुस्तानी में बातें होती रहती हैं। यही कारण है कि अन्य ग्रामों की

अपेक्षा यहाँवाले अधिक-से-अधिक दो या तीन सप्ताह तक का सामान ले जाते हैं। फोबरंगवाले अच्छी हिन्दुस्तानी बोलते है। इनमें भी दो को हमने बहुत साफ हिन्दी बोलते सुना। पूछने पर मालूम हुआ कि यही दो मुखिया है। एक को मैंने नोट-बूक में कुछ लिखते देखकर कौतूहल-वश उसे पास बुलाया और उक्त कापी देखनी चाही। देखा तो उसमें लगभग शुद्ध देवनागरी लिपि थी। केवल दो-एक अक्षरों का अन्तर था। वह भी बहुत नही। उसकी भाषा तो नही समझ सकता था, परन्तु मैंने सब बड़ी आसानी से पढ़ लिया। मैंने अपनी डायरी उसे दी। उसे भी मेरी देवनागरी लिपि देखकर आश्चर्य हुआ। वह तो अंग्रेजों की रोमन लिपि या उर्दू की खरोष्टी ही देखता आया था। उसने भी थोड़ी कठिनाई से मेरी डायरी पढ़ ली। हिन्दी की पुस्तक को तो सपाटे से पढ़ गया। जहाँ-जहां क्लिष्ट संस्कृत के शब्द थे, उन्हें छोड़कर शेष का आशय समझ गया। जब उसे मालूम हुआ कि हम शिकार के लिए आए हैं तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपनी बोली में कुछ बातें कीं और हमसे बोला, "हमारे गाँव का बूढ़ा कहता है कि कोई चालीस साल पहले एक अंग्रेज के साथ हिन्दुस्तानी बाबू आया था, जो पहाड़ों में पैमाइश के लिए गये थे। साहब लोगों के साथ बैरा जरूर आये हैं, लेकिन काला साहब (उसका मतलब भारतीय शिकारी से था।) कभी शिकार को नहीं आया। क्या आप लोग अंग्रेजों की तरह सब तकलीफ उठा लोगे? और बन्दूक लगाना भी जानते हो?" इन सब बातों को सुनकर हमें कुछ तो क्रोध आया और कुछ लज्जित भी होना पड़ा कि इन लोगों के हिन्दुस्तानियों के प्रति कैसे विचार हैं? जब भारतीय शिकारियों के विषय में बताया तो वह बोला, "काले साहब भले ही शिकारी होंगे, परन्तु हमारे इधर तो काश्मीर के महाराज या उनके नौकर या सरदार कोई भी आज-तक नहीं आए। इससे हम तो यही समझते हैं कि काला साहब न मेहनत कर सकता है, और न बन्दूक लगाना ही जानता है।" उसका कहना भी ठीक था। जैसा सुना और देखा, बिचारा कह रहा था।

जब मैंने उसका नाम पूछा तो उसने मुँह बिगाड़कर ऐसी विचित्र ध्वनि में नाम बताया कि कई बार पूछने पर भी समझ में नहीं आया।

तब मैंने उसे कागज़ पर लिखने को कहा। उसने लिखा 'कौंचोक छुछपैल'। ये अक्षर पूरी ध्वनि को नहीं बता सकते। हमारी वर्णमाला में उक्त ध्वनि को व्यक्त करने के लिए कोई अक्षर ही नहीं हैं। मैं भी उसे शुद्ध रूप में नहीं लिख सका। भविष्य में 'कौंचोक छुछपैल' को सुभीते के लिए केवल 'कौंचोक' कहेंगे।

भोजन के समय और तो सब चले गये, परन्तु कौंचोक रह गया। आज दिन यहीं रहना था। अतः हमने अपने कपड़े और साबुन उसे देकर कहा कि उन्हें धुलवा दे। ठण्ड के कारण स्नान तो नहीं किया, परन्तु कपड़े बदल लिये। लेह से अभीतक स्नान नहीं किया था और न दाढ़ी ही बनाई थी। अतः विचार हुआ कि स्नान न सही, परन्तु दाढ़ी बनाना चाहिए; लेकिन कौंचोक ने रोक दिया। उसने बताया कि अँग्रेज तो श्रीनगर से ही दाढी बढ़ाते आते हैं। फिर हमारी दाढ़ी तो अभी छः दिन की थी। ठण्ड से मुँह को बचाने के लिए दाढ़ी आवश्यक है। हम भी मान गये। दोपहर को फिर स्नोत्रोट बनी। गफारा बोला कि अब मांस नहीं गलता। उसका कहना भी ठीक था। इतनी ऊँचाई पर, जहाँ थोड़ी-सी आँच में पानी उबलने लगे, वहाँ मांस कैसे गलता ?

दोपहर में हमारे नौकर बूटों पर पालिश तथा कपड़ों की धुलाई आदि में लग रहे थे। हम भी अपनी डायरी लिखते रहे।

संध्या समय कौंचोक फिर आया। मैंने उससे कहा कि और सब बातों का कष्ट तुम लोगों को अवश्य है, परन्तु खाने के लिए ईश्वर ने तुम्हें स्नोत्रोट-सरीखी जायकेदार मछली दी है जो हाथों से पकड़ी जा सकती है। यह सुनकर वह बोला कि भोटा किसी प्रकार की मछली नहीं खाते। मैं समझा कि यह उनके धर्म में निषिद्ध होगी तो वह बोला कि ऐसा नहीं है, परन्तु इसकी गन्ध और स्वाद उन्हें पसन्द नहीं। भला देखिये, इन गन्दे लोगों को भी मछली की बू आती है ! कैसा विचित्र संयोग है !

संध्या समय खबर मिली कि टट्टू आ गये और गाँववाले सत्तू आदि बनाकर तैयार हैं। यदि कल खुला रहा तो चांग चेन मो चले जायंगे। कौंचोक को नैग्री तथा चाँग चेन मो नदी के पास शिकार का



लद्दाख के सबसे प्राचीन लामायुरू बौद्ध विहार का भवन



मटायम से कोल्हाई (अमरनाथ) का दृश्य

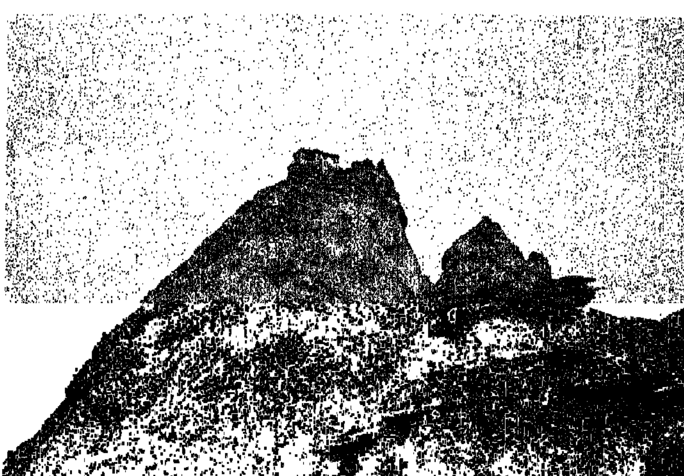
कर्गिल से उत्तर में बल्ती लोगों का एक गांव





कर्गिल के पड़ाव में सामान लादते हुए

मुलबेख का गोम्पा

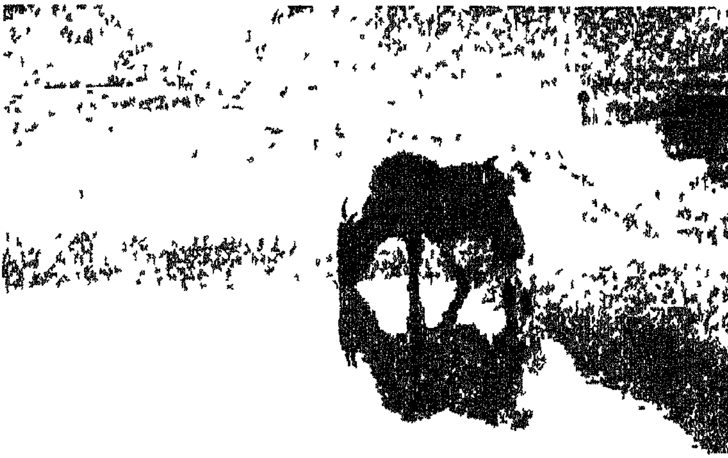




मुलबेख में गधों पर पोलो खेलनेवाले बालक-बालिकाएं

लेह के पास सिंधु घाटी का दृश्य





छोलतक पड़ाव के तालाब मे चरती हुई याक (सुरागाय)

मन के पडाव मे पङ्ग्‌ग झील का दृश्य । दूर के पहाड तिब्बत के है

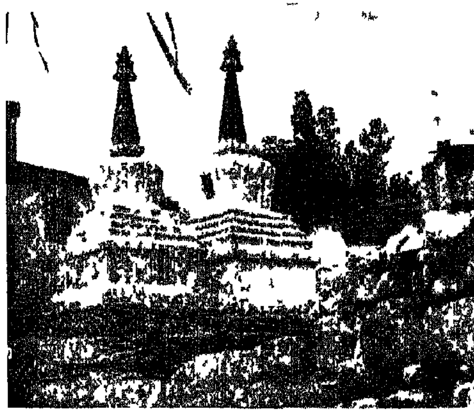




कारझील पर डेरा

मीरु से पश्चिम में लगभग १७,००० फुट पर लिया हुआ दृश्य





शकर बौद्ध विहार के निकटवर्ती गोम्पा

लद्दाख की एक पाठशाला के बच्चे





मुख्य बाजार से लिया हुआ लेह का दृश्य

अच्छा ज्ञान था तथा दूसरे को नेग्री के पहाड़ के पूर्व-दक्षिण ओर के तोकफू-कोर्फू का पूरा पता था। आज रात को यह ठहरा कि मैं नेग्री की ओर तथा दाऊसाहब तोकफू-कोर्फू जायँगे। मेरे कुलियों का अगुआ कौंचोक तथा दूसरा दाऊसाहब के कुलियों का था।

: १३ :
टोली बँट गई

सोमवार, २४ जुलाई

रात को वर्षा होने के कारण पहाड़ी पर बर्फ पड़ी थी। आज हम लोगों के टट्टुओं के अतिरिक्त भोटे के भी आठ टट्टू थे। अतः मुझे संदेह हुआ कि इन लोगों ने बोझ, जितना अभीतक लदता आया, नहीं लादा और व्यर्थ के दाम अधिक लगेंगे। पूछने पर मालूम हुआ कि अधिक टट्टू कुलियों का ओढ़ना, खाना तथा छोटे तम्बू ले जा रहे हैं, जिनका किराया हमसे नहीं लिया जायगा।

बादल साफ होने लगे थे। अतः हम सात बजे के लगभग चल दिये। मर्स-मिकला लगभग १८५०० फुट ऊँचा है। अन्त के ५०० फुट की चढ़ाई थोड़ी कड़ी है। यहाँपर कुत्तों की भाँति कुछ घोड़ों की जीभें हाँफते समय निकल गई थीं। भोटे भी सहारे के लिए घोड़ों की पूँछें पकड़े थे। बीस-पच्चीस गज चलकर वे घोड़ों के साथ रुक जाते थे और घुटनोंपर हाथ रखकर दम लेते थे। बड़ा ही दयनीय दृश्य था। जी में आता था कि ऐसे में घोड़ों पर बैठना बड़ा ही निर्दयता का काम है, परन्तु विवश थे। कहीं-कहींपर घोड़े, भेड़-बकरी तथा याक के कंकाल भी मिल रहे थे, जो इस दर्रे की दुर्गमता के प्रतीक थे। रास्ते में कई जगह बर्फ पर चलना पड़ता था, परन्तु बर्फ अधिक नहीं थी।

लगभग बारह बजे ऊपर पहुँचे, जहाँ अन्य दर्रों की भाँति एक बड़ा पत्थर का ढेर था और कुछ झंडियाँ लगी थीं। दम फूलने के मारे जोर से तो नहीं, परन्तु यथा-शक्ति सबने 'लो सलो हर गलो' का नारा लगाया और सुस्ताने के लिए बैठ गये। निस्तब्धता छाई थी। कोई किसीसे नहीं

बोल रहा था। टट्टू भी चरने के बजाय चुप खड़े, जितना बन सकता था, फेफड़ों में हवा भर रहे थे। आकाश साफ था और मन्द-मन्द हवा बह रही थी। कुछ सिर-दर्द तथा जी मिचलाने पर भी मैं आस-पास की हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियों को देख रहा था और अपने ध्यान में मग्न था। इतने में दाऊसाहब ने अपना सिगरेटकेस मेरी ओर बढ़ाया। मुझे इतना क्रोध आया, मानो किसीने मेरी समाधि भंग कर दी हो। मैंने तमककर कहा, "क्या आप समझते हैं कि मेरे पास सिगरेट नहीं है? मुझे जब पीना होगा, पी लूंगा, परन्तु आपने मुझे क्यों छेड़ा?" बिचारे दाऊसाहब घबरा गये और लगे माफी माँगने। यह देखकर दोनों शिकारी, जो पास में बैठे थे, समझाने लगे कि आज आसमान साफ है। इससे घास की बू का असर हो रहा है। गुस्सा आना ठीक ही है। इससे दाऊसाहब को बुरा न मानना चाहिए। हम फिर चुप हो गये। इस प्रकार एक घण्टा बैठे होंगे कि तोकफू-कोर्फू की ओर जानेवाले कुली अपने-अपने टट्टू सम्हालने लगे और उनके मुखिया ने हमारे पास आकर उत्तर-पूर्व की ओर एक दर्रे की ओर संकेत करके कहा, "हमें इस घाटी में उतरकर दूसरा सामनेवाला क्यूला पार करना है और उधर चार मील उतरने के बाद ही हम डेरा डाल सकेंगे। इसमें हमें शाम हो जायगी। इसलिए हमारा चल देना जरूरी है। उत्तर की तरफ यानी पमजल जानेवालों को अब उतार है और सात ही मील जाना है, जिसमें सिर्फ़ तीन घण्टे लगेंगे। इसलिए यह पार्टी अभी ठहर सकती है।" इस पार्टी से उसका उद्देश्य मेरी पार्टी से था। यह सुनकर बिना कुछ बोले हम सब उठ खड़े हुए।

चोटी से आधा मील के पश्चात् हमारे मार्ग पृथक्-पृथक् होते थे। अभीतक मैं दाऊसाहब से कुछ नहीं बोला था। कारण, सिर का दर्द बढ़ता जाता था। जब हम अलग होने लगे तो दाऊसाहब ने प्रणाम कर पुनः माफी माँगी और कहा, "पहली अगस्त को अवश्य लौट आइये।" मैंने केवल सिर झुकाकर 'हाँ' कर दी।

हम उत्तर की ओर बढ़े और वे पश्चिम की ओर। रास्ते में दो जगह कियांग (जंगली घोड़े) मिले। इन्हें देखने का हमारा पहला अवसर था, परन्तु सिर-दर्द और बेचैनी के मारे मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। हम उतरते जा

रहे थे, परन्तु उतार कम था। चार मील गये होंगे तबतक दर्द असह्य हो गया। मैंने टट्टू रोका और उतरकर बोला, "मैं अब नहीं बढ़ सकता।" सब जानते थे कि समझाना बेकार होगा, परन्तु फिर भी उन्होंने मुझसे बहुत कहा कि इतनी ऊँचाई पर ठण्ड से कष्ट होगा, परन्तु मैं नहीं माना। तब कौंचोक ने बाँई तरफ नीचे की ओर थोड़ी दूर पर दो नालों के संगम पर कुछ पत्थर की दीवारें बताकर कहा, "देखिये, वह रीमड़ी का पड़ाव है। अगर आप तीन-चार मील और चल लेते तो आपको, हमको और घोड़ों को आराम मिलता; लेकिन आपको बहुत तकलीफ है, इसलिए चलिये, रीमड़ी में ठहर जायँगे। अच्छा हुआ जो आप इधर आये। अगर तोकफू-कोर्फू जाते तो क्यूला और पार करना पड़ता। तब आपकी क्या हालत होती?" यह बात सुनकर हिम्मत बाँधी और रीमड़ी पड़ाव तक पहुँच गया। लोगों ने बहुत कहा, परन्तु मैं टट्टू पर नहीं बैठा। ऐस्प्रिन खाई, कहवा तैयार की गई और पी, परन्तु कोई फर्क न पड़ा। मैं बराबर यही कहता रहा कि तम्बू लगाओ। मैं तो बिस्तरे पर लेटूंगा। जब सब समझ गये कि मैं नहीं हिलूंगा तो सामान उतारा गया। तम्बू में आग रक्खी गई। पाँच बजे तक तीन बार ऐस्प्रिन खाई और कहवा पीया, सिर दबाया गया, तब कहीं थोड़ा ठीक हुआ, अन्यथा तन्द्रावस्था थी। सन्ध्या को किसीने भोजन नहीं किया और रात-भर करवटें बदलते रहे। किसी को नींद नहीं आई।'

'बड़े सवेरे शौच को उठकर पर्दा हटाने के लिए गुसलखाने की ओर हाथ बढ़ाया तो बाँस की जोड़ की लोहे की साम में हाथ लग गया। वह इतना ठण्डा था कि मेरा हाथ वहीं चिपक गया। थोड़ा जोर लगाया तब वहाँ से हाथ खींच पाया। यह देख मैं करगिल के मास्टर की बात मान गया कि जाड़ों में अवश्य लोहे से आदमी चिपक जाते होंगे।'

'रीमड़ी का पड़ाव लगभग १७,५०० फुट ऊँचा होगा। यहाँपर याक-वाले भोटे कभी-कभी ठहर जाते हैं, या मेरे सरीखे शिकारी, अन्यथा ऊँचाई और ठण्ड के कारण कोई यहाँ ठहरना पसन्द नहीं करता।'

: १४ :
शिकार के देश में

मंगलवार, २५ जुलाई

आज सवेरे छः बजे तापमान ४१ डिगरी था। सात बजे के लगभग मोख्तालोन चाय लाया और बोला, "रात को बहुत ठण्ड थी और ऊँचाई के मारे किसीको भी नींद नहीं आई। सबको ऐस्प्रिन खानी पड़ी। हुजूर की तबियत कैसी है?" मैंने कह दिया, "सिर में तो दर्द नहीं है, परन्तु नींद न आने से बेचैनी और भारीपन है।" उसने बताया कि सामान लद गया और अब मेरे तम्बू को लादने की देर है। बाहर निकलकर देखा तो जो नाला कल खूब बह रहा था, आज जम गया था। चारों ओर बर्फ की सफेद चादर-सी बिछी थी। तम्बू तोड़कर लादने के लिए भोटे आ पहुँचे। मैंने कहा कि सामान को आगे चलने दो, परन्तु काँचोक बोला कि अब जानवर मिलने की उम्मीद है। इसलिए हमें आगे रहना चाहिए। जब हम चलने लगे तो मुझे एक सफेद कुत्ता नजर आया। मैंने मोख्तालोन से कहा कि अगर यह साथ रहा तो रात भर भौंकेगा, जिससे जानवर पास न आयंगे और रास्ते में यह आगे दौड़कर जानवर भगा देगा। मेरे प्रस्ताव को वे मान गये और जिस भोटा का कुत्ता था, उससे कह दिया कि वह कुत्ते को वापस फोबरंग ले जाय।

ठण्ड बहुत होने के कारण आज हमें स्वेटर तथा कोट आदि पहनने पड़े, फिर भी चलते समय टट्टू की लगाम पकड़ने में हाथ ठीक काम नहीं दे रहे थे। हम उत्तर की ओर बढ़ रहे थे और बराबर उतरते जा रहे थे। उधर सूर्य भी चढ़ता आ रहा था। अतः हमारी तबियत ठीक होती जा रही थी। रास्ते में तीन-चार जगह कियांग (जंगली घोड़े) मिले। मनुष्य को देखकर ये बहुत नहीं चौंकते। झुण्ड में रहते हैं और प्रायः सब सुर्ख रंग के होते हैं। पूँछ इनकी खच्चर जैसी होती है, शेष शरीर बिल्कुल घोड़े जैसा। ऊँचाई बड़े टट्टू जितनी होती है। यदि इनको दूर से मनुष्य दिखाई दे तो दौड़कर सौ डेढ़-सौ गज तक आ जायंगे और

फिर भाग जायंगे। इस प्रकार चलते-चलते कई बार देखने को आते हैं। आप यह देखेंगे कि अबकी बार तो भाग गये, परन्तु थोड़ी ही देर में देखेंगे कि दूसरी ओर से भागने चले आ रहे हैं। कियांग कई बार शिकारियों की शिकार इस हरकत से खराब कर देते हैं। एक तो इनके भागने से धूल के गुब्बारे उड़ते हैं। दूसरे, बार-बार इनके भाग जाने से और फिर लौटकर देखने आने से शिकार चौंक जाती है, या कम-से-कम चौकन्नी अवश्य हो जाती है, जिससे उसके पास पहुंचना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि अपनी शिकार को खराब होते देखकर शिकारी चिढ़ जाता है और इन्हें मार डालता है।

एक जगह हमें अमन की मादा और उसका बच्चा दिखाई दिया। घोड़े से उतरकर दूरबीन से खूब देखा। वह चरती हुई पहाड़ पर चढ़ती जा रही थी। बड़ी तो चितरिथा जितनी थी, परन्तु मोटी बहुत थी।

रास्ते में दोपहर का भोजन किया और लगभग तीन बजे पमजल पहुंचे। अन्य स्थानों की अपेक्षा यह गर्म जगह है। पमजल कोई गाँव नहीं है, परन्तु मर्रामिक नाले और चैंगचेनमो नदी के संगम पर, जो पड़ाव है उसीका नाम पमजल है। नाले के दोनों किनारे संगम से एक मील ऊपरतक जमुनियाँ (जल-जामुन) के-से पत्तोंवाले पेड़ों का जंगल है। हमने घने पेड़ जोजोला पार करने पर यहीं देखे। इनकी गुटाई दस-बारह इंच से अधिक न थी। जब हमें यह जंगल मिला तो इसमें फुदकते हुए बीसियों खरगोश दिखाई दिये। ये भारतीय खरगोश से ड्योढ़े और लम्बे बालोंवाले होते हैं। देखने के लिए एक खरगोश मारा। जब मैंने भोटों से पूछा कि यदि वे खाना चाहें तो और मार दूँ तो कौंचोक ने बताया कि वे लोग खरगोश नहीं खाते। उनकी बोली में इसे 'रिबांग' कहते हैं। वैसे इन्हें कोई धर्म की रोक नहीं है, परन्तु वे इसके मांस को बहुत बुरा समझते हैं। कैसी विडम्बना है! महीनों का रक्खा हुआ गाय, भेड़, बकरी का मांस खा लेंगे, परन्तु तत्काल मारे खरगोश को न खायंगे!

डेरा लगने के पश्चात् थोड़ी गरमी के कारण सूर्यास्त तक मैं बाहर बैठा रहा था। ज्योंही दिन छिप रहा था, चारों ओर से बहुत-से खर-

गोश फुदकते दिखाई देते थे। इन्हें कोई नहीं मारता था। इससे डरते भी नहीं हैं। हमारे तम्बू से तीस गज़ पर कई बार खरगोश आकर चरते रहे। आज रात को थोड़ी नींद आई।

बुधवार, २६ जुलाई

आज सवेरे छः बजे तापमान ४८ डिगरी था। यह तो पाठकों को पहले ही बताया जा चुका है कि फोबरंग तक मार्ग में यात्रियों के चलने से घोड़े की लीद आदि के चिह्न मिलते थे। उसे रास्ता कहा जा सकता था। फोबरंग से पमजल तक फिर भी कुछ मालूम पड़ता था कि यहाँ होकर गाय-भेड़-बकरी निकली होंगी, परन्तु आज हम सवेरे सात बजे जब नेग्री की ओर पूर्व दिशा में चले तो कोई चिह्न नहीं मिला। केवल दिशा के सहारे भोटे के जाने हुए पहाड़ों के अनुमान से जा रहे थे। मेरी जेब में, जिस जगह हम होते थे वहाँ का एक इंच=४ मील के पैमाने का नकशा रहता था। इसमें मैं नई जगह के चिह्न तथा नाम बनाता जाता था। मुझे मालूम था कि नेग्री तथा अन्य शिकारी जगह चैंगचेन मो नदी के बाँएं किनारे अर्थात् दक्षिण की ओर थे। यह वृत्तान्त मैं अन्य शिकारियों की शिकार-यात्रा की पुस्तकों में पढ़ चुका था। चैंग चेन मो नदी लनकला की ओर से पश्चिम की ओर बहती हुई पमजल से कुछ नीचे शायोक नदी में मिलती है, जो उत्तर की ओर से काराकोरम पर्वत-माला के बर्फ के पानी को लाती है। इन दोनों के संगम के पश्चात् शायोक पूर्व की ओर मुड़ गई है और सिन्धु से जा मिली है।

लगभग पाँच मील चलने के पश्चात् हम चैंगचेन मो नदी के पास पहुँचे। भोटों ने जब बताया कि हमें नदी पार करनी होगी तो मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने कहा कि नदी के उत्तर की ओर जाने से तो शिकार नहीं मिलेगी। तब कौंचोक ने बताया कि यहीं नदी ने घूम खाई है। यदि बाँया किनारा पकड़े रहेंगे तो चढ़ाई-उतराई के अतिरिक्त चक्कर बहुत खाना पड़ेगा। सीधे जाने से चक्कर बच जायगा और रास्ता समतल मिलेगा। यह बात अवश्य है कि नदी दो बार उतरनी पड़ेगी।

यह देखने के लिए कि नदी में पानी कितना है, हमने सामानवालों से टट्टू लेकर पहले उतरने को कहा। यह नदी यहाँपर सम-भूमि होने के

कारण पहाड़ी नदियों की भाँति न तेज बहती है और न संकरी है। दोनों किनारों में लगभग दो सौ गज का अन्तर होगा और पानी की धारा लगभग अस्सी गज चौड़ी होगी। भोटों ने अपने बूट और चोगे उतारे और बिल्कुल नंगे हो गये। यह देखकर मुझे तो आश्चर्य हुआ, परन्तु उन लोगों ने किसी प्रकार यह नहीं दिखाया कि वे झेंपते हैं। बराबर बातें करते रहे और हम लोगों को वहाँ की शिकार का हाल बताते रहे। अगुआ के कहने पर सबने ढोरों की भाँति घोड़ों को आगे किया और 'लो लो' गाते हुए पानी में घुस गये। इस 'लो' शब्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं बोले। प्रारम्भ में तो मैं समझा कि गाना प्रारम्भ करने के पूर्व, सम्भव है, यहाँ की रीति ऐसी ही हो, परन्तु वे बराबर पन्द्रह मिनटतक, जबतक उस पार न हुए, बराबर 'लो-लो' को कई प्रकार से ऊँचे स्वर से गाते चले गये। एक जगह पानी लगभग पाँच फुट होगा। यहाँपर टट्टुओं पर रक्खा हुआ सामान भीगते देखकर मेरे नौकर गला फाड़-फाड़कर गालियाँ दे रहे थे कि गहरे पानी को बचाकर निकलो, परन्तु 'लो-लो' के ऊँचे स्वर के गाने में वे कब सुननेवाले थे! मुझे तो हँसी आ गई। जब वे उधर *निकल गये और गाना बन्द हुआ तो मोक्तालोन ने चार भोटे बुलाये।* हमारी यह सलाह थी कि घोड़े की काठी खोलकर भोटों के सिर पर की जाय तथा पतलून खोलकर नंगी पीठ पर चढ़ा जाय। इस प्रकार काठी और कपड़े गीले न होंगे।

भोटों के आने पर हमने ऐसा ही किया। मैंने लंगोट रहने दिया, परन्तु मेरे काश्मीरी नौकरों के पास लंगोट नहीं था। गरम पाजामे उतारकर आगे-पीछे हाथ से कुरते दाबे रहे। जब नदी में पानी छूने लगा तो ऐसा मालूम देता था मानों कोई चाकू से वार कर रहा है, परन्तु किया ही क्या जा सकता था? उधर पहुंचकर लंगोट खोलकर गरम पतलून पहनी। नौकरों ने सब सामान को खोल-खोलकर देखा कि कितना भीगा है। भाग्यवश कोई हानि नहीं हुई। इस काम में हमें लगभग एक घण्टा लग गया। तब चले। कुछ मील जाने पर फिर नदी उतरनी पड़ी। अबकी बार भोटों के बहुत कहने पर भी हम न माने कि पानी कम है। जब उनमें से दो आदमी पहले उतरे और हमने देख लिया कि पानी कमर से कम है

तब हमने सामान-सहित घोड़े उतरने की अनुमति दी, अन्यथा हमने कह दिया था कि सामान टट्टुओं पर नहीं, सिर पर ढोओ।

उस पार पहुँचते हमें लगभग बारह बजनेवाले थे। अतः यहींपर भोजन किया। मैंने कौंचोक से पूछा कि वे लोग केवल 'लो-लो' क्यों चिल्लाते थे ? क्या गाना नहीं गा सकते ? उसने बताया कि इस प्रकार चिल्लाने से पानी ठण्डा नहीं लगता। मैंने तो विश्वास नहीं किया, परन्तु हो सकता है कि इस प्रकार उनका ध्यान बँट जाता हो और पानी कम ठण्डा मालूम देता हो।

भोजन के उपरान्त हमने नदी का किनारा छोड़ दिया और तीन मील की चढ़ाई के बाद हम एक लम्बे-चौड़े मैदान के किनारे पहुँचे। ठीक पूर्व की ओर जा रहे थे। यहींपर एक छोटी-सी पहाड़ी के तले गन्धक के गर्म सोते थे, जिनका पानी बहुत गर्म था। कुछ विश्राम के लिए यहाँ बैठ गये। वैसे यहाँ से हमें एक मील चलकर ठहर जाना था, परन्तु शिकारी और भोटों की सलाह हुई कि यहाँ और नेग्री के बीच डेरा डाला जाय तो नेग्री जाने के लिए डेरा उठाना न पड़ेगा। यह मैदान लगभग बारह मील लम्बा और दो से चार मील चौड़ा होगा। ब्रिटिश भारत की सीमा में इस मैदान में नेग्री के पहाड़ के दक्षिणी और तोकफू-कोर्फू के मैदान के अतिरिक्त कहीं भी तिब्बती हिरन नहीं मिलते। मेरे नकशे में यह गरम सोता तथा नेग्री बताई हुई थी। कौंचोक ने यह भी बताया कि इस वर्ष इधर बहुत से भेड़िये आ गये हैं। अतः हिरन तिब्बत की सीमा में भाग गये हैं। हमसे एक महीने पूर्व एक जर्मन जौहरी यहाँ शिकार को आया था, जो हमें रास्ते में मिला था।

यहाँ से चलने के कुछ ही देर बाद हमें कई जगह तिब्बती हिरनों के पद-चिह्न मिले। आकृति में भारतीय हिरनों के-से थे, परन्तु कुछ लम्बे और चौड़े थे।

एक जगह एक फुट गहरा तथा दो-ढ़ाई फुट चौड़ा गड्ढा दिखाकर कौंचोक ने मुझसे पूछा कि यह क्या है ? मैंने बता दिया कि यह हिरन की बैठक है, जहाँ हिरन दोपहरी में बैठ जाता है। एक हिरन ऐसी कई बैठकें बनाये रखता है। कारण, उसकी पीठ पर पिछली टाँगों के जोड़ के

पास कीड़े रहते हैं । वे वहीं अण्डे देते हैं और बढ़ते हैं । चार-पाँच से ज्यादा नहीं रहते । जब अधिक हो जाते हैं तो वे दूसरे नये हिरन पर चले जाते हैं, या पुराने उन्हें मारकर भगा देते होंगे । जब कभी ये कीड़े काटने लगते हैं तो दर्द के मारे हिरन एकदम उठकर दौड़ लगाने लगता है और जबतक वे शान्त नहीं होते, हिरन भागता ही रहता है । इस हरकत को देखकर प्राय: शिकारी आश्चर्य करते हैं कि बिना कुछ देखे यह हिरन क्यों भागता फिर रहा है ? भागते-भागते जहाँ वे शान्त हुए, वहीं पास की बैठक में वह बैठ जाता है । यह सुनकर कौंचोक बोला, "ओहो, साहब ने सब पढ़ रक्खा है । इसीसे ये सब बातें इनको मालूम हैं ।"

इन गरम सोतों से हम पाँच-छः मील चलकर नदी के किनारे एक घूम में ठहरे । यहाँपर किनारे ऊँचे होने के कारण हवा से बचत थी और बुर्तसी पास ही में काफी थी, जिसकी ईंधन के लिए अत्यन्त आवश्यकता थी । यहाँ पड़ाव न था, अन्यथा गोबर आदि मिलता । तम्बू आदि लगने पर हम लोग तो चाय पीने में लगे, परन्तु मोख्तालोन दूरबीन लेकर कुछ भोटों के साथ निकल गया ।

लगभग छः बजे उसने खबर दी कि एक हिरन चर रहा है । मैंने हबीबा को बुलाकर कहा, "मैं सत्ताईस दिन से चलता-चलता थक गया हूँ । तू जाकर देख आ । अगर पास हो और मारने के दाव में हो तो मैं चलूँगा, नहीं तो कल देखा जायगा ।" लगभग आधे घण्टे में वह लौटकर आया और चलने का आग्रह किया । साथ में चार घोड़े लिये । तीन पर हम बैठे और एक मोख्तालोन के लिए था । उसके पास जाकर देखा, हिरन चर रहा है, परन्तु मैदान ऐसा था कि कहीं से भी हम पाँच सौ गज के अन्दर नहीं पहुँच सकते थे । इधर-उधर छोटे नालों में घुसकर बहुत देखा, परन्तु कहीं से भी पास पहुँचने की सूरत दिखाई न दी । इसीमें उसने हमें देख लिया और पूर्व की ओर नदी में उतरने लगा । अब हमने समझा कि दाव में आ जायगा । कारण, नदी के दोनों किनारों पर छोटे नाले अथवा भरका काफी थे । जहाँ वह उतरा था, नदी किनारे पत्थरों का एक ढेर कर रखा था । हमने यह तै किया कि पत्थर के इस ढेर के पास छूककर इसीकी आड़ से नदी में देखा जाय । जब पत्थर तीन

फर्लांग रह गया तो घोड़ों से उतरकर मैं और मोख्लालोन झुके। ज्यों-ज्यों ढेर पास आता जाता था, हमें झुकना पड़ रहा था। ढेर दो फुट से अधिक ऊँचा न होगा, अन्तिम पचास गज तो हमें बैठे-बैठे खिसकना पड़ा। जब पास पहुँचे तो हमारी साँस फूल गई। धीरे से नदी में देखा तो आठ हिरन चर रहे थे, जो लगभग दो सौ गज़ होंगे। देखकर मोख्लालोन बोला, "अभी बन्दूक मत चलाओ। औंधे पड़कर दम ले लो। हवा हमारी ओर चल रही है। हिरनों को मालूम न होगा।" जबतक साँस ठीक न हुई हम दोनों भोटों की भाँति औंधे पड़े रहे। पन्द्रह मिनट के पश्चात् जब ठीक हो गये तो पुनः हिरनों को दूरबीन से देखा तथा उनके आस-पास की भूमि भी देखी। हम यह चाहते थे कि और पास पहुँच सकें तो अच्छा है, परन्तु इस जगह से उत्तम कोई जगह न थी।

मैं जंगलों की शिकार खेला हुआ था। अतः इतनी दूर बन्दूक बहुत कम चलाई थी। बरसों में जब-कभी चिढ़कर हिरन पर गले ही चलाता था, परन्तु लगती कभी न थी। मैंने मोख्लालोन को यह सब बता रक्खा था। उसने साफा उतारकर पत्थर पर रख दिया और बोला कि इसपर बन्दूक रखिये और खूब मिलाकर चलाइये। इस प्रदेश में हवा पतली होने के कारण दूर की वस्तु पास दीखती है। मुझे यह हिरन ऐसे मालूम देते थे, मानो अस्सी गज़ पर हों। पाठक मेरे मन की दशा का अनुमान कर सकते हैं। सत्ताईस दिन टट्टू पर बैठे श्रीनगर से लग-भग साढ़े चार सौ मील इन पहाड़ों को पार करता हुआ यहाँ पहुँचा था और फैर करने का यह प्रथम अवसर था। दो बार बन्दूक जोड़कर उतार ली। दिल में धुकधुकी लगी थी कि कहीं ऐसा न हो कि निशाना चूक जाय। मोख्लालोन कई शिकारियों को देख चुका था। अतः वह मेरी दशा को खूब जानता था। उसने ढांढस बँधाते हुए कहा, "देर कितनी ही हो जाय, परन्तु ठीक शिस्त लेकर जब आपको लगने का यकीन हो जाय तब फैर कीजिये।"

इन आठ हिरनों में पाँच नर तथा तीन मादाएँ थीं। मैंने बड़े को दूरबीन से पहले ही छाँट लिया था। अतः दो बार उसी पर शिस्त लगा चुका था। जब वह ठीक आड़ा खड़ा हुआ चर रहा था, तब मैंने तीसरी

बार फिर बन्दूक जोड़ी और पूरा ध्यान लगाकर फ़ैर किया। फ़ैर के साथ ही हिरन कुलाँट खा गया और दूसरे वहीं पर उछलने लगे। यह देखकर मोख्तालोन बोला, "शाबास! और फ़ैर कीजिये।" फिर जोड़कर फ़ैर किया तो एक हिरन की पीछे की टाँग टूट गई और वह दूसरों को छोड़कर धीरे-धीरे नेग्री की ओर भागा, परन्तु दूसरे वहीं कूदते रहे। यह देखकर मोख्तालोन जो दूरबीन से देख रहा था, बोला, "शाबास! बाँई ओर से नम्बर दो वाला हिरन बड़ा है। मारिये इसे भी।" मैंने फिर बन्दूक जोड़ी और फ़ैर किया, परन्तु गोली नीचे उतरी। उस हिरन की आगे की टाँग घुटने के पास से टूट गई। अब सब हिरन नदी पारकर उत्तर की ओर के पहाड़ पर चढ़ने लगे, परन्तु दूसरे फ़ैरवाला हिरन बहुत धीरे-धीरे रुकता हुआ नदी किनारे होकर जा रहा था। उसे देखकर मोख्तालोन बोला, "हुजूर, वह अभी तीन सौ गज होगा। जरा ठीक शिस्त मिलाकर एक फ़ैर तो कीजिये, ताकि गर जाय।" मैंने फिर फ़ैर किया, परन्तु बच गया। इस प्रकार मोख्तालोन के प्रोत्साहन से मैंने दो फ़ैर और किये, परन्तु वे भी न लगे। तब मैंने कारतूस खराब करना उचित न समझा और कह दिया कि अब न लाऊँगा। वह बोला, "कोई हर्ज नहीं। इसकी पिछली टाँग जड़ से टूटी है। दूर नहीं जायगा। आज नहीं तो कल, हम इसे ढूंढ़ ही लेंगे। तीसरा हिरन मिलना मुश्किल है, क्योंकि उसकी आगे की टाँग घुटने के पास से टूटी है।" मोख्तालोन ने ठीक ही कहा था। एक तो, टाँग बहुत नीचे से टूटी। दूसरे, उसे दूसरे हिरनों का साथ था अतः उसका दूर चले जाना सम्भव था और इतने घाव से वह मर भी नहीं सकता था। इसी बीच हबीबा और कौंचोक घोड़ों पर सवार एक-एक घोड़ा पकड़े भागते हुए हमारे पास आये। गरा हिरन तो वे नहीं देख पाये थे, परन्तु दोनों घायल हिरन देख लिये थे। वे बोले कि घोड़ों पर बैठकर पीछे की टूटी टाँगवाले हिरन का पीछा किया जाय तो अभी मिल सकता है। मैंने उन्हें मना करते हुए कहा, "वह स्वयं दर्द के मारे बैठ जायगा, परन्तु उसका पीछा किया और उसने देख लिया, तो सम्भव है कि चौंककर दूर भाग जाय और ऐसी जगह चला जाय, जहाँ हम पहुँच भी न

सकें।" जब उन्होंने मरा हिरन देखा तो उसी ओर दौड़ पड़े। फोटो आदि ली गई और उसे उठाकर पत्थर के ढेर के पास रक्खा। अबतक आठ बज गये थे। दिन डूबने में थोड़ा ही समय बाकी था। अतः कौंचोक ने कहा, "अभी हमें दो-तीन मील लौटकर डेरे पर पहुंचना है। वहाँ से हिरन उठाने के लिए फिर आना पड़ेगा। इसलिए घायल हिरन को कल ढूँढ़ा जाय। अभी तो जल्दी से डेरे पर लौटना होगा।"

मैं भी थका-माँदा था। एक हिरन मार ही चुका था। इसलिए मैंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। मेरे नौकर भी कुछ न बोले। हम लौट पड़े। मैंने अपनी ३७५ मैगनम हबीबा को दे दी थी। मोख्तालोन के पास ३२-४० थी। मेरे लक्ष-भेद की प्रशंसा होती जा रही थी और हम दुड़की से पड़ाव की ओर जा रहे थे। कौंचोक, मोख्तालोन, हबीबा और मैं इस क्रम से जा रहे थे। जब डेरा एक फर्लांग रहा होगा तो कौंचोक ने अपने साथियों को पुकारा। डेरा नदी के ऊँचे किनारे के सहारे होने के कारण दक्षिण की ओर से ठीक पास न पहुँचे तबतक दीखता न था। जब लौटकर दूसरे भोटों ने आवाज दी तो उसने घोड़े को एकदम दबा दिया। मेरे नौकरों ने भी ऐसा ही किया। मेरा घोड़ा कब भागनेवाला था। वह भी सरपट हो गया। मैं घोड़े का कच्चा सवार हूँ और बहुत डरता हूँ। मैंने लगाम खींचकर बहुत रोकना चाहा, परन्तु वह कब रुकने-वाला था? इतने में पाँच गज़ पर एकदम उतार नज़र आया। यहीं से तीनों घोड़े उतरे थे। इस जगह से होकर घोड़ा तो क्या, आदमी को भी शायद लाठी के सहारे उतरना पड़ता। तीनों घोड़ों के फिसलने से धूल उड़ रही थी। उसीमें मेरा घोड़ा भी फिसला। मारे डर के मेरी तो आँखें बन्द हो गईं। होश आया तो देखता क्या हूँ कि घोड़ा तम्बू के सामने खड़ा है। मोख्तालोन ने पास आकर कहा, "हुजूर, क्या सोच रहे हैं? उतरिये, चाय वगैरह पीजिये।" यह सुनकर मैंने कहा, "देखता नहीं, पाँव काँप रहे हैं। मैंने कई बार कह दिया था कि जो घोड़ा सबसे मट्ठा हो, वह मेरे लिए रक्खा करो। मैं अच्छा सवार नहीं हूँ। फिर भी तुम लोगों ने इधर सामने से घोड़े उतार दिये, जहाँ आदमी भी कठिनाई से उतर पाता और वह भी दौड़कर।"

मोख्तालोन बोला, "वाकई जगह खराब थी और मुझे भी डर लगा था, क्योंकि घोड़े उतरे नही बल्कि फिसले थे। हम लोग भी गरदन पर आ गये थे, पर गिरे नहीं। हमें मालूम नही था कि जगह इतनी खराब थी, नहीं तो घोड़े रोक लेते। यह सब कौंचोक की बदमाशी है।"

मैंने कहा, "तुम्हें तो इतना भी होश रहा कि तुम घोड़ों की गरदन पर आ गये थे। मुझे तो यह भी मालूम न हो सका कि घोड़ा उतरा या फिसला और मै कैसे बैठा रहा!"

कौंचोक सुन ही रहा था। बोला, "साहब इतना नहीं डरते होंगे। शिकारी लोग तो खूब घोड़े भगाते हैं। घोड़े के चार पाँव होते हैं। इसलिए यह हमसे अच्छा चढ़ता और उतरता है। हम लोग खतरे की जगह दो पाँव होने की वजह से फिसल या गिर सकते हैं। यहाँपर तो सिर्फ मिट्टी थी। अगर गिर भी जाते तो चोट नहीं आती।" इन लोगों से बहस करना व्यर्थ था। अतः भविष्य में ऐसी जगह सावधानी से घोड़े उतारने की कहकर भगा दिया। बहुत देरतक इस घटना का असर रहा। यह भी सोचता था कि यहाँ के घोड़े यदि मध्यभारत में पहुँचें तो शिकार में बड़ा काम दें।

भोजन करके अँधेरा होनेतक उस हिरन को भोटे लोग उठाकर ले आये थे। मैंने कह दिया था कि इसका चमड़ा कल सबेरे निकाला जायगा। मुझे उसको भली प्रकार देखना था।

रात को नींद कम आई। केवल जब-कभी झपकी लगती रही।

: १५ :

नेग्री के मैदान में

गुरुवार, २७ जुलाई

आज सबेरे हमें हिरन की शिकार के लिए नेग्री की ओर जाना था। कारण, मैंने पुस्तकों में पढ़ा था कि नेग्री के मैदान में हिरन अच्छे और बहुत मिलते हैं। कौंचोक कह रहा था कि वहाँ कम हो गये हैं। इस वर्ष पहले तो हिरनों में बीमारी के आने से बहुत-से मर गये और दूसरे

यहाँपर बहुत-से भेड़िये आ गये हैं। अभी एक महीने पूर्व यहाँ वह हो आया था।

फलवाले हिरन का चमड़ा निकाला गया। बड़े-बड़े सब बाल उड़ चुके थे। कहीं-कहींपर जाड़ों के कुछ गुच्छे रह गये थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि शीत-प्रदेश के जंगली जानवरों के जाड़ों में नये तथा लम्बे बाल ठण्ड से बचने के लिए आते हैं और जून तथा जुलाई में गिर जाते हैं। इस हिरन की भी पीठ पर पिछली टाँगों के बराबर चार-पाँच छेद थे, जिनमें पेन्सिल से कुछ कम मोटे तथा जौ के बराबर लम्बे कीड़े थे। यह कैसे पैदा होते हैं तथा केवल तिब्बती हिरन में ही क्यों होते हैं, यह तो कीट-विज्ञान के विशेषज्ञ ही बता सकेंगे। उन्हें भी इन बातों की खोज के लिए इस बीहड़ प्रदेश में आकर रहने का कई महीनों कष्ट उठाना पड़ेगा तथा कई हिरन मारने होंगे, तब कहीं वे कह सकेंगे कि इसके अण्डे कैसे होते हैं और बढ़कर क्या होता है। सम्भवत: इल्ली की भाँति मक्खी या तितली बनकर उड़ जाता होगा, पर यह मेरा अनुमानमात्र है।

यह तिब्बती हिरन ऊँचाई में काले हिरन के बराबर होता है, परन्तु मोटा अधिक होता है। इसीसे इसमें काले हिरन की अपेक्षा मांस भी अधिक होता है।

टट्टू आने में देर देखकर कारण पूछा तो मालूम हुआ कि टट्टू रात को चरते हुए दूर निकल गये हैं। चाय के साथ दो बिस्कुट खाये। मीठे थे। कुछ ठीक लगे, परन्तु अण्डे और रोटी में कोई स्वाद नहीं आया। जबसे मार्समिक पार किया, भूख ही नहीं लगती थी और न खाना ही अच्छा लगता था। रात को नींद भी नहीं आती थी। इससे स्वभाव भी काफी चिड़चिड़ा हो गया था।

लगभग दस बजे टट्टू ढूँढ़कर लाये गये। तबतक हम नेग्री की ओर चले। हम यह जानते थे कि अब हिरन चरते हुए नहीं मिलेंगे, परन्तु बैठे मिलेंगे, जिन्हें देखना बहुत कठिन होगा। कारण, वे गड्ढों में बैठते हैं, जहाँ से केवल उनकी खोपड़ी ही दीखती है। दूसरे प्रकृति का यह नियम है कि जहाँपर जो जानवर रहता है, वहाँ की मिट्टी-पत्थर से मिलता-जुलता उसका रंग होता है। यही हाल इन हिरनों का

भी है। इस जन तथा वनस्पति-शून्य प्रदेश में मील तो दूर, आधे मील पर भी बैठे हुए हिरन की खोपड़ी दूरबीन द्वारा देख लेना कठिन है ।

हम लोग कलवाले घायल हिरन के खून तथा पद-चिह्न देखते हुए नेग्री तक चले गये, परन्तु वह नहीं मिला। खून आधे मील के बाद दीखना बन्द हो गया। केवल वह जहाँ-जहाँ बैठा था वहाँ-वहाँ दिखाई दिया। नेग्री भी एक मैदान का नाम है, जो तीन ओर से—उत्तर, दक्षिण और पश्चिम—हिमाच्छादित पहाड़ों से घिरा है। यहाँपर भी हमें कुछ नहीं मिला, तब मौंतालोन तथा कौंचोक तो उक्त जख्मी हिरन को नदी के किनारे के भरकों में ढूंढ़ते रह गये और मैं हबीबा के साथ वापस चल पड़ा। एक जगह छोटी-सी पहाड़ी के नीचे हिरन बैठा दीख पड़ा। हमलोग एक घण्टे में बड़ी कठिनाई से उधर पहुँच पाये। ऊपर पहुँचकर मैंने टट्टू हबीबा को दिया और सावधानी से ढूंकता हुआ पहाड़ी पर, जिधर हिरन बैठा, पहुँच गया। इसपर कोई ऐसी आड़ (पत्थर या पेड़) नहीं थी, जहाँ से मैं हिरन को देख सकता। अतः पेट के बल घिसटकार मैंने ज्योंही सिर उठाकर देखना चाहा कि हिरन ने मुझे देख लिया। वह मुझसे लगभग सौ गज होगा। मुझे इसी समय बन्दूक चला देनी थी, परन्तु दम फूला हुआ था। जब-तक सांस ठीक हुई, वह चल पड़ा और १५० गज की दूरी पर जाकर चरने लगा। इस समय मैंने जल्दी में फ़ैर किया। क्रोध में चार फ़ैर और किये, परन्तु न लगे। यह देखकर हबीबा बड़ा नाराज हुआ। बोला, "हिरन कल से आज इतना पास था, फिर भी आपने बचा दिया!" उसे समझाना व्यर्थ था। दोनों टट्टू पर बैठकर डेरे की ओर चल दिये। जहाँ-कहीं हमें ऊँची जगह में देखने सरीखा कोई टीला मिलता था, उतरकर दूरबीन से देख लेते थे। एक जगह बिल्कुल मैदान में दो हिरन फिर नज़र आये। पाँच सौ गज से पास पहुँचने का कोई ढंग न देखकर मैंने हबीबा से कह दिया कि कोशिश करना फिज़ूल है, परन्तु हबीबा बोला, "हुज़ूर, मैं शिकारी तो नहीं हूँ, लेकिन कई बार शिकार में आया हूँ और मैंने कई पुराने शिकारियों से सुना और देखा है। अगर आप हँसे नहीं और मेरी बात मानकर जैसा मैं कहूँ करें तो शर्तिया आपको सौ गज़ पर पहुँचा दूँगा।" मैंने पूछा, "पहले तो बता कि मुझे करना क्या होगा? अगर

मुझे ठीक मालूम होगा तो करूँगा।" हबीबा ने कहा, "मैं आगे सिर झुकाये चलता हूँ। आप मेरे पुट्ठे पर सिर टिकाकर ठीक उसी तरह चलिये। ऐसा करने से हिरन हमें दो आदमी न समझकर एक चार पाँववाला जानवर समझेंगे और भागेंगे नहीं।"

हम बातें कर ही रहे थे कि इतने में वे हिरन खड़े हो गये। देखकर हबीबा बोला, "जल्दी कीजिए, नहीं तो वे भाग जायंगे।" मैंने भी उसकी बात मान ली। एक तो वैसे ही दम फूलता था, ऊपर से हबीबा की बू के मारे दिमाग़ फट रहा था, परन्तु दूसरा उपाय ही नहीं था। वह कह रहा था, "अगर ये बैठे होते तो सौ गज़ पर जरूर ले जाता, लेकिन फिर भी दो सौ गज पर तो पहुँचा ही दूँगा। पीछे से खड़े होकर हिरन देखने की कोशिश न कीजियेगा।"

इस प्रकार हम लगभग तीन सौ गज़ चले होंगे, परन्तु मुझे तो ऐसा मालूम दिया मानो तीन मील चला होऊँ। उसने रुककर कहा, "मेरी पीठ पर बन्दूक रखकर मारिये।" मैंने देखा कि दो सौ गज पर हिरन चौकन्ने खड़े हैं, परन्तु फेफड़ों में सांस नहीं समा रही था। मैंने कहा, "ऐसे दम चलते में बन्दूक कैसे चला सकता हूँ ?" वह बोला, "अच्छा हुजूर, दम ले लीजिये।" परन्तु उसी समय हिरन भाग निकले। जबतक हम डेरे पर नहीं पहुँचे, वह बराबर मुझे विश्वास दिलाता रहा कि उसकी तरकीब उत्तम है और कल मैं उसीको लेकर शिकार को जाऊँ। मुझे तो इसमें संदेह था और अब भी है। जब दूसरा कोई उपाय पास पहुँचने का न हो तो भले ही इसको किया जा सकता है।

लगभग सात बजे मोखतालोन ने बताया कि पिछली टाँग टूटीवाला हिरन मिल गया था। बहुत धीरे-धीरे भागता था और जगह-जगह बैठ जाता था। उसने तीन फ़ैर भी किये, परन्तु न लगे। जब मैंने उसे हबीबा की तरकीब बताई तो वह हँसने लगा और बोला, "क्या हुजूर भी इसे मानते हैं ? वह शिकार खेलना क्या जानता है ?"

भूख बिल्कुल नहीं थी। संध्या को थोड़ी चाय पीकर सोने का विचार किया। हमारा रसोई बनानेवाला आकर बोला, "इस प्रकार आप भूखे रहेंगे तो शिकार खेलने के लिए ताकत कहाँ रहेगी ? स्वाद न आए तो

गया, कुछ तो खा ही लीजिये।" मैंने उन लोगों की एक न मानी।

यहाँपर मच्छर बहुत हैं, परन्तु काटते नहीं हैं। तम्बू की छत मच्छरों के मारे काली हो गई। जब बादल होते हैं तो बाहर से हजारों मच्छर तम्बू में शरण लेने घुस आते हैं।

शुक्रवार, २८ जुलाई

रात को थोडी नींद आ गई थी। चाय पीकर विचार कर रहा था कि यहाँपर यदि बुर्सी न होती तो मनुष्यों का इधर आना कठिन हो जाता। उन्हें साथ में ईंधन भी लाना पड़ता। पौधा ऊपर तो बहुत मामूली-सा जंगली तुलसी के समान दीखता है, परन्तु इसकी जड़ दस-बारह इंच मोटी, डेढ़-दो फुट लम्बी निकलती है और बड़ी आसानीसे खोदी जा सकती है। ऐसे बीहड़ प्रदेश में कैसे कष्ट उठाकर काहे को कोई संस्कृत का विद्वान् आयगा, परन्तु कोई आ गया तो इस पौधे की महिमा मे 'बुर्सी-स्तोत्र' अवश्य लिख डालेगा। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

लगभग सात बजे मोक्तालोन ने आकर कहा कि हमसे थोड़ा नीचे पश्चिम की ओर नदी में एक हिरन चर रहा है। बन्दूक लेकर बाहर निकला तो भोटे ने बताया कि दो दिन से सवेरे और सन्ध्या समय बराबर उन्हीं जगहों पर हिरन नदी के किनारे हरी घास खाने आते हैं। पास ही किनारे पर चढ़कर मुझे हिरन बताया गया। अच्छे दाव में था। अतः मैं अकेला ढूंक गया। एक पनढ़ुटा (छोटा नाला) में ढूंककर देखा तो हिरन १५० गज पर निःशंक चर रहा था। सींग बहुत अच्छे थे। खूब आराम करने के पश्चात् जब दम ठीक हो गया तो जमकर बन्दूक चलाई, पर न लगी। मिट्टी गीली थी और घास थी, इससे पता ही न चला कि गोली नीचे उतरी कि चढ़ गई। मुझे तो विश्वास था कि जरूर लगेगी और हिरन मार लूंगा। गोली चलते ही हिरन किनारा चढ़कर ओझल हो गया। लगभग नौ बजे मैं हताश होकर वापस आगया। भोजन के उपरान्त मोक्तालोन ने परसोंवाले घायल हिरन को ढूँढ़ने का प्रस्ताव रक्खा। आज बादल बहुत थे और कुछ बूँदें भी पड़ रही थीं। मैं भी निशाना चूकने के कारण अपने आपपर क्रुद्ध था। अतः मैंने इन्कार कर

दिया और उससे जाने के लिए कहा।

कुछ देर बाद बादल काफी गड़गड़ाया और वर्षा के साथ पहाड़ों पर बर्फ गिरा। लगभग दो बजे मोखलालोन परसोंवाला हिरन मारकर ले आया। पीछे की दाहिनी टांग जड़ से टूट गई थी और बहुत बड़ा घाव था। उन लोगों ने बताया कि दो दिन के कष्ट के मारे आज इससे भागते नहीं बनता था। आज उसने पच्चीस गज पर पहुँचकर ३२-४० से मारा था। दो हिरन पाकर बन्दे को सन्तोष हो गया। हबीबा ने बताया कि जिसकी अगली टाँग टूटी है, वह भी देखा है। कुछ बादल साफ थे। अतः तीन बजे मैं भी उन लोगों के साथ नेग्री के पूर्व की ओर गया। इस समय तीन बजे थे, परन्तु ठण्ड बहुत थी। तापमान ६३ डिगरी थी। हम लगभग दो घण्टे तक काफ़ी भटके, परन्तु न घायल हिरन मिला और न दूसरे ही। बादल फिर से घिर आये और गड़गड़ाने लगे। हम भी डरकर वापस डेरे में आ गये। आते ही खूब पानी बरसा और पहाड़ों पर बर्फ भी बहुत गिरा। हम अपने साथियों की सोच रहे थे, जो टोकफूकोफूं में थे। आज नेग्री के पास हमारे भोटो ने बन्दूक के फ़ैर सुने थे और वह कह रहा था कि पहाड़ के पार दाऊसाहब ने चलाये हैं। सन्ध्या समय मैंने उन लोगों से कहा, "दो हिरन मार चुका हूँ, जो काफ़ी हैं। यहाँ भेड़ियों की वजह से सारे मैदान में बीस हिरन से ज़्यादा न होंगे। नींद नहीं आती और न भूख ही लगती है। इधर बारिश भी जोर पकड़ रही है। इससे अच्छा होगा कि लौटा जाय।" वे बहुत चाहते थे कि तीसरा हिरन भी मार लिया जाय; परन्तु वर्षा को देखकर वे भी घबरा उठे और सहमत हो गये। दिन में मच्छर भी बहुत सताते थे। एक प्रस्ताव यह भी रक्खा गया कि यहाँ का डेरा उठाकर गरम पानी के सोते के पास ठहरा जाय। वहाँपर सूखा होने से मच्छर कम होंगे और उधर की जगह भी अभी नहीं देखी थी; सम्भव है कि वहाँ हिरन हों। जो हो, यह तै हुआ कि यहाँ से कल चल दिया जाय।

: १६ :

दो हृदयस्पर्शी घटनाएं

शनिवार, २६ जुलाई

'हम लोग आठ बजे चलने के लिए तैयार हो गये। मेरे दोनों हिरनों के सींग २२ इंच के और २० इंच के थे, अर्थात् मझोले थे। उत्तम वही माने जाते हैं जो २४ इंच से ऊपर हों। हम लोग आगे थे और सामान पीछे था। मैंने मोल्लालोन से पूछा, "तुम लोग गढ़ा की शिकार नहीं जानते ? तुम्हें अगोट लेना तो आता है, लेकिन जहाँ जानवर रोजाना एक ही बंधे हुए वक्त पर आता है, वहाँ कुछ देर पहले गढ़ा बनाकर बैठना और जानवर को आने पर मारना नहीं जानते। इस तरह बहुत पास से गोली चलती है और भगने की आशंका नहीं रहती। अगर हम लोग, जहाँपर हिरन ठीक वक्त पर नदी में सवेरे और शाम को आते थे, हवा बचाकर गढ़ा बनाकर बैठते तो बीस गज से बन्दूक चलती। इसमें तुम्हारा कसूर नहीं है। तुम तो हिरन को ढूंककर ही मारना देखते आये हो और वैसा ही करते हो। मैं अपनी किताब में यह बात बताऊँगा कि जो कोई चाँगचेनमो जाय और उसका खयाल कम-से-कम एक हफ्ते ठहरने का हो तो वह दो दिन देखकर जहाँ हिरन आते हों वहाँ गढ़ा बनाकर जरूर शिकार खेले। ऐसा करने से मेहनत बचेगी और शिकार अच्छी होगी।" मेरी बात को सब मान गये।'

जब हम गरम पानी से लगभग एक मील होंगे तो मैदान में हमें सात-आठ हिरन दक्षिण की ओर नजर आये, परन्तु हमें देखते ही बर्फहीन पहाड़ पर चढ़ गये। मोल्लालोन ने बहुत चाहा कि इनका पीछा किया जाय, परन्तु पहाड़ की ऊँचाई को देखकर मेरा साहस नहीं हुआ। आज भी बादल काफी थे और हवा चल रही थी। कई दिन की दाढ़ी बढ़ी हुई थी। मैं यह समझकर कि कोई जानवर मुँह पर आ बैठा है, बार-बार उड़ाने का प्रयत्न करता था और अपनी भूल पर हँसता जाता था।

गरम पानी के पास पहुँचकर शिकारियों ने कहा कि एक दिन यहाँ ठहरकर हिरन देखे जायँ। इसपर भोटे ठहरने को राजी हो गये। परन्तु बादल देखकर बोले, "मैदान में ठंड की वजह से हम नहीं ठहर सकेंगे। अगर ठहरना ही है तो नदी के किनारों की आड़ लेकर ठहरिये।" चार दिन भूख न लगने और नींद न आने से मेरा जी ऊब गया था। यदि वे मैदान में ठहरते तो सम्भव है कि मैं भी मान जाता, परन्तु नदी के किनारे मच्छरों के डर से मैंने जाने से नाहीं कर दी। यह देखकर कौंचोक बोला, "चाँगचेनमो का बर्फ़ का तूफान बहुत बुरा होता है। अगर आ गया तो सबके हाथ और मुँह के चमड़े फट जायँगे। बादल गहरे होते जा रहे हैं। इसलिए नीचे जाना ठीक होगा।" अन्त में यही ठहरा कि वापस जाना ही उचित है।

आज एक महीने के बाद पीठ का सूर्य मिला था। अतः चलने में बड़ा आराम मिल रहा था। दूसरी खुशी इस बात की भी थी कि बीहड़ प्रदेश को छोड़कर बस्ती की ओर जा रहे थे। लगभग तीन बजे पमजल पहुँचे और तम्बू लगाये। पमजल का कैसा बढ़िया दृश्य है! छोटे-छोटे पेड़ों की झाड़ी से हरा-भरा है, जिसमें सैकड़ों खरगोश फुदक रहे हैं। काफ़ी गरम भी है। आज बाहर बैठकर खूब बातें होती रहीं और इस स्थान के प्राकृतिक दृश्य की सराहना करते रहे। यहाँपर हमने अमन के सींग पड़े देखे। इससे अनुमान हुआ कि ऊँची जगहों में अमन होंगे। शिकारियों ने यहाँ अमन मारे हैं। भालू भी काफ़ी हैं।

रविवार, ३० जुलाई

आज सवेरे छः बजे पमजल से चल पड़े। वही क्रम था अर्थात् हम आगे थे और सामान पीछे। गोख्तालोन को खेद था कि मैंने लाइसेंस के तीनों हिरन नहीं मारे। बातें करते हुए उसने कहा, "सबसे ज्यादा मजा इसमें है कि ऐसी जगह पर हम दुनिया के फरेब, पुलिस वगैरा से दूर हैं। यहां-पर तो ऊपर खुदा है या आप बादशाह हो। किसकी मजाल है जो आपके हुक्म को न माने! मैं अपने-आप को वजीर मानता हूँ। यही वजह है कि मैंने यह पेशा पसन्द किया है। इससे साल में एक बार तो मुझे वजीर होने का मजा आ जाता है।" मैं भी उसके तर्क को बहुत

पसन्द कर रहा था। वास्तव में ऐसी जनशून्य जगह पर किसी प्रकार की न चिन्ता होती है और न कोई बाधा डाल सकता है। इस आनन्द का यहाँ आकर ही अनुभव किया जा सकता है, अनुमान नहीं किया जा सकता।

विचार यह था कि भर्तभिक पारकर फोबरंग से आठ मील इस ओर ठहरा जाय। भोजन के समय पर लगभग सोलह मील आ चुके थे। जब हमने यह प्रस्ताव भोटों को बताया तो वे राजी न हुए। उन्हें यह भय था कि इस प्रकार तीन दिन की यात्रा दो दिन में हो जायगी और दाम कम मिलेंगे। यह तो मैं पाठकों को बता ही चुका हूँ कि यहाँपर मील के हिसाब से दाम नहीं दिये जाते, दिन के हिसाब से दिये जाते हैं। जब हमने उन्हें विश्वास दिलाया कि दाम तीन दिन के पूरे मिलेंगे तब वे राजी हो गये। परन्तु उनमें से दो बूढ़ों को विश्वास नहीं हुआ। वे अपने टट्टू लेकर पीछे रहने लगे और लड़खड़ा कर यह बताने लगे कि वे थक गये हैं। जब अगला पड़ाव आया तो हम रुके कि सामान कब आता है। और सब तो आ गये, परन्तु वे दो-एक घण्टे के बाद आये। भोटों ने उन्हें बहुत समझाया कि नखरे न करो, चले चलो, दाम पूरे मिलेंगे; परन्तु उन्हें विश्वास न हुआ। अब हमें भी सन्देह हो गया, अतः सामान आगे किया और हम पीछे-पीछे चले।

रास्ते में बाईं ओर तीस के लगभग भालू दीखे, परन्तु सब मादा और बच्चे थे। रीमडी पहुँचते-पहुँचते छह बज गये। दोनों बूढ़े बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। अतः उन्हें टट्टुओं पर लादा। ऊँचाई के कारण कुछ क्रोध भी आ रहा था। जब पहाड़ के पास पहुँचे तो वहाँ से कुत्ते के भौंकने की आहट मिली। देखा तो वही झबरैल कुत्ता एक पत्थर से बँधा था। उसकी दयनीय दशा देखकर मुझे दया आ गई। हम सब रुक गये और एक को उसे छोड़ने के लिए भेजा। पूछने पर मालूम हुआ कि यह कुत्ता उन्हीं दो में से एक बूढ़े का था। मैंने कुछ कड़ककर कहा, "क्यों रे, तू बड़ा निर्दयी है! बेचारे को यहाँ इस ठंड में बाँध गया और हमसे कह दिया कि एक बकरीवाले को, जो गाँव की ओर जा रहा था, दे आया हूँ।" वह कुछ न बोला, सुनता रहा। मुझे क्रोध तो इतना आ रहा था कि इसे पिटवा दूँ, परन्तु अपने-आप को शान्त किया।

कुत्ते को छोड़ते ही वह लड़खड़ाता हुआ हमारी ओर बढ़ा और नाले में पानी पीकर वैसी ही दशा में हमारे पास आकर दुम हिलाने लगा। बेचारे का पेट चिपका देखकर मैंने गफ्फारा से कहा कि इसे खाना दो। कुत्ते ने बैठकर बड़ी कठिनाई से एक रोटी खाई। फिर मेरी ओर बड़ी कातर दृष्टि से देखकर, मानो वह मुझे धन्यवाद दे रहा हो, लेट गया। यह देखकर दया के मारे मैं गद्गद् हो गया और आश्चर्य हुआ कि यह कुत्ता लेटा क्यों है। इसे तो रोटी खाकर दुम हिलाना था। कहने पर हबीबा ने उसे टटोला और बोला, "हुजूर, इसका तो दम निकल गया।" यह सुनकर मेरा क्रोध बस में न रहा। मैंने चिल्लाकर हबीबा से कहा, "पटक दे इस भोटा को नीचे और लगा जूते।" मेरी आज्ञा पाते ही हबीबा के अतिरिक्त तीन-चार भोटे उसपर टूट पड़े और उसकी लात-घूसों से खूब मरम्मत की। जब थोड़ी देर पिटाई हो चुकी तो मोख्तालोन ने उन्हें रोक दिया और मुझसे बोला, "हैं न हुजूर यहा बादशाह! अब वजीर की भी मान लीजिये। इसे अब और पिटवायेंगे तो यह मर जायगा। अगर इसे सजा देनी है तो इसे पैदल चलने को कहिये और हबीबा को हुक्म दीजिये कि जैसे ही यह चाल धीमी करे, पीछे से डण्डा जमावे। इस तरह जल्दी गर्गशिक पार हो जायंगे और इसे सजा भी मिल जायगी।" मैं आपे से बाहर तो था, परन्तु प्रस्ताव इतना उचित था कि मुझे मानना ही पड़ा। मैंने चिल्लाकर कहा, "अच्छी बात है, लेकिन यहाँ से चलने के पहले गड्ढा खोदकर इस कुत्ते को गाड़ो और उसपर पत्थर का ढेर करके एक झंडी लगाओ।" इस घटना से सबपर मेरा आतंक छा गया। अतः बात-की-बात में कुत्ते की समाधि बन गई। मैंने आवेश में गला फाड़कर 'लो सलो हर गलो' का नारा लगाया। मेरे साथ सभी चिल्लाये, जिससे उपत्यका गूंज उठी। उस समय मेरी आँखें डब-डबा आई थीं।

सामान के साथ मेरी आज्ञानुसार जब सब चल पड़े और मैंने अपना टट्टू लाने को कहा तो मोख्तालोन, जो मेरे मन की दशा को ताड़ गया था, बोला, "हुजूर, एक सिगरेट पी लीजिये, तबतक ये कम्बख्त आगे निकल जायेंगे, नहीं तो इनको धीरे-धीरे चलते देखकर आपको फिर

गुस्सा आयगा।" इस समय मैं बात-चीत नहीं कर सकता था। बैठकर सिगरेट पीने लगा और मेरे मन में कई विचार उठने लगे। मोख्तालोन बोला, "हुजूर बड़े रहमदिल हैं। दीवान को ऐसा ही होना चाहिए।" मैं इसे भी अनसुनी कर गया और चुप रहा। सिगरेट जल जाने पर भी मैं न उठा तो वह बोला, "हुजूर, चलिये। हमें मर्सिमिक पर दिन डूबने-वाला है।" यह सुनकर मैं चौंक पड़ा और हम दोनों चल दिये। भोटे डर के मारे बराबर तेजी से बढ़ते जा रहे थे। मर्सिमिक से एक मील इधर हमें कियांगों का बड़ा झुण्ड मिला, जो लगभग सौ गज़ का होगा। देख-कर मैंने मोख्तालोन से कहा कि इनकी तस्वीर लेनी है। उसने बताया कि सबसे बड़े को मार डालिये और तस्वीर ले लीजिये, परन्तु जल्दी कीजिये, नहीं तो अंधेरा हो जायगा। मैंने उतरकर सबसे बड़े घोड़े पर, जो पूरा था, एक फ़ैर किया। गोली के लगते ही वह लड़खड़ता हुआ चलने लगा। उसे दौड़ता न देख सब कियांगों ने उसे घेर लिया और धकेलने लगे। इतने पर भी वह न चला तो उसे लातें मारीं। जब वह गिर पड़ा तो काटने लगे। कुत्ते की मौत का असर अभी था ही। अब इन कियांगों का अपने साथी के प्रति यह व्यवहार देखकर मेरे हृदय में दया का समुद्र उमड़ पड़ा। जब हम उससे तीस गज़ पर पहुँचे तो सब कियांग उसे छोड़कर सौ गज़ पर खड़े हो गये और देखने लगे कि हम क्या करते हैं। मैं वैसे ही किंकर्तव्यविमूढ़ बना घोड़े पर बैठा था। मोख्तालोन ने कैमरा हाथ में देकर कहा, "जल्दी फोटो लीजिये। हमें अभी मर्सिमिक पार करना है।" यह सुनकर मशीन की भाँति फोटो लेकर मैं उसके पीछे हो गया।

आज बादल और ठण्ड थी। अतः हमारे सिर में उस दिन की भाँति दर्द नहीं हुआ। सूर्यास्त तो हो चुका था, परन्तु उजेले में हम मर्सिमिक पहुँच गये।

अँधेरा होते-होते लगभग नौ बजे के उतरकर हम पड़ाव पर पहुँचे तो सब घोड़ों को लदा पाया। मैंने गुस्से में कहा, "अभीतक तुम लोग क्या कर रहे थे? तम्बू वगैरा क्यों नहीं खड़ा किया?" यह सुनकर कौंचोक हमारे पास आकर बोला, "यहाँ से फोबरंग सिर्फ आठ-दस मील

है। अगर आप हुक्म दें तो हम चाहते हैं कि वहीं चलकर डेरा लगावें। हम घर पहुँचकर ठंड से बचेंगे और आपको भी कल चलने की तकलीफ न होगी।" एक तो मैं खिन्न था। दूसरे, आज सिर में दर्द न था। अतः मैं भी सहमत हो गया। हमलोग ग्यारह बजे तक फोबरंग पहुँच गये। एक गोली एस्प्रीन की खाकर तथा चाय पीकर सोना चाहता था कि इतने में फोबरंग के एक भोटे ने खबर दी कि दाऊसाहब भी कल पहुँच जायेंगे। आज वे मर्समिक के उस पार डेरा डाले हैं।

: १७ :
बिछुड़े साथी मिले

सोमवार, २१ जुलाई

आज रात को देर से सोने के कारण सात बजे के लगभग उठा। हबीबा ने चाय लाकर रक्खी। आज बादल बहुत घने हैं। इससे ठण्ड भी है। मैंने हबीबा से कहा कि आज दाढ़ी बनाऊँगा और स्नान भी करूँगा। यह सुनकर उसने आश्चर्यपूर्वक कहा, "हुजूर को दाढ़ी बहुत अच्छी मालूम देती है। अभी फेरसी (नम्बर ८ ब्लाक) भी जाना है, जहाँ काफी ठण्ड होगी। इसलिए मुँह के बचाव के लिए दाढ़ी बहुत जरूरी है। आज ठण्ड बहुत है। इसलिए स्नान न कीजिये।" मैं दाढ़ी के मारे खुजा-खुजाकर तंग आ गया था। अतः मैंने एक न सुनी और गरम पानी लाने को कहा। मैंने हबीबा से कह दिया था कि हो सके तो आज पुनः स्नोत्रोट मछली पकड़ी जाय, चाहे आज ठण्ड के कारण लड़कों को इस कार्य के लिए कुछ अधिक दाम क्यों न देने पड़ें।

दाढ़ी बनाने के लिए गरम पानी लेकर जब हबीबा आया तो उसके साथ मोख्तालोन तथा मेरा रसोइया गगफारा भी आया। मैं समझ गया कि वे मुझे यह समझाने के लिए आये हैं कि मैं दाढ़ी न बनाऊँ। जब उनके मन की बात मैंने बताई तो मोख्तालोन बोला, "हुजूर, ठण्डी हवा से मुँह को बचाने के लिए अल्लाह ने बाल दिये हैं। अभी हुजूर को नम्बर ८ ब्लाक जाना है, जहाँ काफी ठण्डा है। हुजूर को आज नहाना भी नहीं

चाहिए। अगर बगल में खुजली चलती है तो कपड़े बदल लीजिये। हम आपके कपड़े गरम पानी में डालकर जितनी जूँ होंगी निकाल देंगे।"

मैंने इन लोगों की एक न मानी। दाढ़ी बनाने में कष्ट तो अवश्य हुआ। कारण एक तो सोलह दिन की दाढ़ी थी। दूसरे ठण्ड के कारण जबतक साबुन के ब्रुश को रखकर उस्तरा उठाता, दाढ़ी सूख जाती थी। फिर भी मैंने बनाकर ही छोड़ी। बारह बजे के लगभग स्नान भी किया, परन्तु इसमें ठण्ड विशेष न लगी। स्नान के उपरांत शरीर बड़ा हलका मालूम देता था।

लगभग एक बजे के दाऊसाहब का काफिला पहुँचा। मुझे देखते ही वे बोल उठे, "वाह साहब, आपने हमारे आने के पहले ही दाढ़ी मूंड़ डाली।" बातचीत से पता चला कि इस ओर बर्फ अधिक पड़ा था। दाऊसाहब अपने साथ पाँच हिरन के सिर लाये थे। दो २४ इंच के, दो २३ इंच के और एक २१ इंच का। अर्थात् लाइसेंस से उन्होंने दो अधिक और मैंने एक कम मारा था। दोनों मिलकर छह सींग ले जा सकते थे। अतः यह सलाह हुई कि २१ इंचवाले सींग को यहीं छोड़ा जाय। जब हम लोग चाँगचेनमो में थे तो यही समझ रहे थे कि दूसरे की अपेक्षा अपनी ओर बर्फ अधिक है। दाऊसाहब के कथन से मालूम हुआ कि टोकफूकोफूं और फलालग की ओर हिरन बहुत थे। जब मैंने पूछा कि आपने कितने फ़ैर किये तो उन्होंने नहीं बताया। मेरे पास एक बन्दूक और सौ कारतूस थे। परन्तु इनके पास दो बन्दूकें और तीन सौ कारतूस थे। मुझे हर्ष इस बात का था कि उनको शिकार अच्छी मिली।

भोजन के उपरान्त चलने के विषय में सलाह हुई। यह ठहरा कि दाऊसाहब के ब्लाक में चुशल ग्राम तक इकट्ठा चला जाय। वहाँ से मैं डुंगटीरप के घाट से सिन्धु पार अपने ब्लाक नम्बर आठ में जाऊँ। जब हम दोनों अगन की शिकार खेल लें तो मार्सलंग (हिमिस) में मिलें। इस कमेटी में मोख्तालोन बार-बार यह बात कहकर अफसोस प्रकट करता था कि मैं केवल दो ही हिरन मार पाया। मैं उसे यह कहकर सान्त्वना देता था कि इसमें उसका दोष न था। एक तो मैं घोड़े का कच्चा सवार, दूसरे उधर हिरन ही कम थे।

यदि बादल साफ रहे तो कल सवेरे प्रस्थान करने की ठहरी।

मंगलवार, १ अगस्त

आज सवेरे भी काफी बादल थे। रात को खूब बर्फ गिरा था, जिससे सब पहाड़ों की चोटियाँ सफेद चादर ओढ़े थीं। लगभग आठ बजे हम यहाँ से चल पड़े। आठ मील चलने के पश्चात् पंगुंग झील मिली। इसी के किनारे-किनारे हमें दस मील जाना था। बादल घने होते जा रहे थे और वायु का वेग भी बढ़ता जाता था, जिससे ठण्ड बढ़ती जा रही थी। आज हमें बरसाती पहननी पड़ी। पंगुग का दृश्य अवर्णनीय था। जितने भी नीले रग के (गहरे से हलके रंग के) चित्र खींचे जा सकते थे, इस झील की तरंगमयी सतह पर दिखाई दे रहे थे। जहाँ घने बादल की परछांई थी, वहाँ गहरा और जहाँ थोड़ा प्रकाश था, वहाँ फीरोजी रंग था। इसपर भी तरंगें थीं, जिनके ऊपरी हिस्से पर हलका तथा जड़ों में गहरा रंग था। प्रकृति की छटा देखते ही बनती थी। हवा और बादलों के जोर के कारण हमारे भोटे भी सिकुड़े जा रहे थे। हमें डर था कि कहीं ओले न पड़ने लगें। झील के किनारे पाँच मील चलने पर बादल गड़गड़ाने लगे। यहाँपर एक छोटा-सा गाँव है, जिसे 'पदम' कहते हैं। हम लोग दक्षिण दिशा में जा रहे थे। झील हमारे बायें हाथ को थी। पदम के पास पहुँचने के पूर्व भोटों ने गाना प्रारम्भ किया। संकेत पाकर गाँव की स्त्रियाँ गरम चाय और सत्तू लेकर आ गईं। हम लोगों से भोटा कहने लगे कि इन्हें छुट्टी देकर यहीं पड़ाव डाला जाय। वे हमें ओलों का भय बता रहे थे, परन्तु हम नहीं माने। हमने कौंचोक से कह दिया कि कुछ भी हो, हम मन जाकर ही ठहरेंगे। कौंचोक बड़ा चतुर था। उसने कहा कि इस गाँव में कुछ दिन पहले राहुल नाम का हिन्दुस्तानी आकर भोटों के घर ठहरा था। यहाँ ठहरने से हमें उसके बारे में जानकारी मिलेगी। मैंने कहा कि अगर वह यहाँतक आया है तो शिकार भी खेला होगा। इसपर वे बोले कि वह तो लामा है। पूछने पर मालूम हुआ कि राहुल मन भी गये थे। अतः हमने यह कहकर कि मन में पूछताछ होगी, आगे बढ़ने को कहा।

हम लोगों की निगाह बार-बार पंगुंग झील के नीले दृश्य पर जा रही थी। तीन मील चलने पर जब मन दो मील रहा होगा, बूँदों के साथ

छोटे-छोटे ओले भी आने आरम्भ हुए। जैसे-तैसे भीगते तथा ओलों से डरते हुए लगभग तीन बजे के मन पहुंचे। गाँव से बाहर झील की ओर पेड़ों के झुरमुट में हमने तम्बू लगाये और फोबरंग के भोटा लोगों से विदा ली।

दस दिन साथ रहने के कारण इन लोगों से हम लोग काफी परिचित हो गये थे। अन्य गाँवों की अपेक्षा यहांवाले हिन्दी खूब समझ लेते हैं। इनका अगुआ कौंचोक तो मेरा मित्र-सा हो गया था। चलती बार उसने पुनः मेरी शिकार कम होने के लिए दुःख प्रकट किया और बोला, "आप लोग पहले हिन्दुस्तानी हो। इसकी हमें खुशी है। मौका लगे तो फिर आइये। यह हम जानते हैं कि चाँगचेनमो का सफर साहब लोग भी दुबारा नहीं कर सकते, लेकिन आप दुबारा आकर हिन्दुस्तानियों की बात रखना। हम तो यह जानते थे कि हिन्दुस्तानी या तो खानसामा होते हैं या बाबू। आपने साबित कर दिया कि हिन्दुस्तानी शिकारी भी होते हैं।" हमने उसे यह कहकर कि हमसे आते नहीं बना तो कम-से-कम हमारे भेजे हुए लोग अवश्य आयंगे, उनसे विदा ली।

दृश्य इतना सुहावना था कि कैमरा निकालकर टेली-फोटो-लेन्स से चार-पांच फोटो लिये। झील का पानी खारा है और इसमें थोड़े से चकई-चकवों को छोड़कर दूरबीन से देखने पर भी हमें कोई दूसरी पानी की चिड़िया नहीं दिखाई दी। लगभग छः बजे के लद्दाख के एक शिकारी ने मुझे मेरी डाक दी तथा मि० वाल्टर एसबो ने तारीख ११ से १७ जुलाई तक के 'स्टेट्समैन' के अंक भी दिये। अब क्या चाहिए था! लगे अपने-अपने पत्रों को पढ़ने। इसके उपरान्त समाचार-पत्रों को पढ़ते-पढ़ते अँधेरा हो गया।

बुधवार, २ अगस्त

आज सवेरे उठकर देखा तो बर्फ़ गिर रहा था। ऐसा मालूम देता था, मानो धुनी रुई के फाए गिर रहे हों। छः बजे तापमान ४३ डिगरी था। चाय के समय सबकी सलाह हुई कि ऐसे में चलना ठीक न होगा। अतः आज यहींपर ठहरने का निश्चय हुआ। आज का पहला दिन है कि हमने बर्फ़ दिन को गिरते देखा। कल के अखबार पढ़ते रहे। बारह

बजे के लगभग तापमान ठण्ड के कारण ४१ डिगरी हो गया। हम लोग बिस्तर में पड़े थे।

गाँववालों से पूछने पर मालूम हुआ कि राहुलजी इस ग्राम में उन लोगों के साथ ठहरे थे। हमलोगों को इतने दिन हो गये थे फिर भी उनके साथ रहकर उनका भोजन तो दूर, उनकी चाय तक नहीं पी सकते थे। राहुलजी को उन लोगों के विषय में जानकारी लेने के लिए उनके साथ रहना अनिवार्य था। हमारा उद्देश्य तो शिकार खेलने का था। अतः हमें उनके साथ रहने तथा उनका खाना खाने की आवश्यकता न थी।

यह गाँव अन्य जगहों से नीचा होने के कारण हमारे मुँह का स्वाद भी ठीक हो गया था और खाना अच्छा लगने के कारण काफ़ी खाया भी था। दो बजे के लगभग बर्फ़ गिरना बन्द हुआ और संध्या होते-होते बादल भी फटने लगे तथा कहीं-कहीं धूप भी निकल आई। हमें आशा बँधी कि इस प्रकार बादल साफ होते गये तो कल यहाँ से चल सकेंगे। रात को डटकर भोजन किया और नींद भी खूब आई।

गुरुवार, ३ अगस्त

आज सवेरे छः बजे तापमान ४३ डिगरी था। रात में नींद अच्छी आने के कारण चित्त प्रसन्न था। उधर बादल फट गये थे और खूब धूप थी। लगभग साढ़े सात बजे हम मन से चुशल के लिए चल दिये। हम लोग पंगुंग झील के सहारे दक्षिण की ओर बढ़ रहे थे। कहने को मार्ग समतल था, परन्तु आज परसों का-सा दृश्य न था। आज झील का पानी शांत तथा हरे रंग का दिखाई दे रहा था। हां, किनारे पर असंख्य फूल छोटे-छोटे पौधों में खिले हुए बड़े शोभायमान दिखाई दे रहे थे, मानो एक बड़ा कालीन बिछा हो। लगभग सोलह-सत्रह मील चलने के पश्चात् हमने झील का किनारा छोड़ा और तीन-चार मील चलने के उपरान्त चार बजे हम चुशल के पड़ाव पर पहुंचे। गाँव यहाँ से पश्चिम की ओर आध मील दूर है। पड़ाव में छोटे-से पेड़ हैं, जहाँपर तीन-चार व्यापारी डेरा डाले थे। हमने इन्हें एक मील दूर से देख लिया था। वे लोग गाँववालों के साथ बातें कर रहे थे, परन्तु सबके हाथ बराबर हिलते

जा रहे थे। पास पहुँचने पर मालूम हुआ कि यहाँ मच्छर बहुत हैं, जो काट रहे हैं। इतने में हमें भी इसका अनुभव हो गया। बड़े-बड़े मच्छर थे। जहाँ काटते थे, वहाँ पर ददोरे हो जाते थे। हमने यहाँ ठहरने से इन्कार कर दिया और कुछ आगे बढ़कर एक मैदान में डेरा डाला। साथवाले बहुत कहते रहे कि पानी तथा ईंधन का कष्ट होगा, परन्तु हमने एक न मानी। चलते समय वे व्यापारी तथा कुछ गाँववाले हमारे साथ हो लिये।

व्यापारियों से पूछने पर मालूम हुआ कि वे कुलू (जिला कांगड़ा, पंजाब) के रहनेवाले हैं और राजपूत हैं। वे लोग नीचे से चाय, शकर तथा नमक लाते हैं और ऊन तथा पश्मीना ले जाते हैं। इस काम में उन्हें काफी भटकना पड़ता है और कई महीने लग जाते हैं। माल खरीदकर पुगा के नाके पर रखते जाते हैं। इस प्रदेश में कई गाँव ऐसे हैं, जहाँपर भोटे लोग अपना माल लेकर आते हैं, जिनमें इस ओर चुशल प्रमुख है। वैसे इस गाँव में सौ घर से अधिक न होंगे। रुदोकवाले तिब्बती व्यापारी जब हिन्दुस्तान की ओर आते हैं, इन्हें पहला ग्राम चुशल मिलता है। रुदोक पश्चिमी तिब्बत का केन्द्र है जो चुशल से दस मील पूर्व की ओर होगा। इसीसे चुशल का महत्व है।

गाँववालों से जब घोड़ों के लिए पूछा तो मालूम हुआ कि लद्दाख के वजीर (गवर्नर) दौरे पर हैं। अतः इस ओर के सब घोड़े उनके लिए गये हैं। बड़ी कठिनाई से आठ याक और और छः घोड़े का आश्वासन मिला।

हमारे नौकर जो मिलता था उसीसे भोटिये कुत्तों के पिल्ले खरीदने की बात करते थे, परन्तु सबने यही बताया कि अच्छे पिल्ले रुदोक में मिलेंगे। आज पड़ाव से कुछ दूर ठहरने के कारण पानी तथा बुर्सी लाने में थोड़ी देर लगी, परन्तु मच्छरों से बच गये। हमलोग यहाँवालों के आलस्य पर आश्चर्य कर रहे थे कि इतने मच्छर काटते हैं, फिर भी वे ऐसी जगह क्यों पड़ाव बनाए हैं, जबकि ईश्वर ने खूब लम्बी-चौड़ी उपत्यका दे रक्खी है, जिसपर खेत का नाम भी नहीं। केवल थोड़े-से खेत गाँव के पास हैं।

: १८ :

अमन की खोज में

शुक्रवार, ४ अगस्त

खुशल की उपत्यका काफ़ी चौड़ी है। सवेरे जब आठ याक और छः घोड़े आये तो हमको सामान लदने के समय दूर जाकर बैठना पड़ा। याक अर्द्ध-जंगली जानवर है। जहाँ भोटों के अतिरिक्त किसी अन्य की गन्ध आई कि सामान पटककर भागे। बड़ी कठिनाई से उनपर सामान लादा गया। यहाँतक हुआ कि एक को लादकर दूसरे को लादते समय पहला सामान पटककर भाग जाता था। यह हाल देखकर रमजानखां कह रहा था, "सामान का खुदा ही हाफिज है। हमारी बद-किस्मती है कि वजीर-साहब का दौरा हो गया, जिसमे घोड़े नहीं मिल रहे हैं। इनका लादना ही आफत नहीं है, परन्तु चलते समय भी भेड़ों की भाँति इकट्ठे एक-दूसरे से टकराते चलेंगे, जिससे सामान आपस में टकराकर टूटता जायगा।" याक ऐसा अजीब जानवर है कि चलेगा इकट्ठा, परन्तु जब बिचकेगा तो अपने-अपने मुँह भागेंगे। प्रतिदिन हमें सामान लादने में आधा घण्टा लगता होगा, परन्तु आज लगभग दो घण्टे लगे। भोटों को खूब समझाया गया कि याकों को एक-दूसरे के पीछे चलाया जाय ताकि सामान न टूटे। तब कहीं हम नौ बजे चले। एक बजा होगा तब हम झाका नाले पर एक पड़ाव में जाकर ठहरे, जो कर्दुम लुंगपा के मुहाने पर है। इधर की बोली में 'लुंगपा' छोटे सेहे को कहते हैं।

डेरे लग जाने के पश्चात् यहाँ के भोटों से वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। फोबरंग के भोटों की भाँति ये लोग अच्छी हिन्दुस्तानी तो नहीं बोल पाते, परन्तु काम चला लेते हैं। मालूम हुआ कि यहाँ चारों ओर पहाड़ों पर अमन मिलने की सम्भावना है। पूर्व की ओर पहाड़ कम ऊँचे हैं, परन्तु उधर तीन-चार मील की दूरी पर तिब्बत की सीमा आ गई है। पश्चिम की ओर पहाड़ ऊँचे और भयावने हैं। मैंने प्रस्ताव रक्खा कि कल सवेरे मैं तथा मोख्ताजोन पूर्व की ओर तथा दाऊसाहब

और रमजानखां पश्चिम की ओर अमन की खोज में जायें। यह मैं बता चुका हूँ कि हम सबमें रमजानखाँ अनुभवी था। परन्तु वृद्धावस्था के कारण वह परिश्रम से बचने के कारण हमें बना रहा था। वह बोला, "पूरब की तरफ के पहाड़ सहल होने की वजह से उधर भेड़-बकरी बहुत जाती हैं। इसलिए वहाँ अमन का मिलना मुश्किल है। अगर आप पच्छिम की तरफ जायें तो जरूर अमन मिल जायेंगे, जिससे इन्हें मेरे अमन के ब्लाक फेरसी में जाने की तकलीफ न उठाना पड़ेगी।" जब मैं अपनी जिद पर दृढ़ रहा तो दाऊसाहब बोले, "साहब का कहना ठीक है। जब उनसे काफ़ी मेहनत नहीं होती तो वे क्यों बीहड़ जगह से जायं। दूसरे, यह ब्लाक उनका नहीं है। उन्हें तो मैंने रोक लिया है। इसलिए दो दिन देखकर नम्बर आठ में जरूर जायेंगे। इन पहाड़ों की छानबीन करने का काम मेरा है। कल देखता हूँ, तुम कितने चलते हो।" रमजानखाँ ने पनाह मांगी और मुझे बताया कि चांगचेनमो में दाऊ साहब ने भटका-भटकाकर किस प्रकार उसे त्रस्त कर दिया था।

हम लोगों के पास आठ दिन के अखबार थे ही। उन्हें कई बार पढ़ा और युद्ध की आशंका के विषय में हम दोनों चर्चा करते रहे। लगभग पाँच बजे लेह से आए हुए शिकारियों के जमादार मिले। वे चुशल की ओर जा रहे थे। सबके मुँह से वज़ीरसाहब के दौरे का हाल सुन-सुनकर भोटों की भाँति हमारे दिल में भी उनके प्रति रौब बैठने लगा था। वैसे ओरछा राज्य के सेवा-काल में एक बार वायसराय भी आये थे, परन्तु उस समय के रौब से यह रौब अधिक था। इसका कारण यह निर्जन भूमि तथा एकान्त का वातावरण हो सकता है। कई बार आदमी डुगटीरप की ओर जाते और उधर से आते हमारे पड़ाव के पास से निकले। सब-के-सब वजीरसाहब के सन्देश-वाहक थे या उनके कार्य से आ-जा रहे थे। इनका तहलका लगभग दस हजार वर्गमील की भूमि में था।

सन्ध्या होते ही घास की झाड़ियों से रिबांग (खरगोश) फुदकते नजर आये। उतने तो न थे जितने कि यमजल के पड़ाव पर थे, परन्तु फिर भी काफ़ी थे। दाऊसाहब का इन्हें देखने का पहला अवसर था।

यहाँपर भी वे आदमी से कम चिनकते थे।

आज दिनभर थोड़े बादल रहे और रह-रहकर थोड़ा-थोड़ा पानी भी बरसता रहा। आज का पड़ाव अन्य पड़ावों की अपेक्षा ऊँचा है।

शनिवार, ५ अगस्त

ऊंचाई के कारण रात को नींद कम आई थी। कल की सलाह के अनुसार दो टट्टू तथा एक भोटे के साथ मैं और मोल्कालोन पूर्व की ओर लगभग सात बजे चल दिये। दाऊसाहब और रमजानखां भी दो टट्टू और एक भोटे के साथ पश्चिम की ओर गये। आज सवेरे से ही बादल थे। इससे काफी ठण्ड थी। जिस ओर मैं गया था वहां पहाड़ अठारह हजार फुट से ऊँचे न होंगे तथा ठण्डे भी न थे। अतः हम दिन-भर टट्टू पर ही चढ़े रहे। जहा ऊँची जगह पहुंच जाते थे, वहां से दूर-बीन लगाकर अमन देखने के लिए टट्टू से उतरते थे। पहाड़ ऊँचे न होने के कारण वहा की बर्फ बहुत पहले गल चुकी थी और जो कुछ भी घास थी, जानवर तथा भेड़-बकरी चर चुके थे। दूसर, इन पहाड़ों की ऊँचाई कम होने के कारण ग्लेशियर न होने से पानी का अभाव था। हमको कहीपर भी अमन या अन्य जंगली जानवर नहीं मिले। जब घास या पानी ही न हो तो जानवर रहकर क्या करेंगे? कई बार बर्फ़ पड़ने के कारण हमें कहीं-कहींपर पत्थरों के नीचे शरण लेनी पड़ी। बर्फ के गलने पर जब अमन घास चरने आये होंगे, उस समय के गीली भूमि में गड़े हुए खांद कई जगह अवश्य मिले थे। इससे हमको विश्वास हो गया था कि यहाँ अमन हैं अवश्य, परन्तु घास तथा पानी की खोज में दक्षिण की ओर ऊँची जगहों में चले गये हैं। ज्यों-ज्यों हम दक्षिण की ओर पहाड़ की चोटी पर बढ़ते जा रहे थे, हमें खांद भी अधिक मिलते जा रहे थे। एक जगह से पंगुर झील का, जो तिब्बत की सीमा में है, बड़ा सुन्दर दृश्य दिखाई दिया। इसीके सहारे चुशल से रुदोक को मार्ग जाता है, जिसपर चींटी के समान रेंगते हुए यात्री तथा जानवर दिखाई दे रहे थे। भोटों से पूछने पर मालूम हुआ कि वह स्वयं लद्दाख और तिब्बत की सीमा को नहीं जानता। इतना ही बताया कि हम सीमा पर हैं। यहाँपर कोई ऐसा चिह्न या मुनारे नहीं

थे, जिनसे जाना जा सके। कई जगह हमने टट्टू से उतरकर दूरबीन द्वारा काफी छानबीन की, परन्तु हमें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। हम बराबर दक्षिण की ओर बढ़ते जा रहे थे। एक जगह बैठकर हमने दोपहर का भोजन भी किया था। लगभग साढ़े तीन बजे हमलोग पहाड़ पर ऐसी जगह पहुँचे, जहांपर भूमि में नमी थी और कुछ घास भी थी। यह जगह लगभग एक एकड़ होगी। छोटी-सी पोखर मालूम देती थी जिसके पानी को सूखे लगभग एक सप्ताह हुआ होगा। पूरी पोखर में अमन के खांद थे और लेड़ी भी काफ़ी थी। कुछ को उठाकर तोड़ा तो मालूम हुआ कि वे कल की थीं। कारण अन्दर से गीली थीं। हमलोग कैम्प से काफ़ी दूर निकल आये थे। अतः मोख्तालोन ने मुझे कैम्प बताकर कहा कि यदि मैं लौट जाऊं तो वह दो-तीन मील और आगे बढ़कर छानबीन कर आयगा। मैंने उसका प्रस्ताव मान लिया और भोटे को उसके साथ छोड़कर अकेला लौट पड़ा। लगभग छः बजे कैम्प पर लौटा तो दाऊसाहब उपस्थित थे। रमजानखां को न देखकर पूछा तो मालूम हुआ कि वह झुंगी में पड़ा है। मैंने जाकर उससे कुशल पूछी तो बोला, "छोटा साहब चलने में बड़ा पक्का है। ऐसी-ऐसी बीहड़ जगह टट्टू से उतरकर ले गया कि मेरा सिर चक्कर खा रहा है। जितनी ऐस्प्रिन पास में थी खा चुका हूँ। अगर हुजूर मुझे कुछ गोलियाँ दे दें तो बड़ी मेहरबानी होगी।"

ऐस्प्रिन की गोलियाँ देकर मैंने दाऊसाहब से अमन के बारे में पूछा तो उन्होंने भी यही बताया कि जितने खांद मिले सब पुराने थे। यह भी बताया कि बड़े विकट पहाड़ हैं। प्रायः टट्टू से उतरकर पैदल चलना पड़ा। मैंने कहा कि यह तो यहीं से मालूम पड़ रहा है। मैंने भी अपना हाल बताया और सलाह हुई कि कल फिर उसी ओर खोज की जाय।

सात बजे के पश्चात् मोख्तालोन ने लौटकर खबर दी कि आगे और भी खांद मिले हैं तथा छः अमन देख आया है। हमने यह तै किया कि-कल उसी स्थान से खोज की जाय, जहाँ से आज मैं लौटा हूँ।

सन्ध्या समय जब रमजानखाँ का सिर का दर्द कम हुआ और हम लोगों के पास आकर बैठा तो उसने बताया कि एक जगह थोड़े से भरल

मिले थे। दूरबीन से देखने पर उनमें एक के भी सींग बड़े नहीं दिखाई दिये। इसपर दाऊसाहब ने कहा कि तुमने मुझे क्यों नहीं बताये। रमजानखाँ ने उत्तर दिया, "बताता तो हुजूर मुझे उनके पास तक ले जाते। बहुत ऊँचाई पर थे। आपको समझाता तो भी आप नहीं मानते। मेरे सिर में दर्द बहुत था, इसलिए नहीं कहा।" इसपर दाऊसाहब नाराज हो गये और उससे स्पष्ट कह दिया कि तुम शिकार बताने और खिलाने पर नौकर हो। तुम्हारा कर्त्तव्य है कि जो कुछ दिखाई दे, बता दो। यह हमारा काम है कि उनके पीछे पड़कर मारें या छोड़ दें।

पाठकों को यह बता देना आवश्यक है कि जैसी जमीन में जानवर रहता है, प्रकृति उसे वैसा ही रंग देती है, ताकि वह हिंसकों की दृष्टि में यकायक न आ जाय। इसी प्रकार उस प्रदेश के रहनेवाले तथा वहाँ जानेवाले शिकारियों की आँखें भी उक्त प्रदेश के जानवरों को दूसरों की अपेक्षा कहीं शीघ्र देख लेती हैं। एक तो उन्हें उन जगहों का काफ़ी ज्ञान होता है, जिससे वे उसी स्थान को ध्यान से देखते हैं, जहाँ जानवर होने की अधिक सम्भावना है। दूसरे, उन्हें जानवरों और उस भूमि में पत्थर तथा अन्य वस्तुओं के रंग का थोड़ा-सा अन्तर भी इतना स्पष्ट रहता है कि उनकी दृष्टि तुरन्त उस बेरंग वस्तु पर पड़ जाती है और वे चौकन्ने होकर उसे ही एकटक देखने लगते हैं। यदि दूरबीन हुई तो उससे, अन्यथा जानवर के हिलने-डुलने की क्रिया को देखकर तुरन्त बता देते हैं कि अमुक जगह जानवर है। यह देखकर बाहर से गये हुए शिकारियों को वहाँवालों की दृष्टि पर आश्चर्य होता है कि जिस स्थान को वे दूरबीन से देख चुकते हैं उसी स्थान पर भोटे लोग या काश्मीरी शिकारी जानवर बता देते हैं, परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। हम जल्दी के कारण दूरबीन को तेजी से दौड़ाकर सब जगह पांच मिनट में ही देख लेना चाहते हैं, जिससे बैठे हुए जानवरों की कान तथा सिर हिलाने की क्रिया को देख नहीं पाते। चाहिए तो यह कि जहाँ-जहाँ सम्भावना हो अथवा किसी वस्तु के जानवर होने का सन्देह हो जाय वहाँ देरतक दूरबीन से देखा जाय। लौट-लौटकर ऐसा करना चाहिए और एक जगह पर कम-से-कम आधा घण्टा रुकना चाहिए। यदि जल्दी की जाय तो पहाड़ पर

बिना शिकारी की सहायता के देखनेवालों को प्रायः विमुख लौटना पड़ेगा। यह बात दूसरी है कि प्रातः और सायंकाल के समय जब जानवर चर रहे हों या चलते हों, उन्हें देख लें। मेरा मन्तव्य बैठे हुए जानवरों को देखने से है। इन्हीपर ठीकतौर से ढूंका जा सकता है। चलते हुए पर पहाड़ों में ढूकना असम्भव है। यह बात दूसरी है कि जानवर अपनी ही ओर चरते हुए आ रहे हों और आप अगोट बाँध लें।

ऊँचाई के कारण भोजन अच्छा नहीं लगा और नींद भी उचटती हुई आई।

रविवार, ६ अगस्त

आज लगभग सात बजे हम लोग तैयार हो गये। पास की भूमि छान डाली थी। अतः हमने नौकरों को छः मील दक्षिण की ओर पड़ाव डालने को कहा और कल की जगह चल दिये। जहाँ मोख्तालोन अमन (न्यान) देख आया था, वहाँ पहुंचते-पहुंचते ग्यारह बज गये। न्यान तो न थे, परंतु खांद की अधिकता थी तथा हाल ही के थे। इस ओर कहीं-कहीं पर घास भी थी। कुछ दूर और जाने के पश्चात् लगभग बारह बजे हमने भोजन किया और मोख्तालोन ने प्रस्ताव रक्खा कि मैं यदि दो घन्टे विश्राम कर लूँ तो वह घूम-घामकर न्यान देख आए और खबर दे। ऊँचाई के कारण मेरा सिर चकरा रहा था। अतः मैं सहमत हो गया। आज भी हम दक्षिण की ओर ही जा रहे थे। एक ऊँची जगह चट्टान पर मैं बैठ गया और मोख्तालोन चला गया। उसके चले जाने पर मन में तरह-तरह के विचार उठने लगे। उधेड़-बुन में काफी देर हो गई। इतने में लगभग चार बजे मोख्तालोन ने एक ऊँची जगह से इशारा किया। उसे देखकर जी में आया कि खूब गालियाँ सुनाऊँ और कैम्प की ओर चल दूँ, परन्तु मैंने अपने-आप को शांत रक्खा। जब मैं उसके पास पहुँचा तो वह बोला, "हुजूर, जल्दी चलिए। पाँच मील की दूरी पर न्यान की दो टोलियाँ देख आया हूँ। एक में पाँच और दूसरी में सात हैं। अभी दिन काफी है। खुदा ने चाहा तो शिकार हो जायगी।"

मैंने पूछा, "न्यान बैठे थे या चर रहे थे?"

मोख्तालोन बोला, "चर रहे थे। जल्दी कीजिये। इस तरह बहस

करने में देर हो जायगी।" मैंने कहा कि बंदे को फुरसत नहीं है कि चरते हुए जानवरों के पीछे जाय। तुम देखकर यहां आये हो और अब हम वहां जायंगे। तबतक क्या वे बैठे रहेंगे ? अच्छा तो इसीमें है कि डेरे की तरफ चला जाय। हम लोग आठ-दस मील वैसे ही आ चुके हैं।

मोख्तालोन बोला, "क्या हुजूर भूल गये कि हमने नोकरों का डेरा छः मील दक्खिन की तरफ हटाकर लगाने को कहा था ? जहाँ हम बैठे हैं यहां से डेरा तीन मील होगा। इस तरह आप हिम्मत छोड़ देंगे तो शिकार नहीं होने की। जब ऐसा ही था तो इतना खर्च करके क्यों आये और क्यों तकलीफ उठा रहे हो ?" जब उसने डेरे को हटाने की बात का स्मरण दिलाया तो मैं चलने को राजी हो गया। चलते-चलते लगभग छः बजे हम उस स्थान पर पहुंचे, जहां से मोख्तालोन न्यान देख आया था। बड़ी सावधानी से टट्टू से उतरकर बहुत देरतक मोख्तालोन ने दूरबीन से देखा, परन्तु न्यान दिखाई नहीं दिये। हम लोग पहाड़ के उपर दक्षिण की ओर जा रहे थे। मोख्तालोन ने उठकर, जहाँ न्यान चर रहे थे, वह जगह बताई। वास्तव में वहाँपर हाल के खोद थे और लैंडी भी पड़ी थी। जिस जगह हम खड़े थे वहाँ से पहाड़ के दो भाग हो गये थे। पूर्व की ओरवाला हमारे बराबर था। मैं कह रहा कि पूर्व के पहाड़ पर चढ़ा जाय, परन्तु मोख्तालोन ने पश्चिमवाले पर चढ़ने को कहा। उसने बताया कि ऊंचे पहाड़ पर बकरियां चर रही थीं। इसलिए उधर न्यान नहीं गये होंगे। थोड़ी दूर जाने के पश्चात् जिस पहाड़ के ऊपर हम दक्षिण की ओर जा रहे थे उसका अंत दिखाई दिया और सामने दक्षिण की ओर एक लम्बी-चौड़ी उपत्यका दिखाई दी। मैंने हताश होकर मोख्तालोन से कहा, "लो, यह पहाड़ भी पूरा हुआ। अब उतरकर डेरे की तरफ चलना ठीक होगा। अगर मेरा कहा मानकर दूसरे पहाड़ पर चलते तो कुछ देर और देखा जाता और मुमकिन था कि न्यान दिखाई देते।"

मोख्तालोन बोला, "इस वक्त सात बज रहे हैं। अभी यहाँ से चल देंगे तो भी हम दस बजे से पहले नहीं पहुँच सकते। ऐसी हालत में पूरब-वाले पहाड़ पर जाना बेकार था। मुझे यकीन है कि न्यान हमारे दक्षिण-वाले मैदान में या पूरबवाली घाटी में होंगे। (पूर्व की ओर एक पटक

की ओर संकेतकर) देखिये, वह बकरियाँ लौट रही हैं। मैंने हुज़ूर को बताया था कि उधर बकरियाँ हैं। हुज़ूर पच्छिम की तरफ से देखते-देखते दक्खिन की तरफ़ उस पत्थर तक पहुँचें। मैं पूरब की तरफ़ की घाटी को देखते वहीं मिलूंगा। उधर उतार है, इसलिए हुज़ूर को मेहनत नहीं करनी होगी। अगर मुझे आने में देर हो तो फिक्र न करें।" फिर भोटे से बोला, "देखो, साहब को नज़र में रखना और टट्टू लेकर इतनी दूर रहना, जिससे तुम्हें न्यान भी न देखें और साहब भी दिखाई देते रहें।" भोटा पहले भी शिकारियों के साथ रह चुका था, अतः वह शिकारियों के दाव को खूब जानता था। उसने सिर हिलाकर यह बता दिया कि अपने कर्त्तव्य को वह खूब समझता है।

गोख्तालोन दूरबीन लेकर पूर्व की ओर और मैं पश्चिम की ओर चल दिया। मेरी ओर न्यान के दिखाई पड़ने की सम्भावना बहुत कम थी। कारण, उस ओर चुशल से डुंगटीरप का मार्ग था। कई जगह वजीरसाहब के काम से जाते-आते भोटे दिखाई दे रहे थे। लगभग बीस मिनट में धीरे-धीरे देखता हुआ पूर्व-निर्धारित पत्थर के पास पहुँच गया। जब-जब मैं लौटकर पीछे देखता था, भोटा टट्टू लिए बराबर दिखाई देता था, जिससे मैं समझ गया कि वह शिकार के मामले में चतुर है। मुझे लगभग दो फर्लांग चलना पड़ा होगा। उतराई थी तो भी दम फूल गया था। पत्थर की आड़ में बैठकर सिगरेट पीता रहा। मुझे इस ओर न्यान दिखाई देने की कोई आशा न थी। इसलिए सतर्क भी नहीं था। थोड़ा दिन रह गया था, अतः सोच रहा था कि गोख्तालोन लौट आवे तो पड़ाव की ओर प्रस्थान किया जाय। एक तो मैं सतर्क न था, दूसरे मेरे कान कुछ बहरे हैं। तीसरे, सिगरेट पीता हुआ विचारों में मग्न था। इसलिए मुझे पता तब पड़ा जब गोख्तालोन ने पीछे से आकर मेरे कन्धे पर हाथ रक्खा और बोला, "हुज़ूर, न्यान तो देख आया हूँ, लेकिन मेरा कलेजा फटा जा रहा है।" इतना कहकर वह बैठ गया। मैं समझ गया कि बेचारा काफ़ी ऊँचा चढ़कर आया है। सो बोल नहीं पा रहा है। कुछ ही देर में हमारे दक्षिण-पूर्व की ओर ऊँचे पहाड़ की पटक (दर्रा) को बताते हुए उसने कहा, "आपको न्यान नहीं दिखाई देते?" मैंने देखकर

कहा, "वहाँ तो बकरियां चरती हुईं उस पार से इस ओर आ रही हैं।" बोला, "नहीं, उनके नीचे देखिये। जो दो झुण्ड मैंने देखे थे, वही इकट्ठे हो गये हैं। और देखिये, वे बैठे हैं। मैं भी देखते हुए जब आधा पहाड़ उतर गया तब एकाएक दिखाई दिये। इसीसे इतना चढ़कर चक्कर लगाते हुए आना पड़ा।" यह कहकर उसने मुझे दूरबीन दी। मैंने दूरबीन से उन्हें तुरन्त देख लिया और कहा, "बैठे तो हैं, लेकिन बकरियों को देख रहे हैं और चौकन्ने हैं। बकरियाँ भी वहींपर आ रही हैं, जहाँ न्यान बैठे हैं। अब देखना यह है कि वे उठकर किधर जाते हैं। तबतक हमें यहीं पर बैठकर उनको देखना ठीक होगा। अगर वे हमारी बाईं ओर के तंग सेहे से चढ़े तो हमें उनका रास्ता बाँधना सहल हो जायगा और बन्दूक भी पास से चलेगी। दूसरी दिशा में भागे तो उठकर पड़ाव पर चलना ठीक होगा। इस समय दिन थोड़ा है। इसलिए पीछा भी नहीं कर सकते।"

मोख्तालोन बोला, "अल्लाह इन्साफ करने वाला है। क्या अपने हाल पर रहम न करेगा! हुजूर इतनी दूर से आये और तकलीफ उठा रहे हैं तो कामयाबी जरूरी होगी।" मुझे उसकी प्रार्थना पर हँसी आई। मैंने कहा, "क्या दूसरे की जान के लिए अल्लाह से मदद माँगी जाती है! इन न्यान बेचारों ने किसीका क्या बिगाड़ा है, जो अपनी प्रार्थना सुन अल्लाह इन्हें मरवा देगा!"

मोख्तालोन बोला, "जब एक बादशाह दूसरे पर चढ़ाई करता था तो वह भी खुदा से मिन्नत करता था कि हमारी फतह हो। जिसपर चढ़ाई करते थे उसने खुदा का क्या बिगाड़ा था?" बातें हो रही थीं, परन्तु मैं दूरबीन से न्यान को बराबर देख रहा था। वे बकरियों को देखकर अब खड़े हो गये और गरदनें ऊंची करके भागने की सोचने लगे। मैंने मोख्तालोन को बताकर कहा, "देखो, वे खड़े हो गये और भागना ही चाहते हैं।" मोख्तालोन देख चुका था। बोला, "अगर हमारे बाएं को तंग सेहे में भागे तो हुजूर मेहरबानी करके मेरे पीछे-पीछे दौड़ते आइये और खुदा के लिए न तो रुकिये और न कोई सवाल कीजिये। आपके पास आने के पहले मैं उधर से ही उतरा था और न्यान को देखकर मैंने सब

अन्दाज लगा लिया था कि बन्दूक कहाँ से चलेगी ? मुझे कहाँ जाना है, वह सब याद है।"

मैंने कहा, "अच्छी बात है।" मोख्तालोन बोला, "तो हुजूर, अपनी बन्दूक और दूरबीन भी दे दीजिये ताकि दौड़ने में और पहाड़ उतरने में आसानी रहे।" मैंने उसे बन्दूक और दूरबीन दे दी। वह बैठे-बैठे मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था। न्यान अन्य जानवरों की भाँति कभी दक्षिण कभी पश्चिम, तो कभी पूर्व की ओर थोड़े बढ़ते और रुक जाते थे। वे यही ठीक नहीं कर पा रहे थे कि किधर को भागा जाय। हमसे लगभग एक मील होंगे। उधर मोख्तालोन मिन्नतें कर रहा था, इधर मैं आँख गड़ाये यह देख रहा था कि वे किधर भागते हैं। इतने में एक ने तंग सेही की ओर चलना आरम्भ किया। दूसरा चला और इस प्रकार कतार बाँधकर सब-के-सब चलने लगे। यह देखकर मोख्तालोन बोला, "उठिये, दौड़कर रास्ता बाँध लें।" मैंने कहा, "अभी कुछ और ठहरो। मुमकिन है, वे विचार बदल दें। जबतक दुड़की नहीं लगाते, हमें यहीं से देखना ठीक होगा। हम यहाँ से उठ गये तो उन्हें देख नहीं पायेंगे। इसलिए निश्चित जगह तक जाना जरूरी हो जायगा। वहाँपर जाकर न्यान को न देखेंगे तो बेकार की मेहनत होगी।" मोख्तालोन मेरी बात मान गया। न्यान लगभग ५० गज चलने के बाद धीमी दुड़की लगाने लगे। इतना देखते ही मोख्तालोन भी उठकर दौड़ा। मैं भी पीछे-पीछे चला। उत्तर की ओर हमलोग लगभग सौ गज गये होंगे। मोख्तालोन एक जगह रुका और बोला, "मेरे पीछे-पीछे लुढ़कते आइये। गिरेंगे भी तो धूल में लगने की नहीं। हवा भी हमारी तरफ़ चल रही है। बस, थोड़ी-सी हिम्मत कर जाइये।" इतना कहकर वह नीचे की ओर सेहे में उतर पड़ा। मेरा तो दम वैसे ही काफ़ी फूल चुका था, परन्तु न्यान मारने की धुन जो लगी थी। मैं भी पीछे-पीछे चल दिया। हमलोग लगभग एक हज़ार फुट उतरे तो क्या, लुढ़के होंगे। मुझे तो याद ही न रहा कि कैसे पहुँचा। अन्त में एक बड़े पत्थर के सहारे जाकर मोख्तालोन रुका। जब उसने मेरा हाथ पकड़कर कहा कि बैठ जाइये तब होश आया। साँस फूलने के मारे बुरा हाल देखकर मोख्तालोन ने कहा, "हुजूर, औंधे होकर दम लीजिये।" मैं

न्यान को देखता हूँ।" उसके कहने के पूर्व ही मैंने वह क्रिया प्रारम्भ कर दी थी। वह कह रहा था, "अहा, न्यान इधर ही आ रहे हैं। हुजूर, खूब दम ले लीजिये। अभी बहुत देर में पहुँचेंगे। धीरे-धीरे चल रहे हैं और कतार बांधे हैं। इसलिए उनके दूसरी तरफ जाने का डर नहीं है। सबसे आसान रास्ता भी यही है जो हमारे सामने से जा रहा है। हवा भी बिल्कुल ठीक चल रही है। अगर पन्द्रह मिनट और ऐसी ही रही तो न्यान पचास गज से निकलेंगे।" उधर मोख्तालोन न्यान की गति-विधि बता रहा था, इधर मेरा साँस भी ठीक होता जा रहा था। दस मिनट के पश्चात् मैं भी बैठ गया और मोख्तालोन से बोला, "मुझे भी तो देखने दो कि न्यान कहाँपर हैं और सींग कैसे हैं?" मोख्तालोन ने दूरबीन देकर हाथ से बताया और कहा, "बहुत होशियारी से देखिये। कहीं ऐसा न हो कि वे देख लें और काम बिगड़ जाय।" मैंने जब देखा तो चित्त प्रसन्न हो गया। सब थकान दूर हो गई। बारह न्यान थे और लगभग सभी अच्छे सींगवाले थे। सिर को नीचे किये धीरे-धीरे हमारी ओर उपत्यका में चले आ रहे थे। हमसे लगभग तीन सौ गज होंगे और कोई बाधा न आई तो पाँच मिनट में हमारे सामने आ जायंगे। मैंने दूरबीन मोख्तालोन को देकर बन्दूक सम्हाली और कहा, "तुम दूरबीन लगाये रहो। जब न्यान सामने आएँ तो बस इतना कहना कि आगे से फलां नम्बर में बन्दूक मारो। मैं उसी को मारूंगा। तुम्हारे पास दूरबीन है। खूब अच्छी तरह देखकर जो सबसे बड़ा हो उसे बताना।" मोख्तालोन ने सिर हिलाकर दूरबीन ले ली। मैं भी बन्दूक की नली को पत्थर पर से निकालकर तैयार होकर बैठ गया। प्रतीक्षा के पाँच मिनट पाँच घण्टे के समान मालूम दिये। इतने में पत्थर की आड़ से एक सौ पचास गज पर न्यान निकला। मैंने मोख्तालोन की पीठ पर हाथ से इशारा किया कि न्यान दिखाई देने लगे। उसने धीरे से कहा, "नम्बर दो।" तबतक छः सात न्यान सामने आ चुके थे। भली प्रकार शिस्त लगाकर मैंने बन्दूक दाग दी। धड़ाके के साथ ही न्यान छटपटाने लगा। न्यान को गिरा देखकर मोख्तालोन बोला, "शाबाश! अब सबसे आगेवाले में मारिये।" हमलोग न्यान से पश्चिम की ओर थे। वे उत्तर-पश्चिम की ओर भाग रहे थे। थोड़े-से भागकर हमारे उत्तर की

ओर दो सौ गज पर रुके और मैंने दूसरा फ़ैर किया। इस बार भी न्यान गिर गया और बाकी के एकदम मुड़कर उत्तर की ओर के ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने लगे। दूसरे को भी गिरा देखकर मोख्तालोन ने दूरबीन रख दी और पहले न्यान की ओर झपटा और मुझसे कहता गया, "अब आपके जी में आवे, उसीपर फ़ैर कीजिये।" शेष दस न्यान सामनेवाले पहाड़ पर चढ़ रहे थे। लगभग चार सौ गज की दूरी पर जाकर रुके और मैंने तीसरा फ़ैर किया, जिससे एक न्यान की टाँग टूट गई। वह गिरा, परन्तु तुरन्त उठकर लंगड़ाता हुआ सबके साथ हो गया। मैं दूरबीन से यह देख रहा था कि टाँग कहाँ से टूटी है। यदि जड़ से टूटी होगी तो अवश्य कहीं बैठ जायगा। न्यान बराबर पहाड़ चढ़ रहे थे और मैं भी देख चुका था कि पिछली बाँई टाँग ऊपर के जोड़ से छः इंच नीचे टूटी है। अतः उसके गिरने की सम्भावना नहीं है। इतने में दूसरे न्यान की ओर संकेत करके मोख्तालोन चिल्लाया, "देखिये, वह दूसरा न्यान जा रहा है। मारिये बन्दूक, नहीं तो हाथ न आयगा।" मुड़कर बाँई ओर देखा तो वास्तव में न्यान खड़ा होकर धीरे-धीरे, जहाँ हमारे टट्टू थे, उधर चढ़ रहा था। जब वह रुका तो मैंने फ़ैर किया, परन्तु गोली नीचे उतरकर लगी। धड़ाके तथा धूल उड़ने के कारण न्यान कुछ तेज हो गया। आधा पहाड़ चढ़कर जब पुनः ठहरा तो फिर फ़ैर किया, परन्तु गोली इस बार भी न लगी। इस धड़ाके से पुनः चल पड़ा। चोटी से पचास गज नीचे फिर रुका। इस समय वह मुझसे पाँच या छः सौ गज होगा, परन्तु इस आशा से कि सम्भव है, लग जाय पुनः फ़ैर किया, परन्तु गोली फिर भी नहीं लगी और न्यान पहाड़ पर चढ़ गया। मोख्तालोन भी बन्दूक चलाने लगा। इतने में देखता क्या हूँ कि पहला न्यान लड़खड़ाता हुआ मोख्तालोन से तीस गज पर चल रहा है। मोख्तालोन दौड़ा और फ़ैर किया। बंदे की निराशा का हिसाब न रहा। सोचा कि यह न्यान भी हाथ से निकला जाता है। बैठे-बैठे मोख्तालोन को गाली दे रहा था कि मूर्ख दौड़ता क्यों है? सुस्ताकर बन्दूक मारेगा तो लग जायगी। उसने दूसरा फ़ैर किया। वह भी बच गया, परन्तु न्यान बहुत घायल था। अतः चलता तो था, परन्तु गिर-गिर पड़ता था।

अबकी बार मोख्तालोन दौड़कर बीस गज पर पहुँचकर बैठ गया और तुरन्त फ़ैर नहीं किया। थोड़ा सुस्ताकर जबतक न्यान पचास गज गया होगा, उसने फ़ैर किया और उसे गिरा लिया। जब वह दौड़कर पास पहुँचा तो सन्तोष हुआ कि चलो, तीन न्यान में से एक तो मिल गया।

जबतक मैं पास पहुँचा, हमारा भोटा भी दोनों टट्टू लेकर आ गया। न्यान के सींग नापे तो चालीस इंच से कुछ लम्बे थे। मोख्तालोन ने कहा, "मैंने तो पहले ही कह दिया था कि न्यान के सींग अगर घूम-कर आँख की सीध में आ जायँ तो चालीस इंच के होते हैं। जितने बाहर निकले उतने ही चालीस इंच से ज्यादा समझिये। फोटो लेना हो तो जल्दी लीजिये। हमें काफ़ी दूर जाना है।"

मोख्तालोन को न्यान के साथ बिठाकर फ़ोटो लेने पर उसने बहुत आग्रह किया कि मेरा भी फोटो लिया जाय। अतः उसे कैमरे का हिसाब समझाकर मेरा भी फोटो लिया गया। अब यह सलाह हुई कि न्यान का सिर साथ में लिया जाय और शेष धड़ को कल सवेरे भोटों से मँगवा लिया जाय। जब हम चलने को तैयार हुए तो देखा कि टट्टू गायब हैं। दिन डूब चुका था और हम भी काफ़ी थक चुके थे। इसपर हमें दस-बारह मील डेरे पर पहुँचना था। हमारे क्रोध का ठिकाना न रहा। मोख्तालोन भोटे को गाली देते हुए चिल्लाया, 'सुअर कहीं का! यहाँ हमारा तमाशा देखता रहा और टट्टू छोड़ दिये। अब साहब कैसे चलेंगे?" भोटा बोला, "मैं सिर उठाये लेता हूँ। टट्टू रास्ते में मिल जायंगे, लेकिन जल्दी करो।" हमारे पास दूसरा उपाय ही क्या था? बोझ उठाये भोटा बहुत तेज चल रहा था, यहाँतक कि हम लोग पिछड़ रहे थे। केवल एक बात अच्छी थी कि तीन मील तक उतार था। जिस पहाड़ पर हम प्रारम्भ में बैठे थे उसीको घेरकर जाना था। लगभग दो मील जाने पर अँधेरा पड़ते-पड़ते टट्टू दिखाई दिये। भोटे ने न्यान का सिर रख दिया और दौड़कर टट्टू पकड़ लाया। अब हमें थकावट तथा सिर का दर्द मालूम होने लगा। ऐस्प्रीन की गोली खाई और बातें भी होने लगीं। मोख्तालोन और हमारी सलाह हुई कि कल दोनों घायल

न्यान ढूंढ़े जायँ। मैंने कहा कि पिछली टाँग टूटे हुए न्यान को ढूँढ़ना बेकार होगा। वह बहुत दूर निकल गया होगा, लेकिन दूसरे के बीचोंबीच गोली लगी है। सो वह कहीं बैठकर मर गया होगा।

काफी अन्धेरा हो गया था और ठण्ड-सी हो चली थी। हमें न आते देखकर दाऊसाहब तथा दूसरों को आशंका होने लगी कि हम लोग दूर निकल गये और रास्ता भूल गये हैं। यह भी आशंका होती थी कि कहीं तिब्बत की सीमा में जाने से वहाँ की पुलिस ने पकड़ न लिया हो। उन लोगों ने ऊँची जगह पर कई जगह आग जलाई, ताकि हम देख लें। साथ ही सबको इकट्ठे होकर चिल्लाने की आज्ञा दी, ताकि हमें आहट मिल जाय।

हवा उत्तर से दक्षिण को अर्थात् कैम्प से हमारी ओर को चल रही थी। इसलिए जब कैम्प एक मील रहा तो आग जलती दिखाई दी। वे लोग बराबर चिल्लाते रहे। लगभग बारह बजे हम कैम्प पर पहुंचे तो देखा सब जाग रहे थे और बड़े चिंतित थे। संक्षेप में सब वृत्तांत बताया। न्यान को देखकर दाऊसाहब बड़े खुश हुए। पूछने पर बोले, "आज भी कुछ दिखाई नहीं दिया और न आशा ही है।"

इतने में हबीबा खाना लेकर आ गया, परन्तु मैं थका था और थोड़ा सिर में दर्द था। अतः इन्कार कर दिया। यह देखकर दाऊसाहब ने कहा, "थोड़ी-सी ब्राण्डी पी लीजिये, जिससे थकान दूर होगी और भूख भी लगेगी।" मैं नाहीं करता ही रहा, परन्तु वे गिलास में ब्राण्डी ले आये। मैंने बहुत समझाया कि इतनी ऊँचाई पर मदिरा सिर-दर्द को बढ़ा देगी, परन्तु वे न माने। एक पेग ब्राण्डी पी, जिससे थोड़ी थकान दूर हुई और भोजन की इच्छा होने लगी। दाऊसाहब ने आधा पेग और लेने का आग्रह किया, परन्तु मैंने न लिया। नशे के कारण भोजन में स्वाद न आनेपर भी थोड़ा-सा खा लिया। रातभर सिर में दर्द रहा और करवटें बदलते-बदलते सवेरा हो गया। अपने आपको कोसता रहा कि क्यों शराब पीने की मूर्खता की।

सोमवार, ७ अगस्त

उजेला हो चला था। रात को नींद न आने के कारण सिर भारी

था। बाहर मोख्तालोन किसीपर नाराज हो रहा था, परन्तु वह क्या कह रहा था, मेरी समझ में न आ रहा था। थोड़ी देर में चाय लेकर मोख्तालोन आया, साथ में एक भोटा भी था, जो कल हमारे साथ टट्टू लेकर आया था। चाय रखकर मोख्तालोन बोला, "इसने दूसरे अमन को पड़ा देखकर भी हमें कुछ न बताया। अगर चाहता तो खुद पकड़ लेता या हमें इशारा कर सकता था। हमारे पास आकर भी कुछ न कहा। अज मैंने इसे अमन को ढूंढ़ने के लिए चलने को कहा तो कहता है कि जहाँपर खड़ा था, उससे पचास गज पर घायल अमन गिर पड़ा था। भोटा मुस्करा रहा था और सिर हिलाकर मोख्तालोन की बात की पुष्टि कर रहा था। मोख्तालोन ने कहा, "हुजूर, जल्दी तैयार हो जायँ, ताकि दूसरा अमन, जो भोटे ने देखा है, वह तो मिल ही जाय। साथ ही टाँग टूटा हुआ तीसरा अमन भी ढूंढ़ेंगे।" मेरी दशा खराब थी। सब हाल बताकर मैंने नाही कर दी और कहा कि तुम्हीं जाकर उसे ढूंढ़ लाओ। इतने में दाऊसाहब और रमजानखाँ आ गये। रमजानखाँ बोला, "हुजूर इजाजत दें तो मैं साहब को लेकर आज टटाटोर चला जाऊँ। उधर न्यान की खबर मिली है। दूसरे उस तरफ़ पहाड़ इतने विकट नहीं हैं। यहाँपर तो साहब चला-चलाकर मार लेगा। कल चार गोली ऐस्प्रीन की खानी पड़ी। हमारा साहब आदमी नहीं, भूत है। इन्हें न ऊँचाई का हिसाब रहता है और न थकान मालूम होती है। काश मैं आपके साथ होता और मोख्तालोन मेरे साहब के साथ!"

मैंने कहा, "जहाँ शिकार मिले वहीं पड़ाव डालना ठीक होगा। आज तो मुझे यहाँ रहना ही होगा, क्योंकि घायल न्यान को ढूंढ़ने मोख्तालोन जा रहा है।" रमजानखाँ ने अनुरोधपूर्वक कहा, "हुजूर, फेरसी न जायँ। उस जगह जाने में काफी देर लगेगी और चांगचेनमो जैसी तकलीफ होगी। आप तो पुंगा तथा ग्या होते हुए हिमिस पहुँचें। हम भी वहीं मिल जायेंगे। इस रास्ते में आपको अमन, निब्बनी चिकारे, भरल तथा शापू मिल जायेंगे।" मैंने प्रस्ताव रक्खा कि ता० २० के दिन मार्सलंग में मिल जायंगे। यदि किसीको देर हुई तो २१ तारीख के दिन अवश्य मिला जाय। इसपर भी किसीको देर हो तो आगे जानेवाला लेह में

प्रतीक्षा करें।

मोख्तालोन कलवाले न्यान को ढूँढ़ने पहले ही चला गया था। लगभग आठ बजे दाऊसाहब का काफिला भी तैयार हो गया। चलते-चलते दाऊसाहब बोले, "सावधानी से रहिये। कुछ खाया भी कीजिये। इस प्रकार तो आप बहुत निर्बल हो जायगे।" इनके चले जाने पर पड़ाव में सन्नाटा छा गया। मैंने कलवाले न्यान का चमड़ा निकलवाया।

आज ठंड काफी थी। दिनभर बिस्तरे पर पड़ा-पड़ा करवटें बदलता रहा।

लगभग आठ बजे सन्ध्या समय मोख्तालोन लौटा। उसने बताया कि जिस जगह दूसरा अमन बैठा था, वहाँ सेरभर खून पड़ा था, परन्तु वह वहां से उठकर पड़ाव की ओर चल दिया। कुछ दूर तक खून की बूंदें मिलीं, परन्तु फिर बन्द हो गई। उसके पिछले पैर भी भूमि पर घिराटते थे। अतः वह बहुत धीरे-धीरे इधर की ओर आया है। तीसरे न्यान को वह देखने नहीं जा पाया। यह सब सुनकर यह तै हुआ कि कल यहीं ठहरा जाय और न्यान को पुनः ढूँढ़ा जाय। मोख्तालोन का अनुमान था कि उक्त न्यान पानी की खोज में चल पड़ा है और बहुत संभव है कि कहीं पानी के पास मरा हुआ मिले।

आज रात को नींद नहीं आई।

रविवार, ८ अगस्त

आज सवेरे पाँच बजे मोख्तालोन न्यान ढूँढ़ने के लिए निकल गया। चाय पीने के पश्चात् तम्बू में पड़ा-पड़ा मैं देहातियों को देख रहा था। कल वजीरसाहब डुंगटीरप आनेवाले थे, जहाँ हमें भी जाना था। बड़ी हलचल थी। भोटों ने बताया कि वे डुंगटीरप तक ले जाने को तैयार हैं, वह भी यदि हम कल चल दिये तो, अन्यथा नहीं। इसके आगे के लिए हमें वजीरसाहब से आज्ञा लेनी होगी। पचास मील तक के टट्टू पकड़ लिये गये थे। हमें तो ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों दिल्ली-दरबार होने वाला है। जिसे पूछो, वह वजीरसाहब के लिए किसी-न-किसी काम से जा, या आ रहा था।

भोजन के समय गफ्फारा बोला, "हुजूर, तीन दिन से कुछ नहीं खा रहे हैं। इसलिए आज मैंने अँग्रेजी खाना—सूप, चाय वगैरा पकाये है। अगर

आप अच्छी तरह खाना नहीं खायंगे तो कमजोर हो जायंगे और शिकार के लिए मेहनत कैसे कर सकेंगे ? जो आपको रुचे, उसीका हुक्म दीजिये। मैं बनाकर हाजिर करूंगा।"

मैंने कहा, "मुझे कोई चीज जायकेदार नहीं लगती, मीठे में कुछ स्वाद आता है। इसलिए एक रोटी चाय के साथ खा लेता हूं। यही काफी है। मैं बच्चा तो हूँ नहीं, जो मुझे समझाओ। असल में बात यह है कि यह जगह ऊंचाई पर है, इसीसे सब व्याधियाँ हैं। कल नीचे उतरने पर सब ठीक हो जायगा। वैसे भी हमें यहां से कल चल देना होगा, नहीं तो सामान के लिए कोई जानवर न मिलेगा।"

हमने भोटों को कल डुगटीरप पहुँचाने के लिए तैयार कर लिया। सन्ध्या समय मोख्तालोन खाली हाथ लौटा और बताया कि न्याग का कहीं भी पता नहीं चला। मालूम होता है कि उसे भेड़ियों ने खा लिया, अन्यथा गिद्ध या कौवे उसे खाते हुए दिखाई देते। कल चल देने के लिए मोख्तालोन भी सहमत हो गया। रात को नींद बहुत कम आई।

: १६ :

एक मजेदार अनुभव

बुधवार, ६ अगस्त

सवेरे चाय लेकर जब मोख्तालोन आया तो कहने लगा, "हुजूर, यहाँ न्याग काफी हैं। एक-दो दिन और ठहर जाइये। मुमकिन है कि घायल न्याग मिल जाय या दूसरा मार लीजिये। एक खत हनीफ़ा के साथ वजीर-साहब के नाम लिख दीजिये। वे हमारे लिए टट्टू आदि का इंतजाम करने का हुक्म दे देंगे।"

मैंने कहा, "एक तो तीन दिन से नींद नहीं आ रही है। दूसरे वजीर-साहब से मेरी ज्यादा जान-पहचान नहीं है। ऐसी हालत में उन्हें लिखना पसन्द नहीं करता। अगर उन्होंने इन्तजाम नहीं किया तो आठ दिन के लिए यानी जबतक इधर के टट्टू वजीरसाहब नहीं छोड़ते तबतक हम

यहाँ से हिल न सकेंगे।" अतः सामान बाँधा जाने लगा और लगभग सात बजे हमलोग चल पड़े। प्रारम्भ में हमें थोड़ी-थोड़ी चढ़ाई मिली। जहाँसे सिंधु की उपत्यका में उतार प्रारम्भ होता था, वहाँ एक मानी बनी थी, जिसपर कई न्यान के सिर पड़े थे, जिससे पता चलता था कि इस प्रदेश में काफी न्यान हैं। इस ओर पत्थरों के अतिरिक्त मरे जानवरों के सिर भी मानी पर रख दिये जाते हैं। न्यानों के कुछ सिर अच्छे थे। थोड़े भरल के सिर भी थे तथा याक के तो कई थे। प्रथानुसार 'लो सलो हर गलो' का नारा लगाया गया और थोड़ा विश्राम करके उपत्यका में उतर पड़े। कई जगह भोटे आते-जाते मिले। कोई वज़ीरसाहब से विनती करने गया था तो कोई खाद्य पदार्थ देकर आ रहा था। इस जन-शून्य प्रदेश में इतने बड़े हाकिम का सदल-बल आना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। लगभग तीन बजे हमलोग डुंगटीरप पहुँचे। उस पार वज़ीरसाहब का अधिकांश सामान पड़ा था, जो जख द्वारा इस पार लाया जा रहा था। हमारा सामान उस पार उतारने में कोई कठिनाई नहीं आई। कारण, उधर जख खाली जा रहे थे। जख हमने यहाँ पहली बार देखे। कई भेड़-बकरी की समूची खालों में फूंक से हवा भरकर रस्सियों से उन्हें इकट्ठा बाँध लिया जाता है। इन्हींपर बैठकर इस ओर नदी पार करते हैं। यदि आपके नीचे की खाल की हवा निकल गई तो ठण्डे पानी में एक फुट उतरे समझिये। जख चलता रहता है और जिस खाल की हवा निकली हो उसमें फूंक भी भरते रहते हैं। खेने के लिए पतवार की जगह हाथ से काम लिया जाता है।

जब मैंने वहाँ पहुँचकर वज़ीरसाहब के पास सन्देशा भेजा तो तुरन्त बुला लिया गया। इन्हें भी लगभग सात सप्ताह से बाहर का कोई व्यक्ति नहीं मिला था। इनके साथ एक नायब तहसीलदार तथा एक डाक्टर थे। काश्मीर राज्य के एक बकरीवाले को तिब्बत के बकरीवालों ने लगभग चार-पाँच वर्ष पूर्व मार डाला था। चार वर्ष की लिखा-पढ़ी के बाद अब यह तय हुआ था कि लद्दाख के वज़ीर (गवर्नर) गर्तोक (तिब्बत) के जोंग (गवर्नर) से मिलें और उनके समक्ष सब प्रमाण रखकर हत्यारों को माँगे। दोनों गवर्नर दल-बल सहित दमचौक स्थान पर अपनी-अपनी सीमा में

पाँच सप्ताह तक डटे रहे। कई बार एक-दूसरे से मिले, परन्तु फल कुछ न निकला। गर्तोक के गवर्नर कहते थे कि जितने भी साक्षी लद्दाखवालों ने पेश किये हैं, उन्हें उनकी सच्चाई की परीक्षा के लिए गर्तोकवालों को सौंप दिया जाय। जब साक्षियों को उक्त प्रस्ताव बताया गया तो कोई भी राज़ी न हुआ। बात यह थी कि तिब्बत में साक्षियों की सच्चाई की परीक्षा कई प्रकार की ताड़नाएँ देकर की जाती है। सबकुछ सहन करके साक्षी यदि अपनी बात पर दृढ़ रहे तो उसे सच्चा माना जाता है। तिब्बत के राज्य-कर्मचारी व्यवसाय भी करते हैं। दो पक्ष में निर्णय देते समय जो दण्ड होता है, वह जोंग का होता है। अपील की दशा में दण्ड का द्रव्य तथा पत्रादि लासा भेज दिये जाते हैं। जब मैंने साक्षियों के पिटने की बात सुनी तो भारतवर्ष की कचहरियों के गवाह, जो पैसे लेकर झूठी साक्षी देते हैं, याद आ गये। वज़ीरसाहब सात सप्ताह के बाद विफल लौट रहे थे और अपनी विवशता का वृत्तान्त लिखकर भेजने की कहते थे। भारतवर्ष के कानून में साक्षियों को पीटना मना है तो तिब्बत में पीटकर सच्चाई की परीक्षा करना न्याय-संगत है। उनके पास 'ट्रिब्यून' की गत दो सप्ताह की कई प्रतियाँ थीं। जब मैंने कुछ माँगी तो उन्होंने सहर्ष दे दीं। लगभग सात बजे चाय पी। वज़ीरसाहब ने बहुत आग्रह किया कि मैं भोजन उन्हींके साथ करूं और रात भी उन्हींके कैम्प में बिताऊँ। भोजन करने के लिए तो मैं राज़ी हो गया, परन्तु नदी पार जाकर अपने तम्बू में सोने के लिए मैं कहता रहा। मैंने वज़ीरसाहब को बता दिया कि सवेरे पानी ठण्डा होगा। ऐसे में बिचारे भोटों को पानी में उतारना ठीक नहीं है। जब मैंने सामान के लिए टट्टू आदि की कठिनाई बताई तो उन्होंने एक गिरदावर को बुलाकर आज्ञा दी कि वह मेरे साथ रहे और जबतक मैं लद्दाख में हूँ, सब प्रबन्ध करे। उस कृपा के लिए मैंने वज़ीरसाहब को बहुत धन्यवाद दिया और विनती की कि उनके आगमन के कारण ही टट्टू आदि नहीं मिल रहे हैं। केवल दो पड़ाव तक अर्थात् पुंगा तक का प्रबन्ध कर दें। आगे कठिनाई न होगी। दुनिया-भर की बातें और भोजन करते लगभग बारह बज गये। तब मैंने वज़ीरसाहब से विदा ली। जब वज़ीर साहब मुझे पहुँचाने के लिए जल तक आये तो लोगों पर मेरा

रौब जम गया। मेरे पहुँचने के पूर्व ही गिरदावर टट्टू आदि लेकर मेरे डेरे पर पहुँच गया था। शिकारी तथा नौकर सब समझ चुके थे।

पिछले पड़ाव की अपेक्षा यहाँ कुछ गरम था। रात को कुछ नींद भी आई।

: २० :

तिब्बती चिकारे हाथ न आये

गुरुवार, १० अगस्त

सवेरे चाय लेकर मोख्तालोन आया और बोला, "हुजूर, आपने यह गिरदावर की आफ़त कहाँ से मोल ले ली? हमको चलते-चलते शिकार खेलना है और यह साथ में होगा तो रिपोर्ट कर देगा। दूसरे इसे खाना भी खिलाना होगा।" मोख्तालोन की बात ठीक थी। मैंने एक पत्र वज़ीर-साहब के नाम लिखा कि हमें गिरदावर की कोई आवश्यकता नहीं है। इसने सब प्रबन्ध कर ही दिया है। उत्तर मिला कि एक चपरासी अगले पड़ाव अर्थात् नीमू तक जायगा।

हम लोग यहाँ से सात बजे चल दिये। सिन्धु के दक्षिणी तट पर चल रहे थे। उपत्यका अच्छी चौड़ी तथा भूमि समतल होने के कारण जल धीरे-धीरे बह रहा था। नदी के बीच तथा किनारे पर कई जगह कियांग (जंगली घोड़े) चरते हुए दिखाई दिये। एक जगह न्यान की मादा भी दिखाई दी। पाँच-छः मील चलने के पश्चात् हमें हनले नदी पार करनी पड़ी, परन्तु विशेष कठिनाई नहीं हुई। पानी तीन फुट से ज्यादा न था। हमलोग पन्द्रह मील चलकर एक बजे के लगभग नीमू के सामने पहुँचे। नीमू नदी से चार मील उत्तर की ओर एक उपत्यका में स्थित है। दक्षिण की ओर यात्रियों के ठहरने के लिए एक सराय भी बनी है। लेह और हनले का मार्ग यहीं होकर जाता है। जब हम सराय के पास पहुँचे तो हमें कई नीमूवाले मिले। उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ से तीन मील दक्षिण की ओर हनले के मार्ग पर एक पुराना दुर्ग है, जिसे 'खर्गोक' कहते हैं। इसी दुर्ग के आस-पास तिब्बती चिकारे मिलेंगे। इन्हें

इधर 'गोवा' कहते हैं। सराय नदी में थी। अतः हमने किनारे पर ऊँची जगह डेरा लगाया, ताकि तम्बू में बैठे-बैठे दूरबीन से आस-पास देख सकें। चपरासी को हमने विदा कर दिया। कुछ विश्राम करने के पश्चात् चार बजे हम लोग खर्गोक के पास पहुँचे। एक अच्छी चौड़ी तथा समतल उपत्यका के बीच में छोटी-सी पहाड़ी पर कच्ची दावारें खड़ी हैं। यहाँ से हनले को मार्ग गया है। नाले के किनारे कुछ घास तथा पौधे भी हैं, परन्तु उपत्यका में कंकर तक नहीं हैं। वहाँ पहुँचते ही हमें पाँच गोवा दिखाई दिये। देखने में भारत के छिकरों जैसे ही हैं। बाल बड़े होने के कारण कुछ मोटे-से मालूम देते हैं तथा इनके सींग भी कुछ पीछे की ओर विशेष झुके होते हैं। छुपने के लिए कोई आड़ न थी। जब हम लगभग चार सौ गज पर पहुँचे तो वे चौकन्ने हो गये। यही उत्तम समझा कि नीचे बैठकर बन्दूक चलाई जाय। कुछ सुस्ताकर मैंने फ़ैर करना प्रारम्भ किया और आठ गोलियाँ चलाईं, परन्तु एक भी न लगी। ज्यों-ज्यों बचती गईं, जिद्द में और चलाता गया। जब गोवा भागकर एक टोरिया पार कर गये तो हमने पीछा किया। जाकर देखा तो वे दो सौ गज की दूरी पर खड़े थे, परन्तु सूर्य आँखों में पड़ रहा था। तीन फ़ैर यहाँपर भी किये, परन्तु एक भी गोली न लगी। हताश होकर सूर्यास्त से पूर्व वापस आ गये।

शुक्रवार, ११ अगस्त

आज सवेरे कलवाली जगह फिर जाना था। चाय पीते समय मैंने मोरुतालोन से कहा कि दूर से फ़ैर करके कारतूस बिगाड़ना ठीक नहीं। इस प्रकार सब कारतूस खत्म हो जायँगे। अतः अच्छा होगा कि मैं कहीं छिपकर बैठूँ और वे लोग गोवा को हांककर मेरे पास लावें, ताकि पास से बन्दूक चले और शिकार हो जाय। इस प्रस्ताव को मेरे नौकरों ने मान लिया। वहाँ पहुँचकर यही तरकीब की गई, परन्तु गोवा मेरे पास होकर कभी नहीं निकले।

एक विचित्र दृश्य सवेरे के समय इस उपत्यका में देखने को मिलता है। यहाँ प्रत्येक वस्तु दस गुनी ऊँची दिखाई देती है। छोटे-छोटे छिकरे ऊँट के बराबर दिखाई देते हैं। यह सब सवेरे के समय पश्चिम की ओर

देखने से दिखाई देते हैं। एक बार मृगतृष्णा भी देखी। अच्छा खासा तालाब था, जिसके किनारे बड़े-बड़े पेड़ थे और उनकी परछाँई पानी में पड़ रही थी। गोटा ने कहा कि इस उपत्यका में सवेरे के समय प्रायः यही विचित्र बातें दिखाई देती हैं।

कई बार प्रयत्न करने पर भी जब गोवा पास होकर नहीं निकले तो ग्यारह बजे के लगभग चार सौ गज़ की दूरी पर खड़े हुए छः-सात गोवों पर दो फ़ैर और किये। कारतूस कम रह गये थे। अतः मैंने आशा छोड़ दी और लौट आया। डेढ़ बजे के लगभग डेरे पर पहुँचा।

यहाँ से चार बजे चले और नीमू के सामने जाकर ठहर गये। चार-पाँच मील चले होंगे। डुंगटीरप से यहाँतक हमें कहीं भी बुर्त्सी नहीं मिली। गोबर से ही पकाने का काम चलाया गया।

शनिवार, १२ अगस्त

नीमू से सवेरे सात बजे पुंगा के लिए चले। बारह मील सिन्धु के किनारे चलने पर माहिए ग्राम आया। यहाँ से हमने सिन्धु छोड़ दी और एक नाले के किनारे बारह मील और चलकर पुंगा के मैदान में पहुँचे। यह मैदान लगभग पाँच मील लम्बा तथा एक मील चौड़ा होगा। इसके बीच में कस्टम नाका बना है। कई जगह गरम सोते हैं और गन्धक बिछा हुआ है। गन्ध भी उसीकी आती है। एक जगह पहाड़ी में गन्धक खोदने के लिए गड्ढे भी देखे। मालूम हुआ कि गन्धक को रेल तक ले जाने में खर्च बहुत आता था, इसीसे खदान बन्द कर दी। आस-पास के चर्म रोगवाले यहाँ इन गर्म सोतों में नहाने के लिए आते रहते हैं। सैकड़ों जगह गर्म पानी निकल रहा है। खौलते हुए पानी से लगाकर ठण्डे पानी तक के सोते यहाँ विद्यमान हैं। नाके के पास हमने डेरे लगाये। कुछ चांपे (बकरीवाले) यहाँपर ठहरे हुए थे। सन्ध्या समय मोंक्तालोन ने चार रुपये में दो भोटिये कुत्ते के पिल्ले खरीदे।

सन्ध्या समय मैंने मोक्तालोन से कहा कि नं० ८ ग्रमन ब्लाक में चलना चाहिए। मोक्तालोन मुंशी अब्दुल रहमान को ले आया और मुझे विश्वास करा दिया कि वहाँ जाना व्यर्थ होगा। ग्याम वैसे ही ग्या के रास्ते में मिल जायँगे तो फेरसों (नम्बर ८) जाकर कष्ट क्यों उठाया

जाय। दो दिन काला चश्मा न लगाने से आँखें जलने लग गई थीं। इधर सूर्य की किरणें बहुत तीव्र होती हैं। अतः काला चश्मा लगाना उचित है। आज रात को आँखों के दर्द के मारे तीन बजे नींद आई। पांच बजे उठ बैठा।

: २१ :

गन्धक के सोतों और चक्रवाकों के प्रदेश में

रविवार, १३ अगस्त

'आज सवेरे सात बजे पुंगा से चले। चुशल से चलने के समय से आजतक हमें सामान लादने के लिए टट्टू नहीं मिले। सामान याक पर लदता है। सवारी के लिए बड़ी कठिनाई से तीन टट्टू मिल पाये। हम-लोगों को सामान से आधा मील आगे या पीछे चलना पड़ता है। पुंगा के मैदान में गन्धक बिछा पड़ा है। इसीकी गन्ध का यहाँ राज्य है। नाले में जगह-जगह गर्म पानी के सोते हैं। हमलोग जब बारह मील चले होंगे तो एक दर्रा मिला। इसे लोग 'पलकोंको' कहते हैं। चढ़ाई बहुत मामूली है। दर्रे पर प्रथानुसार 'लो सलो' के नारे लगाये गये। उतार से कुछ ही दूर गये होंगे कि देखते क्या हैं कि एकाएक हमारे याक जंगली जानवरों की भाँति सामान पटककर पहाड़ों पर भागे जा रहे हैं और भोटे लोग उनका पीछा कर रहे हैं। कुछ देर के बाद हम भी मौके पर पहुँच गये और सामान बटोरने लगे। जब हमने उनसे याकों के भागने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि किसी जानवर की बू के कारण वे भड़के हैं। हमें यहाँ चार बजे तक रुकना पड़ा। तब कहीं सब याक तथा सामान इकट्ठा कर पाये और लादकर चले। यहाँ से आठ-दस मील चलने पर हमें हजारों चक्रवाकों का कोलाहल सुनाई दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि दो मील पर 'कारत्सो' नामक झील आनेवाली है। उसीमें चक्रवाक बोल रहे हैं। आज इसी झील के किनारे 'थुगजी' नामक पड़ाव पर ठहरना था। लगभग सात बजे झील के पास पहुँचे। यह झील दो-तीन मील लम्बी है और एक मील चौड़ी होगी। झील के

किनारे तथा टापुओं पर चक्रवाकों का मेला लगा हुआ था। हमको देखकर पासवालों ने इतना शोर मचाया कि एक-दूसरे की बात सुनाई नहीं दे रही थी। ये पक्षी, मालूम होता है, गर्मी के दिनों में यहीं रहते हैं तथा यहींपर अण्डे-बच्चे देते हैं। हमने बहुत बच्चे देखे, परन्तु अण्डे कम थे। हमलोग झील के पूर्व की ओर जा रहे थे और जब ठीक बीच में पहुंचे तो एक पड़ाव मिला, जहाँ पर ठहर गये। पड़ाव से मेरा मतलब उस जगह से है, जहाँ भेड़-बकरीवाले ठहरते हैं। इनकी लेंड़ी से ईंधन का काम लिया जाता है। कहीं-कहींपर पत्थरों की दीवार का घेरा भी बना होता है, जिससे रात को ठण्डी हवा से बचाव हो सके। इसमें ठहरना यहाँवालों का काम नहीं। कारण, वहाँपर प्राय: बहुत गन्दा होता है। पुंगा की भाँति यहाँ भी पानी से गन्धक की गन्ध आती है, परन्तु यहाँपर गन्धक ऊपर पड़ा हुआ नहीं दिखाई देता। हमारे तीनों टट्टू बहुत कमजोर थे। अत: एक को पुंगा में छोड़कर आना पड़ा था। अब केवल दो रह गये थे, परन्तु वे भी तगड़े नहीं थे। रासें, लगाम तंग तथा रकाबें टूट चुकी थीं। हमलोगों ने इनका काम रस्सी से लिया था। काठी के पलड़े भी चटखने लगे थे। अत: उसके ऊपर कम्बल बिछाने लगे। मालूम होता था कि श्रीनगर तक काठी में चमड़े का नाम तक नहीं रहेगा। शिकारी कई बार कहता था कि चर्बी लगाई जाय, परन्तु मैं राजी नहीं हुआ। इससे सब कपड़े खराब हो जाते हैं। मेरी समझ में इधर आनेवाले को काठी नमदे की तथा अन्य सामान सूत का रखना चाहिए, ताकि टूटे नहीं। बन्दूक की बद्दी (स्लिंग) भी सूत की होनी चाहिए। रात होने पर चक्रवाकों का शोर कम हुआ, फिर भी नींद बहुत कम आई।

: २२ :

फिर न्यानों के पीछे

सोमवार, १४ अगस्त

हमारे याक तथा टट्टू बहुत दुर्बल थे। हम लोग थुगजी से सात बजे के लगभग चले। झील से उत्तर की ओर एक बड़ा मैदान है, जो

सात मील लम्बा और चार मील चौड़ा होगा। इसे 'फतातक' कहते हैं। यहांपर गोवा पाये जाते हैं। इसीके बीच में होकर हम निकले। बहुत देखा-भाली की। गोवा की मादा दिखाई दी। नर बिल्कुल नहीं दीखे। यहांपर हमें दो-तीन जगह दस फुट गहरे तथा बीस फुट के व्यास के गड्ढे दिखाई दिये। पूछने पर मालूम हुआ कि जाड़ों के दिनों में जब बकरीवाले बर्फ के कारण इस मैदान में पड़ाव डालते हैं, उस समय भेड़िये इनकी बकरियों को बहुत सताते हैं। इन्हीं गड्ढों में एक बकरा बाँधने से भेड़ियों का झुण्ड कूद पड़ता है। वे बकरे को खा लेते हैं, परन्तु निकल नहीं पाते और चांपों के पत्थरों के शिकार होते हैं। यह मालूम हुआ कि भेड़िये इतने मूर्ख नहीं होते कि सहज में कूद पड़ें। वे जब बहुत भूखे होते हैं तभी कूदते हैं। इस पड़ाव के उत्तर की ओर नाले के सहारे कई जगह पड़ाव में घर बने हुए मिले, जिनकी छतों पर मिट्टी पड़ी हुई थी। इससे स्पष्ट था कि यहांपर बकरीवाले महीनों पड़ाव लगाते हैं। मैदान पार करके जब चढ़ाई प्रारम्भ हुई तो एक याक बैठ गया। बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह न उठा। भोटों ने उसपर का सामान बांटकर अपनी पीठ पर लादा।। दूसरे आठ याक भी दुबले थे। अतः यह निश्चय हुआ कि अगले पड़ाव पर इनको बदल दिया जाय। इन्हीं भोटों से यह पता लगा कि अगले पड़ाव के पास ही कुछ बकरीवाले पड़े हैं। सवारी का प्रबन्ध हो जायगा।

'थसंगी ला' नामक दर्रा पारकर हम लोगों ने एक नाले के पास पड़ाव पर डेरा लगाया। यहां से कैगर छः मील है। वैसे हमें कैगर जाकर ठहरना था, परन्तु याक बहुत दुर्बल थे और बादल भी थे। यदि पानी बरसा तो सामान भारी हो जायगा और इन याकों के बस की बात नहीं रहेगी कि उठा सकें। सामान उतारकर हमने भोटों को तुरन्त दूसरे जानवरों का प्रबन्ध करने के लिए भेज दिया। लगभग पाँच बजे वे लौटे और अपने साथ तीन-चार आदमी लाये। उनसे बातचीत हुई और हमने अपने भोटों को दाम चुका कर विदा किया। अन्य पड़ावों की अपेक्षा यह ऊँची जगह है। अतः यहाँ ठण्ड विशेष है। ऊँचाई के कारण रात को दो बजे के बाद थोड़ी-सी नींद आई।

मंगलवार, १५ अगस्त

आज सवेरे उजाला होते ही हमारे दूसरे भोटे याक तथा टट्टू लेकर आ गये। एक तो यह ऊँचाई पर है, दूसरे पास में हिमाच्छादित पर्वत हैं। इसमे बहुत ठण्डा है। 'कैमर ला' पार करके पड़ाव पर ठहरना था। सलाह यह हुई थी कि उक्त पड़ाव पर ठहरकर ग्यान की शिकार खेली जाय। जब एक-दो मार लें तब ग्या नामक गाँव पहुंचा जाय। आज बादल भी काफी थे, जिसके कारण ठण्ड बहुत थी। इस ओर शिकारी के अतिरिक्त और कोई नहीं आता। कारण, यह जन-शून्य प्रदेश है। भोटों के जानवर बलिष्ट तो थे, परन्तु उतने ही जंगली भी। याकों को लादने में दो घण्टे लगे। कई बार सामान नीचे गिराया, तब कहीं बड़ी कठिनाई से वे लोग चल सके। हमारे सामान की पेटियाँ प्रायः सब टूट चुकी थीं। यही दशा और सामान की भी थी। सवारी के तीनों टट्टू लाये गये। वे भी हमें देखकर उछलने लगे। मेरी काठी दो-तीन बार पृथक्-पृथक् टट्टू पर कसी गई, परन्तु जब उनमें से किसीको सीधा न पाया तो एक टट्टू, जिसे सबसे ठीक समझा गया, मैंने एक मील भगाकर लाने को कहा, ताकि वह कुछ थक जाय और कूदे नहीं। जब एक भोटा उसे भगाकर लाया तो मैं बड़ी सावधानी से उसपर चढ़ा, परन्तु मेरी बू पड़ते ही वह उछलने लगा और मुझे पटककर एक दुलत्ती झाड़ दी। मैंने अपना सिर तो बचा लिया, परन्तु बाँये हाथ की दो उँगलियों में टाप लग ही गई। पाठक अनुमान कर सकते हैं कि ठण्ड में चोट कितनी लगती है। इधर मैं दोनों उंगलियाँ दाहिने हाथ में पकड़े मुँह बिगाड़ रहा था, उधर मेरे नौकर भोटों को खूब गालियाँ दे रहे थे। दूसरे टट्टू पर काठी कसी गई और वह भी भगाकर हाँफता हुआ लाया गया और मुझसे सवार होने के लिए कहा गया। यदि लद्दाख न होता तो मैं पैदल चलना पसन्द करता, परन्तु इतनी ऊँचाई पर कैसे चल सकता था। अतः सवार होने के पूर्व मैंने कह दिया कि जबतक मैं न कहूँ, एक भोटा टट्टू को पकड़े रहे। इस प्रकार हम लोग वहाँ से विदा हुए। आज के टट्टूवाले तिरी नामक ग्राम के थे। इस सब गड़बड़ में हमें चलते-चलते साढ़े आठ बज गये। आज हमें तीन पहाड़ पार करने थे और रास्ता भी बहुत बीहड़ था। जब हमने दूसरा

पहाड़ पार किया तो सात न्यान दिखाई दिये । वे सब छोटे थे और मेरे बायें हाथ की उँगलियों में दर्द था । उधर बादल के मारे ठण्ड में ठिठुर भी रहे थे । इससे मैंने उनको मारने से इन्कार कर दिया । जब हम क्यामरला पर पहुँचे तो वर्षा होने लगी और ऊँचाई के मारे ठण्ड बहुत बढ़ गई । यहींपर हमें दो छोटे न्यान फिर दिखाई दिये, जो लगभग दो सौ गज पर होंगे । 'मोख्तालोन ने बहुत कहा, परन्तु मैं टट्टू पर से नहीं उतरा । वे दोनों छोटे थे, परन्तु मोख्तालोन चाहता था कि मार लूं । क्यामरला से उतरकर तीन मील चले होंगे कि एक मैदान मिला, जहाँ पर हमने पड़ाव पर डेरा डाला । यह स्थान भी 'क्यामर' कहलाता है । चारों ओर ऊँचे पहाड़ों से घिरा है । उत्तर और पूर्व की ओर के पहाड़ हिमाच्छादित हैं । इससे यहाँ ठण्डक बहुत है । आज हम केवल आठ मील चले होंगे, परन्तु हमें तीन पहाड़ पार करने पड़े तथा आज के भोटे सुस्त और उनके जानवर जंगली होने के कारण देर बहुत हो गई । कई जगह हमारा सामान याकों ने पटक दिया । उधर बादल और ठण्ड भी बहुत थी । दो जगह न्यान भी दिखाई दिये थे । इससे हमें इस पड़ाव पर न्यान मिलने की बहुत आशा थी । पड़ाव के आस-पास की ऊँची जगहों को दूरबीन से देखते रहे । यहाँ का दृश्य बहुत अच्छा है । कई शिकारियों को यहाँपर अच्छे न्यान मिले हैं । मुझे मोख़्तालोन ने बताया कि यहाँ पर यदि न्यान न मिला तो आगे मिलने की सम्भावना बहुत कम है । यह निश्चय हुआ कि चाहे चार दिन रुकना पड़े, हमें न्यान मारकर ही चलना चाहिए । मैं जबसे फोबरंग से चला हूँ, एक भी दिन अच्छी तरह नहीं सो पाया हूँ । भूख भी बिलकुल नहीं लगती । यही कारण है कि स्वभाव भी बहुत चिड़चिड़ा हो गया है । तम्बाकू तथा सिगरेट भी नहीं रही है । लगभग पन्द्रह दिन हो गये हैं । जंगल में ही पड़ाव करते आ रहे हैं । जी चाहता है कि अब तो किसी बस्ती के पास जाकर ठहरें, ताकि बच्चे तथा मनुष्य तो दिखाई दें । पूछने पर मालूम हुआ कि अगला पड़ाव गया नामक गाँव में है । यह गाँव इस ओर बड़ा माना जाता है । कुलू से लेह (लद्दाख) के मार्ग पर यह बसा हुआ है । यहाँपर एक सराय भी है ।

रात के बारह बजे के लगभग हमारे पड़ाव में कोलाहल होने लगा ।

पन्द्रह-सोलह टट्टू, जिनमें कुछ के गले में घंटियाँ बँधी थीं, न मालूम कहाँ से आ गये और हमारे टट्टुओं से लड़ने और हिनहिनाने लगे। फल यह हुआ कि हमारे याक और टट्टू रस्सी तुड़ाकर भाग गये। टट्टुओं पर लाठी तथा पत्थरों की खूब बौछार करनी पड़ी। तब कहीं इनकी लड़ाई बन्द हुई। इस गड़बड़ में लगभग दो बजे थोड़ी नींद आई।

बुधवार, १६ अगस्त

कई दिनों से यथेष्ट नींद न आने, बराबर निर्जन स्थानों में ठहरने, प्रतिदिन वही भोजन मिलने और भूख न लगने के कारण तबियत बहुत बिगड़ रही थी। स्नान तथा दाढ़ी की कई दिनों से बारी नहीं आई थी। अन्य रातों की अपेक्षा गत रात्रि में बाहर के टट्टू आने के कारण हल्ला-गुल्ला भी बहुत रहा था, यह भी एक कारण था, जिससे रातभर नींद नहीं आई। सवेरा होते कुछ झपकी लगी।

सवेरे उठकर मैंने मोख्तालोन से कहा—"देखो, अब न्यान की शिकार नहीं खेलूँगा। एक मार चुका हूँ, यही काफ़ी है। इसलिए सामान लादकर ग्या चलो।" इतने में उसने तम्बू के परदे उठाये तो देखा कि बादल घिरे हुए हैं, परन्तु वर्षा नहीं है। कैमर-पड़ाव भी काफ़ी ठंडा है। मेरी बात सुनकर मोख्तालोन बोला, "अगर आप यहाँ न्यान नहीं मारेंगे तो आगे कहींपर भी नहीं मिलेंगे। मैं हुज़ूर से ठीक कहता था कि फेरसी न जाना चाहिए। जब आपकी हालत नींद न आने से यहाँपर ऐसी हो गई है तो वहांपर न जाने क्या होता। वहाँ तो हमें भी नींद नहीं आती।" मैंने क्रुद्ध होकर कहा, "जो हो चुका, वह हो चुका। तुम बार-बार फेरसी का नाम क्यों लेते हो? अब तो वह सवाल ही नहीं, लेकिन मैं यह बता देना चाहता हूँ कि जो मेरी इच्छा होगी वही तुम्हें करना होगा और मेरी इच्छा यह है कि अभी सामान लादकर ग्या चलो।" मोख्तालोन और हबीबा एक-दूसरे से कह रहे थे कि देखा, क्या हालत हो गई है? इससे मुझे और भी क्रोध आया। बोला, "सुना नहीं, मैंने क्या कहा?" इसपर वे बोले कि बहुत अच्छा, आज ग्या चलेंगे। इधर मैं चाय पी रहा था, उधर उन लोगों की सलाह हो रही थी। कुछ ही देर में मोख्तालोन पास आकर बैठ गया और बोला, "रात के पानी से तम्बू और सामान गीला होकर भारी

हो गया है। साथ ही अभी खाना भी तैयार नहीं हुआ है। यह सब ग्यारह बजे तक ठीक हो सकेगा। भोटे बताते हैं कि पास में न्यान अवश्य मिल जायंगे।" इसपर उसने मुझे दक्षिण-पश्चिम की उपत्यका की ओर संकेत कर कहा, "हुजूर, वह जो गल है, वहां टट्टू छोड़कर उसके पास के पत्थर तक पैदल चढ़कर अगर दूरबीन से देखेंगे तो पश्चिम की तरफ काफी लम्बा मैदान दिखाई देगा। वहां दोपहर के समय उरेगाँ लेते (धूप में बैठे) हुए न्यान जरूर मिलेंगे। उधर चरने के लिए घास भी अच्छी है और इन भोटों ने बकरी चराते हुए न्यान देखे हैं। जबतक हम वहाँ से लौटेंगे तबतक तम्बू भी सूख जायंगे और खाना भी तैयार हो जायगा। यहाँ से ग्या बारह मील है और बराबर उतार है तीन-चार घण्टे लगेंगे।"

चाय पीने से कुछ शान्ति आ गई थी। मैंने सोचा कि अन्तिम बार भाग्य-परीक्षा करने में हानि ही क्या है। एक शर्त पर मैं राजी हो गया कि हम चाहे चार बजे ही लौटें, परन्तु चलकर रात ग्या में ही ठहरेंगे। इसपर भोटों को कहा गया कि वे सामान इत्यादि कसकर एक बजे से तैयार रहें। साहब बारह बजे लौटकर भोजन करते ही चल देंगे। जब मुझे विश्वास हो गया कि सब ठीक है तो कपड़े पहनकर तैयार हो गया। लगभग आठ बजे दो टट्टू और दो भोटों को लेकर मैं और मोख्ताजोन उक्त गल की ओर चढ़ने लगे। हमलोग जब गलमुख के पास पहुँचे तब ग्यारह बजे होंगे। चढ़ाई के कारण घोड़े और दोनों भोटे बहुत थक गये थे। विश्राम करने के लिए टट्टू से उतरकर पत्थरों पर बैठ गये। प्रकृति बिलकुल शान्त थी। गलमुख के भीतर बर्फ के गलकर पड़ने की टपटप तथा एक छोटी-सी धारा के कलकल के अतिरिक्त कोई भी आहट नहीं थी। सब अपने-अपने ध्यान में मस्त थे। मैं भी अपने जीवन का सिंहावलोकन कर रहा था। इतने में मोख्तालोन के यह कहने पर कि दोपहर होने को आ रहा है, चला जाय, ध्यान भंग हुआ। यह पहले ही तय हो गया था कि यहाँ से पैदल ही सौ फुट चढ़कर दूसरी ओर के मैदान को देखा जाय। इतनी ऊंचाई पर सौ फुट चढ़ना भी कठिन था। कई जगह विश्राम करने पर ऊपर पहुँचे और एक चट्टान की आड़ में दम लेने के

लिए बैठ गये। दोनों टट्टू हमसे कुछ नीचे रोक दिये थे। जब श्वांस कुछ ठीक हुआ तो धीरे से ऊपर उठकर दूरबीन से देखा। पश्चिम की ओर लगभग एक हज़ार गज़ की दूरी पर बारह-तेरह न्यान बैठे थे। सब एक-से थे। छोटे-से-छोटा भी छत्तीस इंच तथा बड़ा चालीस इंच के सींगों-वाला दिखाई देता था। अधिकांश करवट के बल लेटे हुए टाँगें पसारे धूप ले रहे थे। यहाँ से जब उनके आसपास की भूमि को इस दृष्टि से देखा कि कहाँ से हम लोग पास पहुँच सकते हैं तो सिवाय एक बड़े पत्थर के, जो इनसे उत्तर-पूर्व तथा हमसे उत्तर की ओर था, कोई भी ऐसी आड़ नहीं थी, जहाँ हम इनकी निगाह बचाकर पहुँच सकते थे। चारों ओर मैदान था। उस पत्थर से भी वे तीन सौ गज दूर होंगे। टट्टू पर बैठकर एक मील का चक्कर काटकर सौ गज पर टट्टू छोड़कर मैं और मोख्तालोन उस चट्टान के पास पहुँच गये। हवा भी न्यानों से हमारी ओर बह रही थी। मोख्तालोन अपने खुदा से बार-बार प्रार्थना कर रहा था कि कुछ देर और ऐसी हवा बहने दे। पहाड़ों पर हवा अचानक दिशा बदल देती है। चट्टान के पास दम लेकर जब देखा तो न्यान पूर्ववत् विश्राम कर रहे थे। एक तो ऊँचाई, दूसरे दूरबीन के कारण तीन सौ गज पर होने पर भी बिल्कुल समीप मालूम देते थे। जब दोनों ने दूरबीन से देखकर यह तय कर लिया कि बाँई ओर से अमुक नम्बरवाला न्यान सबसे बड़ा है तो मैंने पत्थर पर एक कपड़ा रखकर उसपर धीरे-से बन्दूक रक्खी और अच्छा निशाना साधकर फैर कर दिया। आहट के होते ही सब न्यान उछलकर भाग निकले। जिसपर मैंने फैर किया था वह तो उत्तर की ओर धीरे-धीरे नीचे चला और शेष दक्षिण की ओर के पहाड़ पर छलाँगें मारते हुए भागे। मैं देख चुका था कि गोली न्यान के कन्धे के पीछे बीचोंबीच लगी है। यही कारण था कि वह लस्त हो गया था। यदि मर्मस्थल पर लगी होती तो वहीं मर जाता। मोख्तालोन देखकर बोला, "हुज़ूर, न्यान अभी बैठा जाता है। अब फैर करने की दरकार नहीं। अगर आप चाहें तो पहाड़ की तरफ भागनेवालों में तकदीर आजमाइश कीजिये।" इतने में वे न्यान हमसे सात सौ-आठसौ गज की दूरी पर खड़े हो गये। देखकर मोख्तालोन ने फैर करने का अनुरोध किया, परन्तु मैंने

यह कहकर कि अन्तर बहुत है और कारतूस कम हैं, इन्कार कर दिया। घायल न्यान पहले तो दुड़की से जा रहा था, अब धीरे-धीरे चलने लगा और हमें विश्वास हो गया कि अब थोड़ी दूर जाकर बैठता ही है। हम जहाँपर बैठे थे, नीचे की सब उपत्यका दिखाई दे रही थी, इससे उसके ओझल हो जाने का भय भी नहीं था। हमारा कैम्प भी दिखाई दे रहा था। सब नौकर तथा भोटे इधर-के-उधर भागकर ऊँचाई पर चढ़-कर देखने का प्रयत्न कर रहे थे। मैंने भी रूमाल हिलाकर संकेत किया, जिसे वे समझ गये और उन्होंने भी साफ़े फेंककर उत्तर दिया। मैंने अपनी बन्दूक मोख्तालोन को दी और उससे दूरबीन लेकर न्यान को देखते हुए कहा, "गोली मर्मस्थल पर नहीं लगी है। फिर भी इतनी खराब भी नहीं है कि भाग जाय। बीचों-बीच है, दूर नहीं जायगा। देखो, वह रुक रहा है। बस, अब बैठने ही वाला है। ठीक कह रहा हूँ न?" जब कोई उत्तर नहीं पाया तो दूरबीन हटाकर मोख्तालोन को देखने के लिए पीछे फिरा। देखता क्या हूँ कि वह उत्तर की ओर सपाटे से भागा जा रहा है। चिल्लाकर उसे रोक भी नहीं सकता था, अन्यथा न्यान सुनकर बैठने के बजाय भागना प्रारम्भ कर देता। करता भी तो क्या? विवश था। मन-ही-मन क्रुद्ध हो रहा था कि अच्छे मूर्ख से पाला पड़ा। इससे कह दिया था कि जब न्यान बैठ जायगा तब तरकीब से पास पहुँचकर दूसरा फ़ैर कर देंगे। इस मूर्ख को इतना भी ज्ञान नहीं है। मोख्तालोन के दौड़ने की आहट पाकर न्यान भी थोड़ा तेज हो गया और उत्तर की ओर नीचे न उतरकर कैम्प की ओर चला। मोख्तालोन भी यह देखकर उसका रास्ता रोकने के लिए तेज दौड़ने लगा। मुझसे न रहा गया। मैं भी मोख्तालोन की ओर बढ़ा और मेरे पीछे घोड़ेवाले भोटे हो लिये। हवा मेरी ओर से कैम्प की ओर बह रही थी। मैं जोर से चिल्लाकर उसे रोक रहा था और गालियाँ दे रहा था, परन्तु वह न रुका। हमारे बीच का अन्तर बढ़ता जा रहा था। कैम्पवालों ने हमें जब उनकी ओर बढ़ते देखा तो समझ गये कि न्यान घायल होकर उनकी ओर आ रहा है। जितने टट्टू पर चढ़ सके वे चढ़कर तथा शेष पैदल भागकर अपनी बुद्धि के अनुसार रोकने के लिए बिखर गये। उत्तर

की ओर ग्या के मार्गवाले एक भोटे ने उसे आते देखकर हल्ला किया। फल यह हुआ कि न्यान मुड़कर दक्षिण की उपत्यका की ओर, जहाँ से हम चढ़े थे, बढ़ गया। हल्ले से अब वह धीरे-धीरे दुड़की लगा रहा था। उसे अपनी ओर आते देखकर मोख्तालोन एक पत्थर की आड़ में बैठ गया। मुझे भी सन्तोष हुआ कि चलो, ईश्वर ने बात बना दी। मै भी रुक गया। दम काफ़ी फूल चुका था। कैम्प के लोग हमें देख ही चुके थे। अतः उन्होंने हबीबा के नेतृत्व में न्यान मेरी ओर भगाना चाहा और कैम्प की ओर से खूब हल्ला किया, परन्तु न्यान सीधा मोख्तालोन की ओर बढ़ता गया। जब वह उससे पचास गज़ (मुझे तो ऊपर से ऐसा प्रतीत होता था, मानों पाँच ही गज़ है) पर होगा कि उसने फ़ैर किया, परन्तु गोली ने उससे कहीं दूर धूल उड़ाई। इसके पश्चात् न्यान मेरी दृष्टि से ओझल हो गया। मोख्तालोन ने उसी स्थान से दो फ़ैर और किये और वह भी दौड़कर ओझल हो गया। मैं समझ गया कि मूर्ख ने तीनों फ़ैर बचा दिये। मैंने टट्टूवाले दोनों भोटों से कहा कि वे दौड़कर मोख्तालोन को रोकें और कहें कि फ़ैर न करे। मुझसे जितना बना मैं भी चिल्लाया कि फ़ैर मत कर और उसी ओर बढ़ा। जब बिल्कुल नीचे पहुंचा तो हबीबा तथा कैम्प के भोटे मिले और लगे अपना-अपना वृत्तान्त सुनाने। मैं समझ गया कि गोली न्यान के बीचों-बीच लगी है और काफ़ी खून गिर रहा है, जो उन लोगों ने नाले में पत्थरों पर पड़ा हुआ मुझे बताया। एक तो दम फूल रहा था, दूसरे ऊँचाई के कारण सिर मे दर्द था। इससे विश्राम करने को बैठ गया और हबीबा से कहा से कि वह तुरन्त दौड़ जाय और मोख्तालोन से कह दे कि न्यान को निगाह में रक्खे, फ़ैर न करे। हबीबा को गये पाँच मिनट हुए होंगे कि फिर बन्दूक चली। सुनते ही मैं उठ बैठा और दक्षिण की ओर, जिधर से आहट आई थी, चल दिया। फिर एक फ़ैर हुआ। इस प्रकार पाँच-पांच मिनट में चार फ़ैर हुए। तबतक मै टट्टू पर काफी ऊपर चढ़ चुका था। मन-ही-मन कोसता जा रहा था कि इतने में एक भोटे ने ऊपर की ओर संकेत कर बताया कि न्यान पहाड़ पार कर गया, परन्तु मोख्तालोन नहीं दीखता। अब आगे

चढ़ना व्यर्थ था। अतः उसकी प्रतीक्षा में नाले के पास बैठ गये। कुछ ही देर में मोख्तालोन लौटा। उसने पास पहुँचकर मेरे पैरों में साफा रख दिया और बोला, "हुजूर, मुझे बख्श दीजिये। आपके रोकने पर भी मैं नहीं माना। यह सब इस उम्मीद में किया कि दौड़कर पास पहुँच जाऊँगा और न्यान को मार लूँगा। यह सब इस धरती का नतीजा है। यहाँपर किसीका दिमाग़ ठीक नहीं रहता। घायल जानवर को बैठ जाने देना चाहिए। तब उसे ढूँककर मारना चाहिए। यह तो मामूली शिकारी भी जानता है। मैंने बिल्कुल अनाड़ीपन किया।"

मैंने कहा, "जब तुम्हारी यह हालत है तो मेरा चिढ़ना ठीक ही है। तुम तो प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट के लड़के के साथ जायंट पंडा की शिकार के लिए चीन तक गये हो। तुम्हारा ऐसा व्यहार देखकर अचरज होता है। खैर, जो हुआ सो ठीक, अब कैम्प पर चलो। वहाँ जबतक खाना खायंगे तबतक सामान लादकर तैयार हो जायंगे।" मोख्तालोन बोला, "अब मुझे शर्मिन्दा न कीजिये। हमें आज यहीं रहना चाहिए। मैं दो भोटे लेकर न्यान के पीछे जाता हूँ। वह पड़ाव के पार नहीं जा सकता। शाम तक लेकर आ जाऊँगा।"

सुनकर एक भोटा बोला कि न्यान तो बर्फ पर होता हुआ पहाड़ पार कर गया है। मोख्तालोन ने बहुत चाहा कि वह यह कह दे कि न्यान पहाड़ के ऊपर नहीं पहुँचा, परन्तु वह कब माननेवाला था। उसने कहा कि उसने अपनी आँखों देखा है। जब उसका पीछा करने का विचार होने लगा तो उस भोटे ने जीभ बाहर निकालकर हाँफना आरम्भ किया और सिर पकड़कर यह बताया कि इतनी ऊँचाई पर दम फूलेगा और सिर फटने लगेगा। बेचारे का हिन्दी का ज्ञान सीमित था। उसने भोटिया भाषा में बताया कि अब समय नहीं रहा। कल सवेरे क्यामर के दर्रे से पहाड़ पारकर पीछे की ओर से पहुँचा जा सकता है। इसमें दो दिन, अर्थात् एक जाने में और एक आने में, लगेंगे। मैं अब दो दिन और ठहरने के लिए राजी न था। कैम्प पर लौटकर भोजन करने के पश्चात् लगभग चार बजे हम लोग ग्या के लिए चल दिये। मोख्तालोन तथा दूसरे नौकर बहुत समझाते रहे कि दो दिन ठहरकर न्यान को ढुंढ़वा लेना चाहिए,

परन्तु मैंने एक न मानी ।

बादल घिर आये थे तथा थोड़ी बूँदें भी गिर रही थीं । ग्या से दो मील इधर एक बड़ा नाला मिलता है । लगभग आठ बजे जब सन्ध्या हो रही थी, हमलोग ग्या पहुँचे । कई दिनों के पश्चात् आज बस्ती देखने को मिली । वर्षा के कारण ठंड भी अधिक थी । जगह-जगह बच्चे खेल रहे थे और स्त्री-पुरुष या तो भेड़ के चमड़ों को दोनों हाथों से मसल रहे थे या तकली से ऊन कात रहे थे । यहाँ के रहनेवाले चमड़े को पकाना नहीं जानते । जब चमड़ा सूख जाता है तो उसे मसल-मसलकर कपड़े जैसा कर लेते हैं । इस कार्य में उन्हें दस-बारह दिन लग जाते होंगे ।

दिनभर के थके तथा निराश थे । अतः अन्य दिनों के अनुसार आज पड़ाव पर न जाकर गाँव के बीच की सराय में ही ठहर गये । आज पहला दिन था कि हम गंदी सराय में ठहरे । यदि वर्षा न होती और हम-लोग थके न होते तो कदापि न ठहरते ।

एक कमरे के कोने में मेरा टूटदार पलंग लगा दिया गया और दूसरी ओर सामान तथा नौकर ठहर गये । नीचे भेड़-बकरियों का पेशाब और लेंड़ी बिछी थी । मुझे चुशल में रमजानखाँ ने बताया था कि ग्या में थिरिङ्ग नाम का भोटा रहता है, जो उस प्रदेश को खूब जानता है । यदि उसे साथ ले लिया तो वह मार्सलंग (हिमिस) के मार्ग में शंग नाले पर अच्छे भरल बता देगा । मैंने उसे बुला भेजा । थिरिङ्ग भली प्रकार अपने विचारों को हिन्दी में व्यक्त कर लेता था । फोबरंग के कौंचोक के बाद मुझे यह दूसरा भोटा मिला, जिससे बात करने में आनन्द आया । दूसरों से तो मोख्तालोन के द्वारा ही बात होती थी । थिरिङ्ग कई शिका-रियों को जानता था । उसका रमजानखाँ से भी अच्छा परिचय था । मोख्तालोन को देखकर बोला कि यह लद्दाख की शिकार के लिए कम आता है, जो उसे बुरा लगा । बातचीत करने पर मैंने उसे बताया कि मुझे २० तारीख की सन्ध्या तक मार्सलंग पहुंच जाना चाहिए और उसके पहले अगर वह शिकार खिला दे तो अच्छा होगा । उसने कहा कि कल ग्या से चार मील चलकर पड़ाव किया जाय । वहीं से उसके पास शिकार खेली जायगी तथा दूसरे दिन सामान को मीरू भेजकर हम पहाड़ चढ़

जायँगे और दिनभर शिकार खेलते हुए शाम तक मीरू पहुँचेंगे। मैं इस प्रस्ताव से सहमत हो गया और मोखालोग से तदनुसार प्रबन्ध करने को कहकर सो गया। उन लोगों ने खाने के लिए बहुत आग्रह किया, परन्तु थकावट और नींद के कारण मैंने उनकी एक न मानी। लेटते ही दस मिनट में नींद आ गई।

: २३ :
भरलों की शिकार

गुरुवार, १७ अगस्त

लगभग एक महीने के पश्चात् रात को अच्छी नींद आई। सवेरे पाँच बजे उठकर देखा कि चारों ओर कूड़ा पड़ा था। रातभर वर्षा होने के कारण ठंड भी बहुत थी। नौकरों के बहुत कहने पर दाढ़ी तो बना डाली, परन्तु स्नान के लिए राजी न हुआ। यह कहकर टाल दिया कि सराय में गंदगी बहुत है। जब उन लोगों ने चौक में तम्बू लगाकर सूचना दी कि गरम पानी तैयार है तो भी ठंड के मारे साहस नहीं हुआ। थिरिङ्ग से शिकार के विषय में बातचीत होती रही। नौकर भोजन तैयार करने में लगे थे और मैं थिरिङ्ग से जंगली जानवरों के विषय में पूछ-ताछ कर रहा था। उसने बताया कि लेह के रास्ते पर दो मील चलने के बाद लाथो नाला मिलेगा। उसी के सहारे पच्छिम की तरफ तीन-चार मील चलने पर पड़ाव किया जायगा और आज ही यदि बादल न रहे तो भरल की शिकार हो जायगी। ग्या काफी बड़ा गाँव है। बड़े गाँव से मेरा अभिप्राय लद्दाख के बड़े गाँव से है। यह कुलू से लेह के मार्ग पर है। अतः इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। मेरा अनुमान है कि यहाँपर लगभग दो सौ परिवार रहते होंगे। अंतरप्रान्तीय मार्ग होने के कारण रास्ता अच्छा है और नाले तथा नदियों पर लकड़ी के पुल बने हैं। यही मार्ग मीरू होता हुआ मार्सलंग ग्राम के पास सिंधु को पार करता है जहाँ लकड़ी का पुल बना है। इस स्थान से ऊपर सिंधु में कहीं भी पुल नहीं है।

जबतक हमने भोजन किया तबतक हमारे रसोई बनानेवाले गफारा तथा नौकर हबीबा ने एक-एक पिल्ला सवा-सवा रुपये में खरीद लिया। इस प्रकार अब हमारे पास चार कुत्ते हो गये। दस बजे हमने भोजन किया और बादल खुलने पर हमलोग थिरिङ्ग के नेतृत्व में चल दिये। जबतक हमलोग लेह के मार्ग पर चल रहे थे हमें कई जगह व्यापारी तथा देहाती आते-जाते मिले। ग्या से सिंधु तक बराबर उतार है। उधर कुलू की ओर चढ़ाई है और कोई गाँव भी नहीं है। दो मील चलकर हमने मार्ग छोड़ दिया और बाँई ओर लाथो नाला में घुस गये। यहाँ कोई मार्ग न होने के कारण हम बड़ी कठिनाई से चल रहे थे। यह थिरिङ्ग का ही काम था जो घुमा-फिराकर हमें उक्त पड़ाव पर ले गया। इस नाले में पत्थर बहुत हैं। हम नाले में चार मील चले होंगे, परन्तु पहुँचने में हमें तीन बज गये। पड़ाव क्या है, मजाक है। तीन ओर ऊँची चट्टानें हैं, जिससे ठंडी हवा से बचत हो सके। इस जगह कठिनाई से दो तम्बू लग सकते हैं। जबतक तम्बू लगाकर सामान लगाया जा रहा था, तबतक मैं और मोक्तालोन थिरिङ्ग के आदेशानुसार ऊँचे पत्थरों पर चढ़ गये और दूरबीन से आस-पास के पहाड़ देखने लगे। इस नाले की उपत्यका बहुत तंग है। अतः बहुत दूरतक नहीं दिखाई देता। फिर भी हमें तीन-चार जगह भरल चरते हुए दिखाई दिये। बादल घिर आये थे और बर्फ की वर्षा हो रही थी। तीन बजे से छह बजे तक हम लोग तीन बार बन्दूक लेकर निकले, परन्तु कुछ ही दूर जाकर वर्षा तथा ठंड के कारण लौट आये। हमें भय यह था कि कहीं बड़े-बड़े ओले न गिर जायँ। अन्त में छः बजे के बाद हमने निश्चय किया कि कुछ भी हो, शिकार खेली जाय। उत्तर की ओर एक मील गये होंगे कि बड़े जोर की आँधी आई और बादल गरजने लगे। पुनः भागकर डेरे पर आना पड़ा और हताश होकर आज के लिए शिकार स्थगित करनी पड़ी। कई जगह भरल देखकर मुझे पूरा विश्वास होता था कि कल शिकार अवश्य होगी। थिरिङ्ग ने कहा कि दो दिन यदि इसी जगह पड़ाव डाला जाय तो भरल की शिकार अच्छी हो सकती है, परन्तु मैंने उससे कह दिया कि बीस तारीख की सन्ध्या के समय मार्सेलंग पहुँचना अनिवार्य है। कारण, वहाँ-

पर मेरे मित्र भी उसी दिन पहुंचेंगे। अंत में यह तय हुआ कि सवेरे सामान तो मीरू भेजा जाय और हमलोग पहाड़ पर चढ़कर भरल की शिकार खेलते हुए शाम तक मीरू पहुँच जायँ। यह स्थान काफी ऊँचा है। वर्षा के कारण ठंड काफी है। बादल की गड़गड़ाहट और चार कुत्तों के भोंकने के कारण रातभर नींद नहीं आई।

शुक्रवार, १८ अगस्त

आज सवेरे सात बजे सामान को मीरू भेजा और हम थिरिङ्ग के नेतृत्व में उत्तर-पश्चिम की ओर पहाड़ पर चढ़ने लगे। थिरिङ्ग हमें बता चुका था कि उधर बहुत भरल मिलेंगे। नौ बजे के लगभग जब हम पहाड़ की चोटी पर पहुँचनेवाले थे तो बड़े जोर से एक पक्षी के बोलने की आहट मिली। हमसे सौ गज की दूरी पर मुर्गे के बराबर एक पक्षी दिखाई दिया। पूछने पर मालूम हुआ कि रामचकोर है। इसे अंग्रेजी में 'स्नो कॉक' (Snow Cock) अर्थात् बर्फ़ानी मुर्ग़ कहते हैं। काश्मीर तथा आस्तोर की तरफ जहाँ शिकारी 'आइबेक्स' (जिसे काश्मीरी केल कहते हैं) मारने जाते हैं तो रामचकोर बहुत मिलते हैं। यह प्रायः चिल्लाकर केल को भगा देते हैं। रामचकोर को देखने का मेरा यह पहला अवसर था। जब हम पहाड़ की चोटी पर, जो लगभग सोलह या सत्रह हजार फुट ऊँची होगी, पहुँचे तो हमने वहाँ पैमाइश का चौतरा पाया, जिसपर सर्वेवालों के नम्बर पड़े थे। इसी चौतरे के पास बैठकर आस-पास के पहाड़ों को दूरबीन से देखते रहे। बड़ा अच्छा दृश्य था। हमसे आस-पास के पहाड़ प्रायः नीचे थे। अतः कई चोटियाँ दिखाई दे रही थीं और कहीं-कहीं बादल भी उनसे लिपटे हुए थे। हमसे पश्चिम की ओर एक बड़ा खड्ड था और उससे पश्चिम में अच्छा मैदान दिखाई दे रहा था। सूर्य पीठ पर था इसलिए दृश्य साफ़ दीख पड़ते थे। थिरिङ्ग का कहना था कि हमारे आस-पास पश्चिम की ओर के मैदान में भरल दोपहर के वक्त आ जाते हैं और चार बजे तक आराम करते हैं। दूरबीन मोख्तालोन के पास थी। कुछ ही देर में उक्त मैदान की ओर संकेतकर कहा कि कैसा उत्तम भरलों का झुण्ड हमारी ओर आ रहा है। यदि खड्ड पारकर हमारे नीचे आ गया तो मारना सरल है। बारी-बारी से मैंने

और थिरिङ्ग ने दूरबीन से देखा। वे हमलोगों की ओर चरते-चरते चले आ रहे थे। वास्तव में वे सब बड़े थे। इनमें छोटा २४ इंच से कम न होगा और बड़ा ३० इंच से ऊपर भी हो तो आश्चर्य नहीं। ग्यारह-बारह होंगे। हिमालय में मादाएँ और नर उनके खास समय, गर्भाधान, के अतिरिक्त पृथक्-पृथक् रहते हैं। नरों में बड़े-बड़े पृथक् और नये-नये एक साथ रहते हैं। मादा तथा बच्चे इकट्ठे रहते हैं।

हम लोग गृद्ध-दृष्टि से इस झुँड को देख ही रहे थे कि इतने में दस बजे के लगभग चार मादा तथा दो बच्चे हमारे ठीक नीचे पूर्व की ओर आ गये और चरते-चरते बैठ गये। इसी प्रकार एक झुण्ड जो सात-आठका होगा, उत्तर की ओर से आया और चरते-चरते हमसे दो सौ गज पर बैठ गया। इनमें मारने लायक एक भी भरल नहीं था। सब बीस इंच से कम होंगे। एक झुँड लगभग बीस का हमसे उत्तर-पूर्व की ओर से आया और चरते-चरते बैठ गया। इसमें दो-तीन भरल २५ इंच से बड़े मालूम देते थे। ग्यारह बजे तक हमें आशा रही कि पश्चिम की ओर का बड़े भरलों का झुंड खड्ड पारकर हमारे नीचे आयगा। वह खड्ड में उतर गया था, परन्तु बाहर नहीं निकला। थिरिङ्ग कह रहा था कि खड्ड में छाया है। इसलिए वह बाहर जरूर आयगा। खड्ड उत्तर-दक्षिण की ओर था। इसका सिरा हमसे उत्तर-पश्चिम की ओर था। जब बैठे-बैठे निराश हो गये तो यह सलाह ठहरी कि खड्ड पर पहुँचकर दूरबीन से इसकी छानबीन की जाय। दो सलाह थीं। एक तो सीधे पश्चिम की ओर उतरकर दोनों ओर देखा जाय और दूसरी सलाह मोख्तालोन की यह थी कि सिरे पर पहुँचकर देखा जाय ताकि दोनों पथ दिखाई दें। हमने मोख्तालोन की सलाह मानी। जब हम आधा मील चलकर खड्ड के सिरे पर पहुँचे तो देखते क्या हैं कि जहाँ से उठकर आये थे वहींपर सब बड़े भरल खड़े हैं। हम पन्द्रह मिनिट और ठहर जाते तो कहना ही क्या था, परन्तु यदि हम सीधे पश्चिम की ओर उतरते तो उनसे अवश्य मुठभेड़ हो जाती। सिवाय अपने आपको कोसने के हम कर ही क्या सकते थे? उन सबने हमको देख लिया था और कतार बाँधकर 'जैसे फौज के सिपाही खड़े हों' हमें देख रहे थे। इनमें एक गोल सींग-

वाला भरल बड़ा ही विचित्र था। मोख्तालोन ने उत्तेजित होकर कहा, "हुजूर, इतने बड़े और नायाब भरल मैंने कभी नहीं देखे। एक फ़ैर करके तकदीर क्यों नहीं आजमाते ?" मैंने उसकी सलाह नहीं मानी। कारण, मेरे पास चालीस कारतूस रह गये थे और भरल हमसे आठ सौ गज से कम न होंगे। जब वे भाग गये तो हमने लगभग बीस भरलवाले झुण्ड को ढूँक देखने का विचार किया। हम उन्हें ऊपर से देख चुके थे। अतः बड़ी आसानी से एक चट्टान के पास पहुंच गये, जहाँ से भरल लगभग दो सौ गज होंगे। खूब दम साधकर इनमें से सबसे बड़े को लक्ष्यकर फैर किया, परन्तु गोली चूक कई। धड़ाके की गूँज पहाड़ी में चारों ओर से आई। भरलों को यह पता न लगा कि बन्दूक कहाँ से चली है। वे घबरा कर सीधे हमारी ओर भागे। जब पचास गज रहे होंगे, तब मैंने एक बड़े को छाँटकर गोली चलाई और उसे वहीं गिरा लिया। इससे वे और भी पास अर्थात् चालीस गज पर आगये। दूसरे फैर में एक और गिरा लिया। मोख्तालोन के कहने पर एक और फैर किया, परन्तु वह जिसमें लगना था, न लगकर छोटे में लगा और वह भी गिर पड़ा। थिरिङ्ग तथा अन्य सब 'वाह वाह' करने लगे। भोटे भरलों की ओर उठाने को बढ़े। जब भरल से मोख्तालोन दस गज होगा तो उसे देखकर वह उठ बैठा और चलने लगा। मोख्तालोन उसे पकड़ने को लपका, परन्तु वह भी गिरता पड़ता एक फर्लाङ्ग दूर खड्ड में उतर ही गया। जब मैं मोख्तालोन के पास पहुँचा, जगह-जगह खून पड़ा देखा। दोनों भरल मर चुके थे। अतः टट्टू के पास एक भोटा को छोड़कर मैं, मोख्तालोन तथा थिरिङ्ग खून को देखते हुए खड्ड में उतर गये, जो बहुत गहरा था। हमें कुछ दूर तो खून तथा भरल के खांद दिखाई दिये, परन्तु फिर कुछ न मिला। देर बहुत हो गई थी और हम थक भी गये थे। आशा छोड़कर वापस टट्टुओं के पास लौट आये। फोटो लेने के पश्चात् हताश हो, मीरू की ओर बढ़े। थिरिङ्ग बराबर कहता जाता था कि उसे जाने दिया जाय तो वह अवश्य ढूंढ लायगा, चाहे दो दिन लग जायें। मेरे पास कल का एक ही दिन था और कल मुझे मीरू से पूर्व में शापू की शिकार खेलनी थी। भरल तो सब जगह मिलने की सम्भावना थी, परन्तु शापू सिवाय लद्दाख के और जगह

नहीं मिलते। मैंने टट्टूवाले दोनों भोटों को घायल भरल को ढूँढ़ने भेज दिया और उनसे कहा कि सन्ध्या तक ढूँढ़ लाओगे तो इनाम दूँगा। दोनों मरे हुए भरलों को एक टट्टू पर लादकर मैं और मोल्लालोन थिरिङ्ग के पीछे-पीछे मीरू की ओर चल दिये। कुछ ही चलने पर हमें पहाड़ उतरना पड़ा और हम 'कुलू' लेह के मार्ग पर पहुँच गये। यहाँ से तीन मील चलकर मीरू पहुँचे। यह जगह नीची होने के कारण गरम थी।

: २४ :

शापू हाथ से निकल गये

शनिवार, १६ अगस्त

तीन-चार भोटों को कलवाले भरल को देखने के लिए फिर भेजा। सवेरे कलवाले दोनों भोटों ने कहा कि वह भरल या उसके खून के निशान तक नहीं मिले। आज चाय के समय मैंने अपने नौकरों से कह दिया था कि रात को कुत्तों ने भौंककर नींद न आने दी तो बंदूक मार दूँगा। इस पर उसने कहा कि आज वे कुत्ते को इतनी दूर बाँधेंगे, जहां से भौंकने की आहट भी न आयगी। सात बजे के लगभग हम थिरिङ्ग के नेतृत्व में गाँव से पूर्व की ओर के नाले के सहारे चल दिये। गाँव के पास उपत्यका चौड़ी थी, परन्तु ज्यों-ज्यों ऊपर को जा रहे थे, सकरी होती जाती थी। जब हम चार मील चले होंगे तो दो जगह बहुत ऊँचाई पर शापू दिखाई दिये। एक झुण्ड में बीस तथा दूसरे में सात थे। परन्तु सब मादा थीं। दो मील और चलने पर हमने दाहिनी ओर सात जानवर बैठे देखे। हम समझे कि इनमें जो चार बड़े हैं वे नर तथा तीन छोटे मादा हैं और सब शापू हैं। वे एक छोटे-से नाले के पास बैठे थे। अतः ढूँकने का अच्छा मौका था। धीरे-धीरे सावधानी से ढूँक कर जब हम पास पहुँच गये तो देखा, सातों म्यान थे। चार बड़ी मादा और तीन छोटे बच्चे। हताश होकर वापस टट्टू के पास लौटे और ऊपर की ओर चल दिये। लगभग छ: बजे हम लोग नाले के सिरे पर पहुँचे और वहाँ बैठकर भोजन किया। थिरिङ्ग का कहना था कि अब तो लौटते में शापू मिलेंगे।

अतः एक घण्टा विश्राम कर लौट पड़े। लगभग तीन बजे जब हम वापस आरहे थे तो हमारे दाहिनी ओर अर्थात् उत्तर के पहाड़ पर चार नर शापू बैठे हुए दिखाई दिये। इनके पास ही पनटूटा (छोटा नाला) था, जिसमें बड़ी आसानी से ढूँका जा सकता था, परन्तु पहाड़ ठांटा (करारा) होने के कारण टट्टू नहीं जा सकते थे। शापू हमसे सात-सौ आठ-सौ गज पर होंगे। जब थिरिङ्ग ने कहा कि क्या मैं पैदल पहुँच सकूँगा तो मैंने कहा कि एक साँस में तो नहीं, परन्तु विश्राम लेता हुआ धीरे-धीरे दो घंटे में तो पहुँच ही जाऊँगा। हमने अपने टट्टू रास्ते पर छोड़ दिये और जो पनटूटा शापू के पास से आया था उसी में ढूँक गये और चढ़ना प्रारम्भ कर दिया। ऊँचाई के कारण दम फूलता था। बार-बार विश्राम करना पड़ता था। दो घंटे की चढ़ाई के पश्चात् हमने देखा कि शापू तीन सौ गज रह गये हैं और निश्चिन्त बैठे हैं। पनटूटा गहरा था। अतः हमें पूर्ण आशा थी कि एक घण्टे में हम उनसे पचास गज पर पहुंच जायंगे और एक-दो को अवश्य मार लेंगे। इतने में देखते क्या हैं कि पूर्व की ओर से बकरियाँ चरती हुई चली आ रही हैं। यह देखकर मोख्तालोन उत्तेजित हो गया और लगा गालियां देने। मुझसे कहा कि जल्दी चढ़ चलना चाहिए ताकि बकरियों से पहले हम शापू के पास पहुँच जायें और मार लें। मेरे फेफड़े फटे जा रहे थे। मैंने साफ इन्कार कर दिया। निराश होकर मोख्तालोन थिरिंग से बोला, "यह बकरियोंवाला भी ऐन मौके पर आ गया।" ऐसी जगह सबके दिमाग का पारा चढ़ा रहता है। थिरिंग ने तमककर कहा, "जंगल तुम्हारे और मेरे बाप का नहीं है। उसे क्या मालूम कि हम यहां शिकार खेल रहे हैं।" अब ऊपर चढ़ना व्यर्थ था। कुछ ही देर में जब बकरियां चरते-चरते शापू के पास आ गई तो वे खड़े हो गये और भागकर उत्तर की ओर के पहाड़ पर चढ़ गये। हम भी पनटूटा से निकलकर बाहर आ गये। हमें देखकर बकरीवाला, जो मीरू का था, हमारे पास आ गया। अब छः बजे होंगे, अतः सब-के-सब साथ-साथ मीरू की ओर चल दिये। रात बजे के लगभग हम पड़ाव पर पहुँचे। जो भोटे कलयाला भरल देखने गये थे, वे भी खाली हाथ लौट आये थे। आज लेह से एक भोटा हमारे लिए सिगरेट लेकर आया।

कई दिनों के पश्चात् सिगरेट पीने को मिली। आज कुत्ते गाँव में भेज दिये थे। अतः नींद ठीक आई।

रविवार, २० अगस्त

आज सबेरे सात बजे हम पश्चिम की ओर के पहाड़ पर चढ़ने लगे। जब ऊपर पहुँचे तो सामानवालों को तो शंग नाले की उपत्यका में चलने को कहा और हम ऊपर-ऊपर चले। थिरिंग ने सामानवालों को समझा दिया था कि वे हमें देखते रहें। जब हम दिखाई न दें तो रुक जायँ। जब हम ऊपर से संकेत करें तब चलने लगें। थिरिंग काफी चतुर शिकारी है। इसके प्रबन्ध में मैंने कहीं त्रुटि नहीं पाई। जैसा कहा गया था उसी प्रकार सामानवाले भोटे करते चले गये, मानो सेना के सिपाही हों। आज के पहाड़ बड़े ठांटे हैं। टट्टू पर बराबर यही डर लगा रहता था कि न जाने कब लुढ़ककर खड में पहुंच जायँ। सबसे पहले हमें पच्चीस-तीस भरल दिखाई दिये। ढूंककर पास पहुँचे तो मालूम हुआ कि सब मादा हैं। हम बराबर उत्तर की ओर बढ़ते जा रहे थे। पांच बजे के लगभग छः-सात भरल फिर दिखाई दिये, परन्तु पास पहुँचने पर वे भी मादा निकलीं। वैसे दूरी पर इधर-उधर भागते हुए कई भरल के झुण्ड दिखाई दिये। यदि कोई शिकारी यहाँपर तीन-चार दिन का पड़ाव करे तो भरल की शिकार अच्छी हो सकती है। जब थोड़ा-सा दिन रहा तो हमलोग पहाड़ से नीचे उतर कर सामानवालों के पास पहुंच गये। मैंने थिरिंग को उसके प्रबन्ध के लिए धन्यवाद दिया। जब सब इकट्ठे होकर मार्सलंग की ओर बढ़े तब दिन डूब चुका था। ओझो, जो एक छोटा-सा गाँव है और मार्सलंग से चार मील है, पहुँचते-पहुँचते दस बज गये और काफी अँधेरा हो गया। आज परिश्रम के मारे हम तथा जानवर, सभी बहुत थक गये थे। अतः यहीं पर नाले के सहारे पड़ाव डाला। यह जगह काफी हरी और नीची है। रात को पड़ते ही नींद आ गई।

सोमवार, २१ अगस्त

सबेरे उठकर थिरिंग तथा म्या के टट्टूवाले भोटों को रुपया चुकाकर बिदा किया और ओझो के टट्टू लेकर सात बजे चले। दो मील

चलने पर हमें दाऊसाहब मिले। वे हमें देखने इधर चढ़े थे। कहने लगे, "कल यानी २० तारीख को मार्सलंग में मिलना था। आप न आये तो मैं शंग नाले में आपको देखने आया हूँ। इधर भरल की भी सुनी है।" जब मैंने बताया कि इधर मादा ज्यादा हैं तो वे भी मेरे साथ मार्सलंग लौट पड़े। हमें ऐसा मालूम हो रहा था मानो बरसों बाद मिले हों। दाऊसाहब ने बताया कि उन्होंने एक आयबेक्स (केल) ४० इंच का, एक शापू ३८ इंच का तथा एक न्यान (अमन) २७ इंच का मारा है। मार्सलंग में उक्त तीनों के सींग देखे। मैंने भी अपना पूरा वृत्तान्त कह सुनाया कि किस प्रकार दो अच्छे अमन तथा एक अच्छा भरल गिर पड़े और उठकर भाग गये। इसपर वे बोले, "आपको इनाम की कह देना था, वे ढूँढ़ लाते।" मैंने बताया कि इस प्रकार प्रायः धोखा होता है। इधरवाले मरे जानवर को बर्फ में ढाँक रखते हैं और जब किसी शिकारी का जानवर घायल होता है तो उक्त मरे जानवर का सिर लाकर दे देते हैं और इनाम ले लेते हैं। अतः जब कभी जानवर इस प्रकार घायल हो जाय तो स्वयं ढूँढ़े अथवा जब भोटे लोग ढूंढ़कर लायें तो उसकी खाल को देख-भालकर यह निश्चय कर ले कि यह हमारा ही मारा हुआ है। इसमें थोड़ा भी संदेह हो तो न लें। बिना खाल (चमड़े) के सिर को तो कभी न ले। इन सब कारणों से मैंने इनाम को नहीं कहा।

: २५ :

हिमिस का गोम्पा

दस बजे भोजन करने के पश्चात् मार्सलंग से सिन्धु पार स्तकना पड़ाव के लिए सामान भेज दिया और हम हिमिस देखने गये। जब हम चाँग-चेन-मो गये थे तो स्तकना के पासवाले नाले में शापू देखे थे और सुना भी था कि वहाँ अच्छे सिरवाले शापू हैं। हमने शिकारियों से कह दिया था कि वे तम्बू लगाकर डाकनाले को देखने जायँ। हम भी हिमिस को देखकर सन्ध्या तक आ जायँगे। मार्सलंग से स्तकना एक मील तथा हिमिस दो मील है। हिमिस का गोम्पा ल्हासा से दूसरे नम्बर

पर है। पश्चिमी तिब्बत में यही मुख्य स्थान है। दूर से तो हिमिस बड़ा हरा-भरा दिखाई दिया, परन्तु वहाँ जाने पर कच्ची मिट्टी के मकान देखे। गोम्पा या मठ काफी लम्बा-चौड़ा है जहाँ लगभग छः-सात सौ लामा रहते हैं। कई द्वारों को पार कर हम एक आँगन में पहुँचे और एक लामा से मिलकर वहाँ की दर्शनीय वस्तुएँ बताने की प्रार्थना की। यह कोई महंत था। उसने एक लामा को बुलाकर चाबियों का गुच्छा दिया और उसे हमें सब जगह बताने की आज्ञा दी। यह लामा हिन्दुस्तानी अच्छी बोल लेता था।

कई यात्री प्रतिवर्ष जून के महीने में यहाँ प्रेतों का नाच (Devil Dance) देखने आते हैं। इन यात्रियों में बौद्ध तो हजारों होते ही हैं, परन्तु कई हिन्दुस्तानी, यूरोपियन तथा अमरीकन भी होते हैं। राहुलजी भी यहाँ पहुँचे थे। वे या अन्य हिन्दी के लेखक यदि यहाँ आवें और विस्तारपूर्वक लिखें तो एक अच्छी पुस्तक बन सकती है। मेरा तो इतना ही लिख देना यथेष्ठ होगा कि कई कमरों में हस्तलिखित तथा छपी पुस्तकें रेशमी कपड़ों में लपेटी हुई सुरक्षित रक्खी हैं। कहते हैं कि इनमें संस्कृत के भी कई ग्रन्थ हैं। मैंने तो केवल लकड़ी की आलमारियों में उन्हें कपड़े में लिपटा हुआ देखा। जब उन्हें खोलकर देखने की इच्छा प्रकट की तो हमारे दुभाषिये ने कहा कि इसके लिए खास आज्ञा लेनी होगी और हमें दो-तीन दिन ठहरना होगा। एक बड़े कमरे में इनके धर्म-गुरुओं की प्रतिमाएँ तथा चित्र देखे, जो बहुत उत्तम थे। इसी प्रकार इनके बर्तन तथा कपड़े आदि सब देखे। हमें तो अपने शिकार की पड़ी थी। अतः एक बजे तक जितना देख सके, देखकर चल दिये। मकान सब-के-सब मिट्टी के है। हाँ, कहींपर लकड़ी की खुदाई का काम अच्छा हैं। कई जगह बड़े तथा छोटे भोटिये कुत्ते साँकलों से बँधे थे। बड़े कुत्ते बड़े भयावने थे। जब मैंने छोटी जाति के कुत्ते को खरीदने की इच्छा प्रकट की तो मालूम हुआ कि वे बहुत कम हैं। जो कुछ हैं वे ल्हासा से लामा लोग अपने साथ लाये हैं और बेचने को राजी नहीं हैं। दो घण्टे तक जितना भी हो सका देखने के पश्चात् हिमिस से चलकर तीन बजे के लगभग स्तकना नामक पड़ाव पर, जहाँ पर हमारे तम्बू थे, पहुँच गये।

अभी शिकारी शापू देखने नहीं गये थे। मैंने इनको उधर भेजा और हबीबा से स्नान के लिए पानी गरम करने को कहा। आज इक्कीस दिन के पश्चात् स्नान करने का साहस हुआ। दाढ़ी बनाते हुए मैंने दाऊसाहब को बताया कि न मालूम क्यों गरदन, बगल तथा पेडू में खुजली चलती है। वे बोले कि स्नान न करने तथा कपड़े न बदलने से जुएँ पड़ गई होंगी। मैं इसे असम्भव समझकर हँस दिया, इसपर वे बोले, "कल मैंने भी स्नान किया था। मेरे भी इसी प्रकार खुजली चलती थी। यह खुजली जुओं के काटने की है। वे गरम जगह पर रुकती हैं, जैसे बगल आदि। स्नान के पश्चात् जब पहने हुए कपड़े देखे तो उनमें कई जुएँ दिखाई दीं।" मेरी भी यही दशा हुई। पहने हुए कपड़े उतार-उतार कर देखा तो कपड़ों में बीसियों जुएँ तथा उनके अंडे-बच्चे थे। मैंने तो कहा कि कपड़े जला दो, परन्तु हबीबा ने बताया कि कनस्तर में कपड़े रखकर पानी में खूब उबाल देने से जुएँ मर जायेंगी, साथ ही उसने मुझसे कहा कि इन्हींके डर के मारे वह मुझसे कई बार कपड़े बदलने की कह चुका था। मैंने उसकी बात का ध्यान रखने का आश्वासन दिया। स्नान करने से शरीर हल्का हो गया और जुएँ न रहने से खुजली भी बन्द हो गई। यह जगह सिन्धु के किनारे काफ़ी नीचे है। अतः गर्मी भी है। सन्ध्या समय बड़ा सुहावना मालूम दे रहा था। कई लोग आते-जाते दिखाई दे रहे थे। हम दोनों को गप-शप करते शीघ्र सन्ध्या हो गई। आज कुछ लोगों से सुना कि यूरोप में युद्ध छिड़ गया है। जब हमने उनसे पूछा कि उन्हें कैसे मालूम हुआ तो बताया कि लद्दाख में जितने फौजी अफसर शिकार या यात्रा के लिए आये हुए हैं, सबके पास खबर भेज दी गई है और सब श्रीनगर की ओर चले जारहे हैं। अँधेरा होते-होते हमारे दोनों शिकारी नाला देखकर लौटे और बताया कि उन्हें पाँच-छह अच्छे शापू दिखाई दिये हैं। कल बड़े तड़के उठकर अगोट दी जाय तो शापू मिल जायँगे। अतः हम लोग खा-पीकर शीघ्र सो गये। यह स्थान गरम तथा नीचा होने के कारण नींद भी शीघ्र आ गई।

: २६ :
शे के मेले की मुसीबत

मंगलवार, २२ अगस्त

यहाँ सूर्योदय लगभग पाँच बजे होता है और उजेला तीन बजे के पश्चात् होने लगता है। हमें शापू की अगोट देनी थी। अतः तीन बजे तैयार होकर नाले की उपत्यका में जा बैठे। हमने नौकरों को समझा दिया था कि वे भोजन तथा सामान लेकर आठ बजे लेह के मार्ग पर, जहाँ नाला मिलता है, हमारी प्रतीक्षा करें। पड़ाव से नाला लगभग दो मील होगा और सिन्धु के सहारे मार्ग था, अतः समतल था। हम चार बजे के पूर्व ही अपने-अपने स्थान पर पहुँच गये थे। उपत्यका के पूर्व में दाऊसाहब तथा पश्चिम में मैं बैठा था। हमें पूरी उपत्यका दिखाई दे रही थी। जंगली जानवर सन्ध्या समय नीची भूमि में चरने आते हैं और सबेरे ऊँची जगहों में जहाँ कोई न जाता हो, जाकर विश्राम करते हैं। जबतक उन्हें कोई खटका न हो, प्रायः एक ही मार्ग से जानवर आते-जाते हैं। इसी मार्ग पर उनके खोंद देखकर उनके आने-जाने के मार्ग पर जा बैठने को अगोट की शिकार कहते हैं। कुछ ही देर बाद हमने देखा कि छह शापू हमसे उत्तर की ओर उपत्यका में ऊपर चढ़ते जा रहे हैं। हम समझ गये कि हमें देर हो गई। इनका पीछा करना व्यर्थ था। दूसरे हमें आशा थी कि सम्भव है, कोई दूसरा झुंड सिन्धु के किनारे से आ जाय। जब नौ बज गये और हमें दूसरे शापू के आने की आशा न रही तो उतरकर लेह के मार्ग पर पहुँचे, जहाँ हमें हमारे नौकर मिल गये।

लगभग बारह बजे हम रनबीरपुर पहुँचे। इसी समय लेह से पादरी वाल्टर एसबो का भेजा पत्र तथा कुछ समाचार-पत्र मिले। पादरी ने पत्र में लिखा था कि यूरोप में युद्ध छिड़ जाने की पूरी सम्भावना है। अतः जहाँतक हो सके हम लद्दाख की शिकार खेलकर श्रीनगर की ओर चल दें। उसने यह भी लिखा था कि जितने भी फौजी अफसर इधर शिकार

खेल रहे थे, वे सब बुला लिये गये हैं। हमें लद्दाख छोड़ने के पूर्व रम्पक ब्लाक में, जो मेरे नाम था, शापू की शिकार खेलनी थी, अतः मैंने कहा कि आज लेह से दक्षिण में सिन्धु के पुल पर रातभर रहा जाय ताकि कल उठकर, पुल को पार कर रम्पक पहुँचा जाय। वहाँपर शापू की शिकार खेलकर लेह होते हुए श्रीनगर लौटा जाय, परन्तु नौकरों ने कहा कि कल शे में, जो हमारे मार्ग में है, बड़ा मेला लगने वाला है। अभीतक हम-लोगों ने मेला नहीं देखा था। यह निश्चय हुआ कि हमलोग आज रन-बीरपुर में ठहरें और यही किया।

संध्या समय मालूम हुआ कि लद्दाख के वजीरसाहब भी शे पहुँच गये हैं। शे के मेले की बड़ी चर्चा थी। सुनने से ऐसा मालूम पड़ता था कि कल बड़ी भीड़ देखने को मिलेगी।

बुधवार, २३ अगस्त

सबेरे सात बजे तक हमलोग तैयार हो गये। इसी समय कलवाला भोटा अपने कोट में छिपाये एक काला कुत्ता लाया। मुझे बहुत पसन्द आया। इसका नाम टुंडुप था। मैंने पाँच रुपये कीमत के तथा एक रुपया इनाम का देकर कुत्ता ले लिया। चलते समय हिसाब तथा इनाम-इकराम को लेकर खूब चख-चख हुई। आखिर जैसे-तैसे निपटाकर आगे बढ़े। दस बजे के लगभग जब हम शे के पास पहुँचे तो मोख्तालोन तथा हमारे सामान के टट्टू खड़े हुए मिले। कुछ देर विचार-विमर्श के पश्चात् यह तय हुआ कि मेला देखने के लिए दिन खराब करना उचित नहीं है। लेह के पासवाले पुल को पारकर ठहरना ठीक होगा, ताकि कल रम्पक पहुँचकर शापू की शिकार खेली जाय।

शे एक बड़ा गाँव है और यहाँ एक पहाड़ पर बड़ा सुन्दर गोम्पा बना हुआ है। सड़क के दोनों ओर कुछ दुकानें लगी हुई थीं और थोड़े आदमी भी आ गये थे। पूछने पर मालूम हुआ कि सन्ध्या समय यहाँ वजीर आयेंगे और कल मेला पूरा भर जायगा। सड़क के पास दोनों तरफ़ थोड़ा पानी भरा हुआ था, जिसमें हमें सैकड़ों स्नाइप (जाड़े में आनेवाले पक्षी, जिनकी शिकार खेली जाती है) दिखाई दिये। ये हमसे बिल्कुल नहीं डरते थे। आश्चर्य में आकर दाऊसाहब बोले कि यहाँ के स्नाइप

ऐसे मालूम होते हैं मानो पाले हुए हों। वास्तव में वे हमसे पाँच-छह गज की दूरी पर बैठे हुए दिखाई दिये। जब हम शे से आगे बढ़ने लगे तो हमारे भोटे बोले कि वे चकलुनसर के पासवाले पुल से आगे नहीं जायंगे। हमने उन्हें बहुत लालच दिया कि वे हमें रम्पक तक छोड़ आयें, परन्तु उन्हें तो शे का मेला देखना था, अतः राजी न हुए। हम भी समझते थे कि शे के मेले के कारण हमें चकलुसनर में टट्टू न मिलेंगे। लद्दाखी लालची नहीं होते। इसलिए इन्हें राजी करना कठिन है। लगभग दो बजे हमलोग पुल के पास पहुँच गये और सरकारी पड़ाव पर हमारा सामान उतार कर रनबीरपुर के भोटा चल दिये। यहाँ से लेह लगभग तीन मील है। मैंने हबीबा को डाक लेने भेजा और दोनों शिकारियों को चकलुनसर तथा स्ताक की ओर टट्टू के लिए भेजा। स्ताक सिंधु के दक्षिण में अच्छा गाँव है, जहाँपर लद्दाख का राजा रहता है। इसे काश्मीर राज्य से कुछ रुपया मिलता है तथा इसकी कुछ भूमि तथा मकान भी हैं। लद्दाखी इसे अब भी बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। यहाँ के चौकीदार ने बताया कि राजा की एक जवान बहन दो वर्ष से एक मकान में बन्द है और तपस्या कर रही है। चौकीदार ने यह भी बताया कि आज सन्ध्या समय इसी पुल पर होकर राजा लेह से स्ताक को लौट रहे हैं। छह बजे के लगभग पुल पर चालीस-पचास आदमी राजा को देखने इकट्ठे हो गये। जब राजा घोड़े पर चढ़ा हुआ वहाँ से निकला तो सबने झुककर 'जू ले' कहकर उसका अभिवादन किया। हमने भी जब अभिवादन किया तो घोड़ा रोककर हमसे थोड़ी देर दुभाषिया द्वारा बात करके चला गया।

हबीबा ने आकर हमारी डाक दी और जो सामान मँगवाया था वह भी ले आया। हबीबा के साथ शिकार-विभाग का जमादार भी आकर मिला। दिन डूबनेवाला था, तब भी हमारे शिकारी नहीं लौटे थे। यह देखकर हमारे नौकर कह रहे थे कि सामान खोलकर तम्बू लगाये जायँ और भोजन पकाना प्रारम्भ करें। इतने में दोनों शिकारी थोड़े-से भोटे लेकर आये और बताया कि शे के मेले के कारण यथेष्ट टट्टू नहीं मिलेंगे। आज हमें पुल पारकर एक मील की दूरी पर ठहरना होगा। आवश्यक

सामान भोटे सिर पर ले जायँगे और शेष सामान एक भोटा के घर छोड़ना होगा। सवारी के लिए दो टट्टुओं का प्रबन्ध हो गया है। अंधेरा होते हमलोग चकलुनसर के एक खिरक में जा ठहरे।

गुरुवार, २४ अगस्त

'आज सबेरे सात बजे रवाना हुए। हमलोग सिंधु के किनारे लगभग बारह मील चलकर रम्पक नाले की उपत्यका में दक्षिण की ओर मुड़ गये। लगभग बारह बजे हम जिचेन पहुँचे। रास्ता पथरीला और खराब है। कई जगह नाले को पार करना पड़ा। जिचेन में दो घंटे विश्राम किया और खाना खाया। जिचेन से आगे मार्ग और भी खराब था। कई जगह टट्टू से उतरना पड़ा। रम्पक के पास पहुँचते ही उपत्यका चौड़ी हो गई और खेत दिखाई दिये। अब खूबानी के फल बिलकुल नहीं रहे थे, परन्तु सेब पक रहे थे।

हम लोगों को रम्पक जानेवाले बड़ी कठिनाई से मिले थे। इनसे यह शर्त भी थी कि वापसी में यही लोग हमारा सामान लेह तक ले जायंगे। तब कहीं वे हमें रम्पक लाने को तैयार हुए थे, अन्यथा सब शे के मेले में जा रहे थे।

यहाँपर लोगों से पूछने से पता चला कि अभी-अभी तीन साहब रम्पक में शिकार के लिए आये, परन्तु किसीको भी शापू नहीं मिला। यह तो मैं पाठकों को बता चुका हूँ कि लायसेंस में ब्लाक लिखे होते हैं, परन्तु यह प्रदेश जन-शून्य होने के कारण शिकारी जहाँ जी में आता है शिकार खेलता रहता है। उदाहरणार्थ रम्पक ब्लाक मेरे नाम है, परन्तु तीन साहब शिकार खेल चुके हैं। लोगों से पूछ-ताछ करने से यह भी पता चला कि यहाँ इस साल शापू बिलकुल नहीं दिखाई दिये। वैसे यह ब्लाक शापू की शिकार के लिए प्रख्यात है। जब हम काश्मीर से लेह आ रहे थे तब लामायुरु के पड़ाव पर हमें बताया गया था कि वहाँ शापू बहुत हैं। अतः यह तय हुआ कि काश्मीर लौटते समय लामायुरु दो-तीन दिन ठहर कर शापू की शिकार खेली जाय। हम लोगों ने यहाँ की परिस्थिति समझकर कल के दिन शिकार खेलना और परसों चल देना ठीक समझा।'

दाऊसाहब शापू मार चुके थे, अतः वे चाहते थे कि कल विश्राम करें। परन्तु मैंने उनसे अनुरोध किया कि मैं दक्षिण-पश्चिम में शापू के लिए जाऊँगा और वे पूर्व में, जहाँ भरल बहुत बताये जाते हैं, जायें।

: २७ :

फिर भरल मारे

शुक्रवार, २५ अगस्त

आज सवेरे छह बजे हम शिकार के लिए दक्षिण की ओर नाले के सहारे चले। यहाँ से (रम्पक) तीन मील पर थोड़े से घर हैं, जहाँ से हमें एक भोटा को लेना था जो इस ओर की शिकार की जानकारी रखता था। बड़ा खराब रास्ता था। कई जगह घोड़ों से उतरना पड़ा। घोड़े की काठी बिल्कुल टूट चुकी थी। केवल तंग (जो कपड़े का था) के अतिरिक्त चमड़े का सामान कुछ नहीं रहा था। ऊपर कम्बल कसा था तथा बाग और रकाब रस्सी के बना लिये थे। भोटे को लेकर कई पहाड़ियाँ चढ़ते-उतरते फिरे, परन्तु मामट के अतिरिक्त कोई जानवर नहीं दिखाई दिये। इधर के मामट हिमालय की चोटी के मामटों से बहुत छोटे हैं। दोपहर के समय खाना खाकर जब वापस होने लगे तो लगभग दो बजे हमें एक भरल का झुंड दिखाई दिया। तीन घंटे तक इसका पीछा किया, परन्तु पास नहीं पहुँच सके। आज भटकते-भटकते काफ़ी थक गये थे और दूर भी बहुत निकल गये थे, अतः उक्त झुंड को छोड़कर रम्पक के लिए चल दिये। दिन डूब चुका था, परन्तु उजाला काफ़ी था और रम्पक आधा मील रहा होगा, इतने में हमारे साथ के एक भोटा ने दाहिनी ओर के पहाड़ की ओर हाथ उठाकर बताया, "देखिये, भरल खड़े हैं।" हमारे ठीक ऊपर लगभग एक हजार फुट की ऊँचाई पर सोलह-सत्रह भरल कतार बाँधे खड़े हमें देख रहे थे। पास ही एक बड़ी चट्टान थी। उसपर मैंने बन्दूक रखी और मोखतालोल से दूरबीन लगाकर देखने और दाहिनी ओर से गिनती प्रारम्भ कर के यह बताने को कहा कि कौन-सा भरल सबसे बड़ा है। वे हमसे इतनी ऊँचाई पर थे कि वैसे

यह नहीं मालूम देता था कि कौन-सा बड़ा है। भोटे तथा टट्टुओं को आगे बढ़कर आड़ में खड़े रहने को कह दिया।

मोख्तालोन ने पाँच मिनट तक देखकर कहा कि नम्बर दो सबसे बड़ा है और मुझे भी दूरबीन से देखने का अनुरोध किया। मैंने इसकी आवश्यकता नहीं स .भी। तबतक मैंने चट्टान पर साफा रखकर उसपर रायफल जमा ली थी। सावधानी से लक्ष्यकर बन्दूक चला दी। धड़ाके के साथ ही नम्बर दो वाला भरल उछलता दिखाई दिया और मोख्तालोन ने मेरा हाथ पकड़कर चट्टान के नीचे छिपने को कहा। कुछ ही सैकिंड में उक्त भरल लुढ़कता हुआ हमसे कुछ ही दूर पर नीचे नाले के किनारे जा ठहरा। मोख्तालोन बोला, "खूब चोट लगाई!" मैं भी प्रसन्न था। इतनी दूर और बारीक चोट बहुत कम लगाई थी। गोली भरल के सीने में लगी थी और वह मरा पड़ा था। केवल एक सींग थोड़ा-सा टूट गया था। सींग मामूली यानी बहुत बड़े नहीं थे। बन्दूक का धड़ाका सुनकर कई भोटे दौड़ आये थे और इतनी दूर की चोट देखकर आपस में मेरी प्रशंसा कर रहे थे। अंधेरा होते-होते पड़ाव पर लौटे तो डाक्टसाहब ने बताया कि वे भी एक भरल घायल कर आये हैं, जो बहुत बड़ा है। वे पहले की भाँति भोटों को इनाम की कह रहे थे। मुझे यह तरीका पसन्द न था, परन्तु इन्हें मैं रोक नहीं सकता था। रात को खाना खाते समय हमारे साथ के भोटों ने बताया कि यहाँवाले उनसे लड़ रहे थे, कह रहे थे कि सामान वे ले जायँगे। हमने आश्वासन दिया कुछ भी हो, सामान हमारे वचनानुसार वे ही ले जायँगे।

: २८ :

हमारा बुरा हाल

शनिवार, २६ अगस्त

आज सवेरे से ही सामान ले जाने के लिए रम्पकवालों में और हममें झगड़ा प्रारम्भ हो गया। कल हमने दूध, लकड़ी आदि लिये थे, जिनके दाम देने थे। वे नहीं लेने लगे और बोले कि सवारी के टट्टू भले ही तुम

रक्खें, परन्तु समान वे ही ढोवेंगे। जब हमने इन्कार कर दिया तो सब हमारी शिकायत के लिये लेह को चल दिये। हमने भी कह दिया कि हम दाम लेह में वज़ीरसाहब के पास जाकर देंगे। जैसा कि वे कहते थे, रेस का नियम है कि जिस गाँव में पड़ाव हो, वहाँवाले सामान ले जायँ, परन्तु अब हमें इस प्रदेश में काफी समय हो गया था और हम जानते थे कि रेस के नियम केवल श्रीनगर से लेह की सड़क तक लागू हैं। अतः हमने कह दिया कि वे लेह जा सकते हैं। इसी झगड़े में काफ़ी देर हो चुकी थी। जब हम रम्पक से तीन मील पहुँचे तो सब रम्पकवाले नाले में मिले और क्षमा-याचना करने लगे। हम भी यही चाहते थे। दाम चुकाकर आगे बढ़े। आज हमें सिंधु का पुल पार कर लेह की ओर के किनारे ठहरना पड़ा। हमारे भोटे आज लेह जाने को तैयार न थे। यहाँ-से लेह लगभग पाँच-छः मील होगा।

अब मेरा खरीदा हुआ कुत्ता, जिसका नाम टुँड्रुप था, काफी हिल गया था। रात को पाँव की ओर पलंग पर बैठता था और तम्बू के पास कोई आता था तो भौंकता था। पड़ाव पर पहुँचते ही काफ़ी दौड़ लगाने लगा। रास्ते में मैं भोटा को उसे उठाने के लिये कह देता था। शेष शिकारियों के कुत्ते पैदल आते थे।

रविवार, २७ अगस्त

आज सवेरे छः बजे के पश्चात् हम चल पड़े। अन्य दिनों की भाँति आज दोपहर का भोजन पकाकर साथ नहीं लेना था, कारण थोड़ी देर में लेह पहुँचना था। अतः वहींपर गरम खाना खाने की इच्छा थी। टुँड्रुप आज भोटा के पास काफी चिल्ला रहा था। जब शिकारी ने कहा कि इसे घोड़े पर बैठा लीजिये तो मैंने कहा कि एक तो कुत्ता घोड़े पर कैसे सम्भलकर बैठ सकेगा। दूसरे, मैं ऐसा निपुण सवार नहीं कि अपने आपको सम्भालने के साथ कुत्ते को भी सम्भाल सकूं। तब शिकारी ने कहा, "इधर के छोटी जात के कुत्ते घोड़े पर बैठने के आदी हैं, आप बैठा-कर देखिये तो सही।" टुँड्रुप को जब मैंने अपने आगे बिठाया तो तुरन्त चुप हो गया और अपने आपको खूब साधने लगा। जब मैंने यह देखने के लिये कि यह फिर भोटा के पास जाता है कि नहीं, उसे घोड़े से उतार

दिया, तो फिर चिल्लाने लगा। अब तो टुंडुप सिवा घोड़े के चलते भी नहीं थे।

नौ बजे के लगभग हम पड़ाव पर पहुँचे। यहाँ की चौकीदारिन आज साफ-सुथरे कपड़े पहने हमारे स्वागत को आई। पड़ाव भी झाड़ू लगाकर साफ कर रक्खा था और जलाने के लिए लकड़ी भी थी। हमें देखकर बोली, "आपके आने की तो कल खबर थी, इसीसे मैंने कल ग़ुसल किया था और पड़ाव साफ किया था। कल से मैंने यहाँ किसीको टट्टी भी नहीं जाने दिया। अब तो आप मुझे सामान में हाथ लगाने देंगे ?" दाऊसाहब की ओर संकेत कर बोली, "जब आये थे तब आप बहुत साफ थे, अब तो आप भी हम जैसे दिखाई देते हैं।" वास्तव में उसका कहना ठीक था, हमें लेह छोड़े चालीस दिन हो चुके थे। इस बीच हमने कुल दो बार स्नान किया था। कपड़े मैले हो चुके थे। काठी का चमड़ा टूट चुका था। मुँह का चमड़ा भी कई बार निकल चुका था। होंठ फटे हुए थे। सामान की पेटियाँ प्रायः सब टूट चुकी थीं। जब मैंने स्वीकृति दी, तो तुरन्त रमजानखाँ से बोली, "साहब का सामान कौन-सा है ?" वह जानती थी कि रमजानखाँ दाऊसाहब का शिकारी है। रनबीरपुर से रमजान खाँ झेंपा हुआ था, अतः बेचारा चुप रहा। मैंने मोख्तालोन को आज्ञा दी कि वह दाऊसाहब के सामान का टट्टू बता दे। सब सामान खोलने में लगे, तब दाऊसाहब बोले, "आज बड़े साहब तथा मैं एक ही तम्बू में रहेंगे। मेरा तम्बू थोड़ी दूर लगा दो ताकि उसमें हम स्नान कर सकें।" मोख्तालोन बोला, "हुजूर, एक झुंगी में स्नान कर लीजिये।" दाऊसाहब बोले—"नहीं, मेरा तम्बू उधर लगा दो। मैं अपने तम्बू में नहीं ठहरूँगा। पहले की भाँति आज भी यह मुझे हैरान करेगी।"

एक तम्बू में हम दोनों का सामान लगाया गया। दाढ़ी बनाकर स्नान करने के पश्चात् तुरन्त डाकखाने गये। श्रीनगर से हमारे एजेंट मुहम्मद बाबा का पत्र था कि हमारे आदेशानुसार वह पाँच सौ रुपये का मनीआर्डर तार कर चुका है तथा और आवश्यकता हो तो तार से मनीआर्डर द्वारा भेजें। पोस्टमास्टर से जब हमने मनीआर्डर के लिये कहा तो वे बोले कि आज रविवार है, कल जितना जल्दी हो सकेगा, तहसील से

रुपये गँगवा कर देंगे । यहाँ का डाकघर काश्मीर राज्य का है, अतः डाकखाने के रुपये तहसील में रहते हैं। जब हमने पोस्टमास्टर से कहा कि हम कल जितनी जल्दी हो सके जाना चाहते हैं तो वे बोले कि यदि हम तहसीलदार से मिलकर कह दें कि पोस्टमास्टर के लिखने पर शीघ्र रुपये दे दें तो काम जल्दी हो जायगा, नहीं तो दिन के दो बजे तक रुपये मिल सकेंगे।

स्टोर से सिगरेट तथा बिस्कुट लेते हुए ग्यारह बजे पड़ाव पर पहुँचे। भोजन करने के पश्चात् हम दोनों मि० वाल्टर एसबो के पास गये। उन्होंने हमें दस-बारह दिन के समाचार-पत्र देकर संक्षेप में संसार के समाचार बताये और कहा कि हमें अब काश्मीर की ओर चले जाना चाहिए। जर्मनी शीघ्र ही पोलेण्ड पर चढ़ाई करनेवाला है और युद्ध अनिवार्य है। उन्होंने यह भी कहा कि हम खल्तसी, कर्गिल तथा द्रास के डाकघर में उनके पत्र या तार की तलाश करें। यदि युद्ध छिड़ गया तो वे हमें खबर देंगे। समाचार-पत्र तो दिल्ली से लेह आठ दिन में पहुँचते हैं, परन्तु मि० वाल्टर एसबो के पास रेडियो है, जिससे उन्हें सब खबरें मिलती रहतीं हैं। इन्हें धन्यवाद देकर जब हम लौटे और यह सोच रहे थे कि तहसीलदार से मिलने जायँ, इतने में उन्हींकी ओर से हमें निमन्त्रण मिला। लद्दाख के गवर्नर का तबादला हो गया था। अतः उनके सम्मान में आज चार बजे चाय-पानी था।

हमारे यहाँ आने की खबर गाँवभर में हो गई थी। वही आर्यसमाजी महाशय तथा दो-चार हिन्दू भाई आ पहुँचे और हमें भोजन तथा भाषण के लिए निमंत्रण देने लगे। हमने सबको यह कहकर टाल दिया कि हम लोग थके हुए हैं, दूसरे हमें कल जाना है और आज ही बाजार का कार्य पूरा करना है।

नौकर टूटे हुए सामान को ठीक कराने में लगे हुए थे। हम दोनों चार बजे गवर्नर के मकान पर पहुँचे। लेह के प्रायः सब भले आदमी उपस्थित थे। गवर्नर से मैं मिल चुका था। मैंने दाऊसाहब को उनसे मिलाया तथा अपने शिकार का सब वृत्तान्त कहा। वे बोले कि वे मुजफ्फराबाद जा रहे हैं और हमें वहाँ शिकार के लिये निमंत्रण दिया।

जब हमने तहसीलदारसाहब से मनीआर्डरवाली बात कही तो उन्होंने पोस्टमास्टर से, जो वहीं उपस्थित थे, कह दिया कि जिस समय वे लिखेंगे उसी समय रुपये दे दिये जायंगे। पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ से यात्री लोग चीन की हरी चाय, जिसकी ईंटें बनी रहती हैं, ले जाते हैं। कुछ यहाँ से शिगर के आये हुए पत्थर के प्याले तथा कटोरे भी ले जाते हैं। इस पत्थर के लिये कहा जाता है कि कोई भी विष इसमें डाला जाय तो यह टूट जाता है। यहाँ फीरोजा (एक प्रकार का सस्ता रत्न) भी बहुत मिलता है।

हमने हरी चाय, शिगर के कटोरे तथा गिलास खरीदे। संध्या समय पड़ाव पर आये तो सब नौकर भी उपस्थित थे। अंधेरा पड़ते-पड़ते भोजन करके जब सोनेवाले थे, रम्पक से एक भोटा आया और दाऊ-साहब का घायल किया हुआ भरल का सिर लाया। अच्छा, बड़ा २६ इंच के सींगवाला भरल था।

सोमवार, २८ अगस्त

सबेरे पोस्टमास्टर ने खबर भेजी कि रुपये ग्यारह बजे मिलेंगे। दस बजे के लगभग हमने भोजन करके सामान टट्टू पर लदवा दिया और नेमू पर पड़ाव डालने के लिए आगे भेज दिया। अपने साथ के लिए एक नौकर रख लिया। कल की भाँति आज भी यहाँ के चौकीदार ने सामान लादने में सहायता दी।

हमें डाकघर एक घंटे के लगभग ठहरना पड़ा। जब रुपये मिल गये तब साढ़े ग्यारह बजे के लगभग लेह से चले। आज मुझे बहुत खराब टट्टू मिला था। कई जगह ठोकरें खाईं और गिरते-गिरते बचा। टुँडुप जो मेरे सामने बैठा था, तीन-चार बार गिरा। लेह से खलसी तक सिन्धु का उत्तरी किनारा बड़ा उजाड़ है। गेहूँ और जौ के खेत पके हुए हैं और सेव के पेड़ भी पके फलों से लदे हुए हैं। गेहूँ के खेतों में एक प्रकार की तरकारी, जो मालवा में अफीम के खेतों में होती है और जिसे वहाँ दक्षिणी मटर कहते हैं, बहुत लगी है। लगभग छह बजे थके-माँदे नेमू पहुँचे। एक तो लगभग अठारह मील चलना पड़ा, दूसरे इस रास्ते में धूल बहुत थी। हमारा सामान पहुँच चुका था। लेह से

खल्तसी तक बराबर उतार है और गरमी अधिक होती है। आज यहाँ के डाक-बँगले में एक अमरीकन तथा उसकी पत्नी आकर ठहरे। ये लोग लेह से वापस श्रीनगर जा रहे थे।

मंगलवार, २९ अगस्त

सबेरे उठे तो मालूम हुआ कि दोनों अमरीकन चले गये हैं। शिकारियों के साथ सामान विशेष होता है, अतः इन्हें लादने में काफी समय लग जाता है। पर्यटन करनेवाले के साथ बिस्तर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता, अतः वे तुरन्त तैयार हो जाते हैं। लगभग सात बजे हम भी चल पड़े। बड़ा सुन्दर तथा हरा-भरा प्रदेश है। जगह-जगह छोटे-छोटे बालक फूल लिये हुए हमारे स्वागत के लिये खड़े मिले। अन्य जगहों की भाँति यहाँ कोई कुछ नहीं माँगता। केवल पास पहुँचने पर मुस्कराकर फूलवाला हाथ सामने बढ़ा देता है। यदि इच्छा हो तो ले लो और कुछ दे दो, अन्यथा उन्हें कोई ऐतराज नहीं। बारह बजे के लगभग शुरापुल पहुँचे। यह बहुत बड़ा गाँव है और यहाँपर सेव के कई बाग़ हैं। पड़ाव के दक्षिण की ओर एक धनी का घर तथा बाग़ है। यह लद्दाख के प्रतिष्ठित घराने का है और राज्य में गिरदावर कानूनगो है। बाग़ में सेव तथा खूबानी के कई पेड़ हैं। खूबानी में तो थोड़े फल रह गये थे, परन्तु सेव खूब पके थे। यहाँ तम्बू लगा दिये गये।

हम चाहते थे कि आज हम मि० वाल्टर एसबो से लाये हुए समाचार-पत्र पढ़ें, परन्तु शिकारियों का विशेष अनुरोध देखकर हिसाब करने को बैठ गये। मैंने अपना हिसाब आध घंटे के भीतर देखकर मोख्तालोन को रुपये दे दिये और समाचार-पत्र पढ़ने लगा। दाऊसाहब रमजानखाँ से बहस कर रहे थे। हमारे तम्बू से दस गज दूर बाग़ की पत्थर की दीवार थी, जहाँ धनिक के घर की दो युवतियाँ तथा एक दस-बारह वर्ष का बालक खड़े हुए हमें और हमारे सामान को देख रहे थे। इन तीनों के कपड़े रेशम के थे और दोनों युवतियाँ असाधारण सुन्दर थीं। इससे हठात् मेरी दृष्टि अखबार से उचटकर उनकी ओर जा रही थी। रमजानखाँ ताड़ गया। वह दाऊसाहब को समझाते-समझाते हैरान हो गया था, अतः तुरन्त लद्दाखी में उन तीनों से बातें करने लगा। हम

तो कुछ नहीं समझे, परन्तु वे सब हँस रहे थे। थोड़ी देर में रमजानखाँ मुझसे बोला, "लीजिये हुजूर, इनके हाथ का सेव तो आप खायेंगे। मैंने इन्हें यह बता दिया है कि आप गंदे हाथ से तोड़े सेव नहीं खाते और ये दोनों कहती हैं कि लद्दाख से बिना सेव खाये जाने में हमारा अपमान है। तुम साहब से कहो कि हम खुद पेड़ पर चढ़कर सेव तोड़कर लाती हैं और साहब को देती हैं।" जब मैंने कहा कि इनके हाथ के सेव तो खा-लेंगे, परन्तु इन्हें दाम लेने होंगे तो वे बोलीं कि वे गरीब नहीं हैं और हमें तो वे अतिथि समझती हैं। जब हमने दाम देने के लिए हठ ठानी तो वे इस शर्त पर राजी हो गईं कि हम सब जितने चाहें सेव और खूबानी खायँ, परन्तु वे लेंगीं सिर्फ चार आने। अच्छे-अच्छे सेव तथा खूबानी तोड़कर लाती थीं और पत्थर की दीवार के उधर से हमें देती जाती थीं। एक युवती कानूनगो की बेटी, दूसरी पुत्र-वधू तथा बालक (द्वितीय-पुत्र) था। बड़ी स्वादिष्ट खूबानी तथा सेव थे। मैंने पुत्र-वधू से पूछा कि क्या यह बालक भी उसका पति है ? उसने जवाब दिया, "अभी नहीं, जब बड़ा होगा, तब।" दूसरी अभी क्वारी थी। बहुत देर तक वार्त्तालाप होता रहा। जब हम सब खूब खा चुके तो चार आने लेकर वे चले गये।

रातवाले अमरीकन यहाँ नहीं ठहरे थे। घोड़े बदलकर आगे बढ़ गये थे, अतः हमने भी यह तय किया कि सामान से आगे चलकर नुर्ला में टट्टू तैयार रक्खे जायँ और वहाँ से आगे बढ़कर खल्तसी में रात को रहा जाय।

खल्तसी के पास शापू भी मिलते हैं। रात में यहाँ भी काफी गरमी थी। वैसे यह गाँव काफ़ी हरा-भरा है।

बुधवार, ३० अगस्त

आज सबेरे साढ़े पाँच बजे सामान को पीछे छोड़कर हम दोनों चल दिये और ग्यारह बजे नुर्ला पहुँचे। शिकारी को भेजकर टट्टुओं का प्रबन्ध कराया। लगभग दो बजे जब हमारा सामान आया तो नुर्ला के टट्टू पर लादकर चार बजे के लगभग हम खल्तसी पहुँचे। /नुर्ला से खल्तसी केवल सात मील है। खल्तसी में तार तथा डाक घर भी है।

इसीके पास यहाँ का पड़ाव है, जो अच्छा नहीं है। लद्दाख में सिंधु उपत्यका का यह सबसे निचाई पर गाँव है। जनसंख्या में लेह से दूसरे नम्बर का है। यहाँ पर अखरोट के पेड़ काफी हैं। गरम होने के कारण अन्य ग्रामों की अपेक्षा बहुत हरा-भरा है। शापू के लिये पूछने पर मालूम हुआ कि गरमी के कारण इस समय शापू यहाँ नहीं मिलेगे। वे इस समय लामायुरु की ओर होंगे। हमें उधर जाना ही था, अतः यह तय हुआ कि कल यहाँसे चलकर लामायुरु पहुँच जायं।

गुरुवार, ३१ अगस्त

सवेरे छह बजे चले और सिंधु का पुल पारकर ग्यारह बजे लामायुरु पहुँचे। आज केवल दस-ग्यारह मील चलना पड़ा, परन्तु सिंधु का किनारा छोड़ते ही हमें लगभग सात मील चढ़ना पड़ा। थक गये। लामायुरु ऊँचाई पर होने के कारण सिंधु के किनारे के गाँवों से ठंडा है। यहाँके चौकीदार को हम जानते थे। उसके द्वारा शापू की शिकार को जाननेवाले आदमी बुलाये गये। पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ बहुत शापू हैं और आसानी से शिकार हो सकती है। कल यहीं ठहरने का निश्चय हुआ। सोनम नामक भोटा तथा दो और भोटे एक रुपया रोज पर हमने रख लिये। यहाँ का पड़ाव नाले के किनारे है और पेड़ों की छाया भी काफी है। बड़ा सुहावना है। नाले में बहुत-से चकोर हैं। चार बजे के लगभग एक मेम आकर डाक-बँगले में ठहरी। यह भी श्रीनगर जा रही थी।

यहाँका चौकीदार औरों की अपेक्षा धनी और पढ़ा-लिखा है। इसने भारतवर्ष के बौद्ध तीर्थों का वर्णन पूछा। हम जितना जानते थे उसे बता दिया। यूरोप के युद्ध की चर्चा भी चली। जिसे देखो, युद्ध की पूछता था, परन्तु हम क्या बता सकते थे?

शुक्रवार, १ सितम्बर

आज सबेरे छः बजे मैं, मोख्तालोन, सोनम, एक भोटा तथा दो टट्टू लेकर शिकार को निकले। इसी प्रकार दाऊसाहब भी गये। हम उत्तर-पश्चिम की ओर तथा दाऊसाहब उत्तर-पूर्व की ओर गये। पहाड़ों पर पत्थर बहुत होने के कारण आज मुझे पैदल बहुत चलना पड़ा। दोपहर

में एक नाले के सहारे भोजन करते समय एक घंटा विश्राम किया होगा, अन्यथा चलते ही रहे। चार बजे के लगभग जब हताश होकर लौट रहे थे तो सात शापुओं का झुण्ड दिखाई दिया, जो हमसे एक हजार फुट की ऊँचाई पर था। टट्टू छोड़कर दाव लगाते हुए हम शापू से तीन सौ गज पर पहुँच गये। यहाँसे आगे छिपने की जगह न थी, अतः थोड़ी देर ठहर-कर फ़ैर करने का निश्चय किया। सब शापू बैठे थे। दूरबीन से देखने पर मालूम हुआ कि सब अच्छे सींगवाले हैं। मोख्तालोन ने कहा, "अभी तक आप बहुत सोच-समझकर बन्दूक चलाते आये हैं, लेकिन आज आप नये शिकारियों की तरह बराबर फ़ैर करते रहिए। मुमकिन है कि अंधे के हाथ बटेर लग जाय।" मैं भी जानता था कि कल तो चल ही देना है। जो कुछ करना-धरना है, अभी कर लिया जाय। पत्थर के ऊपर साफा रखकर उसपर रायफल जमाकर बड़े ध्यान से फ़ैर किया। धड़ाके के साथ सब शापू उछलकर एक चट्टान की ओट में ओझल हो गये। जबतक नली में दूसरा कारतूस डाला, शापू ऊपर की ओर भागते दिखाई दिये। देखकर मोख्तालोन ने कहा, "सिर्फ़ छः शापू जा रहे हैं। एक गिर गया। अब आप सबसे ऊपरवाले शापू पर फ़ैर कीजिये और बराबर फ़ैर करते जाइये।" मैंने वैसा ही किया। गोली से बराबर धूल उड़ती रही। शापू हमसे उत्तर की ओर पहाड़ चढ़ते जा रहे थे। चौथे फ़ैर के बाद मोख्तालोन ने और कारतूस दिये। शापू एकदम बाँई ओर मुड़कर पहाड़ उतरने लगे। मैंने मेगजीन में चार कारतूस और डाले और अब की बार थोड़ा ठहरकर जब शापू खड के पार हमारी बराबरी पर आये तो फ़ैर किया। फ़ैर के साथ ही शापू, जिसके गोली लगी थी, गिर पड़ा और खूब धूल उड़ी। शेष पाँच भागते रहे गये। मैंने छठा फ़ैर किया, परन्तु वह बच गया। अब वे बहुत दूर निकल गये थे। अतः मैंने फ़ैर करना बंद कर दिया। जिसपर पाँचवाँ फ़ैर किया था वह शापू फिर उठ खड़ा हुआ और गिरता-पड़ता धीरे-धीरे खड में उतरकर ओझल हो गया।

पाँचवे फ़ैरवाला शापू गिरता दिखाई दिया था और लुढ़कता हुआ खड में उतरा था। सो इसका तो निश्चय ही था कि मर जायेगा, परन्तु

पहले फ़ैरवाले शापू को देखना था कि क्या हुआ? अनुमान यह था कि चट्टान की आड़ में मरा पड़ा होगा। हाँफते हुए जब ऊपर चट्टान के पार पहुँचे तो वहाँ खून अथवा ऐसा कोई चिन्ह न था, जिससे यह मालूम हो सके कि शापू को गोली लगी है। उधर हमें सात शापुओं में केवल छः ही दिखाई दिये। अतः सातवाँ मरना ही चाहिए था। ऐसी कोई आड़ नहीं थी, जहाँसे वह पहाड़ पार कर सकता था।

मैं बहुत थक गया था और छः बज चुके थे। मोख्तालोन और सोनम को आगे बढ़कर देखने लिये छोड़कर, मैं भोटे के साथ पड़ाव के लिये लौट पड़ा। थोड़ा-सा उतरने पर हमें लामायुरु का मार्ग मिल गया और सात बजे के लगभग पड़ाव पर पहुँचे।

दाऊसाहब तीन बजे लौट आये थे। एक शापू मार कर लाये थे, जो बहुत छोटा था। अठारह इंच लम्बे सींग थे। इनको थोड़े ही शापू दिखाई दिये, जिनमें भी अधिकांश मादाएँ थीं। जब मैंने अपना हाल सुनाया और कहा कि पाँचवाँ फ़ैर लगभग छः सौ गज पर भागते हुए शापू को लगा तो वे बोले, "अंधे के हाथ बटेर लगना इसीको कहते हैं। यदि आप फ़ैर करने में कंजूसी करते तो शापू कैसे मार सकते थे?"

हमलोग यही बातें कर रहे थे कि यदि दोनों शापू मिल जायँ तो उत्तम होगा, इतने में लगभग आठ बजे मोख्तालोन तथा सोनम आ गये और बताया कि पहला शापू चट्टान से सौ गज की दूरी पर गिर गया था, जहाँ काफी खून था, परन्तु अपने पहुँचने की आहट पाकर, सम्भव है, और ऊपर चढ़ गया। एक जगह और वह गिरकर घिसिटता हुआ गया है। कुछ समय और देखने के पश्चात् देर होते देखकर वे दूसरे शापू को बिना देखे लौट आये। वैसे दूसरे शापू के मिल जाने की पूरी सम्भावना थी। जहाँ मैंने फ़ैर किये थे उसी पहाड़ के नीचे से हमें कल जाना था। दाऊ-साहब ने कहा कि सोनम तथा एक और भोटे को तलाश के लिये भेजा जाय। यदि ये ढूँढ़कर ला दें तो इनको इनाम दिया जाय। मैंने शर्त यह रक्खी कि यदि उक्त शापू मरे होंगे तो कल गिद्ध दिखाई देंगे, तब मैं इन्हें भेजूँगा। सोनम तथा मोख्तालोन को दूसरे का तो पूरा विश्वास था कि मर गया है, परन्तु पहले के लिए सोनम ही कहता था कि वह भी मर

गया है। सोनम ने कहा कि यदि दो दिन में भी मिल गये तो वे कारगिल तक पहुँचकर हमें ला देंगे।

: २६ :

शापू हाथ लगे

शनिवार, २ सितम्बर

आज सबेरे जान-बूझकर चलने में देर की गई, ताकि शापू यदि मरे हों तो गिद्ध उन्हें देख लें और मँडराते हुए दिखाई दें। हम लोग सात बजे के पश्चात् चले। चार मील चलने के बाद हम उस जगह पहुँचे जहाँ से उत्तर की ओर के पहाड़ पर मैंने शापू पर फ़ैर किये थे। टट्टू से उतरकर मैंने दाऊसाहब को दोनों स्थान बताये, जहाँ शापू गिरे थे। दूरबीन लगाकर मोख्तालोन देख रहा था। उसने देखकर कहा, "देखिये, दोनों जगह गिद्ध बैठे हैं। अब तो आपको यकीन हो गया कि शापू मर गये। अगर आप चार घंटे ठहर जायें तो हम लोग अभी उठाये लाते हैं।" दूरबीन से देखने पर मुझे भी विश्वास हो गया कि शापू मर गये। दोनों जगह गिद्ध दिखाई दिये थे। मैंने सोनम तथा दो भोटों को शापू उठा लाने को कह दिया। हमलोग भोटखर्बू के लिये चल दिये। आज का पड़ाव दूर था। तीन बजे खर्बू पहुँचे।

संध्या समय यहाँपर पोलो का मैच होना था। अतः हम भी पाँच बजे देखने गये। घोड़े तथा सामान को देखते यहाँवाले पोलो अच्छा खेल लेते हैं।

रविवार, ३ सितम्बर

'सोनम का भेजा हुआ भोटा दोनों शापू लेकर रात में आ गया। सबेरे जागने पर उसने दोनों शापू बताये। गिद्धों ने थोड़ा चमड़ा खा लिया था, परन्तु और सब ठीक था और मुझे भी विश्वास हो गया कि वे परसों के मरे हुए तथा मेरे ही मारे हुए हैं। एक के सींग २६½ इंच तथा दूसरे के २५ इंच थे। भोटे को इनाम देकर विदा किया।' तब दाऊसाहब बोले, "यदि इसी प्रकार आप अपने घायल जानवर ढुँढ़वाते तो

कितने ही आपको और मिल जाते।" मैंने कहा, "आप ठीक कहते हैं। दो तिब्बती हिरन, तीन अमन और एक भरल और मिल जाते, परन्तु मेरे पास समय कहाँ था ? उस जन-शून्य प्रदेश में ज्यादा ठहरना पसन्द न था, दूसरे वहाँपर ढूँढ़ना असम्भव न हो, परन्तु कठिन अवश्य था।"

आज सवेरे छह बजे तापमान ५६ डिगरी था। हम लोग लगभग सात बजे चले और लगभग दो बजे मुलबेख पहुँचे। गाँव के पास वही चतुर्भुजी मूर्ति फिर मिली। आज आकाश में बादल न होने के कारण मूर्ति को भली प्रकार देखा। मुझे यह मूर्ति बुद्ध भगवान की नहीं जान पड़ी, विष्णु भगवान की-सी लगी। हो सकता है, मेरे समझने में गलती हो। जब हम नाले के पास पड़ाव पर पहुँचे तो हमें दो लड़के और दो लड़कियाँ गदहे पर बैठे पोलो खेलते दिखाई दिये।

भोटखर्बू से द्रास तक पोलो का प्रचार बहुत है। मैंने चारों को पैसे देकर उनकी फोटो खींची। मुलबेख में हवा बहुत चलती है। आज भी यहाँ हवा खूब चल रही थी। केवल बर्फ गल जाने के कारण नाले में पानी कम था।

: ३० :

वापसी

सोमवार, ४ सितम्बर

सवेरे पाँच बजे हम लोग मुलबेख से चल दिये, कारण आज हमें काफी दूर जाना था। लगभग दो बजे कारगिल की तहसील के पास पहुँचे। तहसीलदारसाहब से मिले। युद्ध के बारे में उन्होंने बताया कि १ सितम्बर को जर्मनी ने पोलेण्ड पर धावा बोल दिया और उसी दिन इंगलैण्ड और फ्रांस ने जर्मनी को ४८ घंटे का अल्टीमेटम दे दिया है, जो रात को पूरा हो गया, परन्तु अभीतक मालूम नहीं कि दोनों ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की या नहीं। कारगिल में किसीके पास रेडियो नहीं है। यहाँपर तारबाबू के पास श्रीनगर तथा खल्तसी से खबरें आती हैं। खल्तसी के पादरी के पास भी रेडियो है।

पाठकों को बता चुका हूँ कि यहाँके तारघर काश्मीर राज्य के हैं। सीमा-प्रान्त होने के कारण तार-घर बनाये गये हैं, ताकि आवश्यकता पड़ने पर सीमा पर घटना विशेष हो तो तुरन्त श्रीनगर खबर भेजी जा सके। तारबाबू को कोई काम नहीं होता।

लगभग तीन बजे हम लोग लोहे की रस्सी की पुल पार कर कर्गिल के पड़ाव पर पहुँचे। चार बजे देखा तो तापमान ८६ डिगरी था। स्कूल की छुट्टी होते ही हमारे पूर्व परिचित पंडितजी, जो यहाँ ड्राइंग-मास्टर हैं, आकर मिले। वही आवभगत। हमारी शिकार का सब वर्णन सुनने के पश्चात् हमें अपने घर भोजन के लिये आग्रह करने लगे, परन्तु हमने धन्यवाद देकर इन्कार कर दिया।

हमारा सब सामान टूट चुका था। जब नौकरों ने उसको ठीक करने का प्रस्ताव रक्खा तो हमने कह दिया कि घोड़े की काठियाँ बैठने योग्य ठीक करा ली जायँ, शेष को वैसे ही रहने दिया जाय। हम लोग सोच रहे थे कि मछोई के पास सखना नाले में दो-तीन दिन आयबेक्स तथा लाल भालू की शिकार खेलकर काश्मीर की तलहटी में उतर जायँगे। अमरनाथ के दर्शन तथा बारहसिंघा की शिकार खेलकर श्रीनगर पहुँचेंगे। दूसरा प्रस्ताव यह भी था कि बारहसिंघा की शिकार न खेली जाय, क्योंकि हमारे पास रुपये नहीं रहे थे। दोनों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि घर से रुपये मँगा लेते। यदि घर तार देते तो उधार लेकर ही रुपये भेजे जा सकते थे।

/संध्या समय आठ बजे पंडितजी डाकखाने से आये और खबर दी कि कल इंगलैण्ड और फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। हमने तय किया कि अब बारहसिंघा की शिकार नहीं खेलेंगे और न मछोई के पास लाल भालू यथा आयबेक्स की ही। सीधे श्रीनगर पहुँचकर घर जायंगे।/

पंडितजी ने प्रार्थना की कि जो कुछ हमारे पास बचा हो वह सामान उन्हें दे दें। हमने भी उनसे पीछा छुड़ाने के लिये थोड़ी-सी ब्रांडी, शक्कर तथा मक्खन के दो डिब्बे दे दिये।

मंगलवार, ५ सितम्बर

आज पाँच बजे सवेरे कारगिल से रवाना हो गये। काफी दूर जाना था। निचाई तथा रेत के कारण आज बड़ी गरमी थी। रास्ते में टुंड्रुप गर्मी के मारे हैरान था। मेरे सामने काठी पर बैठा था, इसकी गरमी मुझे भी लग रही थी। लगभग दो बजे गरमी से परेशान और पसीने में लथपथ शमशाखबू पहुँचे। पेड़ों के नीचे तम्बू लगाकर एक घंटे विश्राम किया, बाद में स्नान करने पर चित्त प्रसन्न हुआ।

बुधवार, ६ सितम्बर

आज फिर सवेरे पाँच बजे चल पड़े। कल की भाँति आज भी गरमी काफी थी, परन्तु हम बढ़ते जा रहे थे। द्रास जब चार मील रहा तो हमें पीले रंग का गुलाब जो हम जाते समय देख गये थे, मिला। पौधा उखाड़कर ले जाने में एक बोझ और होता था तथा कलम ले जाने में यह आशंका थी कि जबतक टीकमगढ़ पहुँचेंगे तबतक लकड़ी सूख जायगी। अतः ऐसे ही चल दिये। लगभग दो बजे द्रास पहुँचे। यह स्थान काफी ठंडा है।

गुरुवार, ७ सितम्बर

आज ऊँचाई के कारण गरमी बहुत कम थी। हमारे शिकारी बराबर हमें आयबेक्स की शिकार के लिये कह रहे थे। हम कारगिल में ही निश्चय कर चुके थे कि अब शिकार नहीं खेलेंगे। मटायम में दोपहर का भोजन करके आगे बढ़ गये। हमारा विचार था कि मचोई में जो मटायम से पाँच मील है, ठहरा जाय। परन्तु शिकारी एक मील इधर ही ठहरना चाहते थे। कहते थे कि मचोई के पास बर्फ होने से रात को बहुत ठंड लगेगी। वास्तव में वे इस आशा में हमें एक मील नीचे नाले के पास ठहराना चाहते थे कि रात में हम अपना विचार बदल दें और लाल भालू तथा आयबेक्स की शिकार खेलें। जब उक्त नाले पर पहुँचे तो उन लोगों ने पुनः आग्रह किया। हमने स्पष्ट कह दिया कि हमलोगों की जेब खाली हो चुकी है। वे आगे बढ़े। मचोई हिमालय पार करते ही पहला पड़ाव है। यह जोजीला की चोटी पर है। यहाँपर तारघर, डाकखाना तथा ठहरने के लिए डाक-बँगला भी है। पास में

ग्लेशियर होने से बहुत ठंडा रहता है और हवा भी बहुत चलती रहती है हमलोग तीन बजे के लगभग मचोई पहुंचे। हमारे शिकारी एक प्रकार से निराश हो चुके थे। हमने उन्हें आश्वासन दिया कि चाहे हम शिकार न खेलेंगे, परन्तु तुम्हें सितम्बर के महिने भर का पूरा वेतन दिया जायगा।

संध्या समय चौकीदार ने आयबेक्स के सींग जो ४१ इंच लम्बे थे लाकर दिखाये। मैंने दो रुपये में खरीद लिये। इधर आयबेक्स तथा लाल भालू भी काफी बताये। रात को शिकारी विचार बदलने के लिये काफी कहते रहे, किन्तु हम अपने विचार पर दृढ़ रहे।

कई दिनों बाद आज हमें कड़ी ठंड मालूम हुई और लकड़ी जलाकर तापने की आवश्यकता हुई।

शुक्रवार, ८ सितम्बर

आज सवेरे तापमान ५६ डिगरी था। हम लोगों ने तय कर लिया था कि बालतल, जो मचोई से सात-आठ मील है, न ठहरें, आगे बढ़कर सोनमर्ग ठहरा जाय। मार्ग में पूंछ, जम्मू तथा उत्तरी पंजाब के गूजर अपनी भेड़ तथा बकरियाँ लेकर वापस जाते हुए कई जगह दिखाई दिये। पुंछ की बकरियाँ बहुत बड़ी होती हैं। जब हम लद्दाख जा रहे थे तब हमें कई जगह बर्फ पर चलना पड़ा था, परन्तु आज कहीं भी बर्फ नहीं था। जब हम काश्मीर की घाटी पर पहुंचे तो दक्षिण ओर की सघन उपत्यका स्वर्ग जैसी दिखाई दी। बड़े आश्चर्य की बात है कि हिमालय का दक्षिणी हिस्सा इतना हरा-भरा है और उत्तरी हिस्से में कुछ भी नहीं है। प्रकृति ने मानो भारतवर्ष पर खुले दिल से कृपा की है।

बारह बजे के लगभग बालतल तथा सोनमर्ग के बीच, हम भोजन एवं विश्राम के लिये ठहर गये। यहाँ भी भेड़-बकरीवाले कई गूजर मिले, जिनसे मालूम हुआ कि पहाड़ों में काफी बारहसिंघे हैं। काश्मीर में शिकार का ठीक पता गूजरों से लगता है, क्योंकि वे भेड़-बकरी को चराने के लिये प्रायः सब जगह घूमते रहते हैं। लेह से चलने के बाद पहली बार हमें यात्री मिले। एक सिख सरदार तथा उनका कुटुम्ब बालतल जा रहा था। जब उसने हमसे पूछा कि जोजीला के परे हिमालय का दृश्य कैसा है तो हमने कह दिया कि प्राकृतिक दृश्य देखना है तो भारत-

वर्ष की ओर ही रहें। वैसे हिमालय पार करने की इच्छा हो तो मचोई तक जा सकते हैं। वे भी यही चाहते थे, परन्तु समझते थे कि जोज़ीला चढ़ने में कष्ट होगा। हमने बता दिया कि इन दिनों कोई कष्ट नहीं होता।

हमलोग काश्मीर प्रदेश में पहुँच चुके थे। बादल भी बहुत घने थे। लगभग तीन बजे सोनमर्ग पहुँचे। डाक-बंगले में ठहरे। हमें आशंका थी कि कहीं रात मे वर्षा न हो। आज ही हमने अपने एजेंट मुहम्मद बाबा को पत्र लिखा कि हम परसों दोपहर के समय वायल पुल पर पहुँच जायँगे, अतः वे एक लारी हमारे लिये भेज दें ताकि हम तथा हमारा सामान श्रीनगर जल्द पहुँच जाय। आज हमें भोटों से विदा लेनी पड़ी। कारण, कल हमें काश्मीरी टट्टूवाले मिलेंगे। संध्या होते-होते बादल छा गये और वर्षा होने लगी, जिससे ठंड भी बढ़ गई। वैसे भी सोनमर्ग आठ हज़ार फुट से कुछ ऊपर है और ठंडा है। रात को हमें तापने की आवश्यकता हुई। हमारे शिकारी अब समझ गये थे कि हम शिकार न खेलेंगे, अतः कुछ उदासीन-से थे।

शनिवार, ६ सितम्बर

रातभर थोड़ी-थोड़ी वर्षा होती रही थी और आज सबेरे भी घने बादल थे। रुक-रुककर पानी बरस जाता था। अन्य दिनों की भाँति हम तैयार तो छह बजे ही हो गये थे, परन्तु वर्षा के डर के मारे रुके रहे और आठ बजे बादल खुलने पर चले। हमने तय कर लिया था कि आज गूँड न ठहरकर कगन के इधर कहीं अच्छी जगह ठहरेंगे, जिससे कल दोपहर तक वायलपुर पर पहुँच जायं। गूँड के पास दोपहर के भोजन तथा विश्राम के पश्चात् मैं और दाऊसाहब दो नौकरों को लेकर आगे बढ़ गये। सामान के साथ दोनों शिकारी तथा रसोइये थे। हमारे साथवाले नौकरों को शिकारियों ने स्थान बता दिया था और जो-जो खाद्य वस्तुएँ खरीदनी थीं वे भी बता दी थीं। लगभग चार बजे हम निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे। यहाँपर काश्मीर राज्य के जंगल के अफ़सर के तम्बू लगे हुए थे। जब हम वहाँ पहुँचे तो तम्बू से साहब के कुत्तों ने हमारे कुत्तों को देखकर भौंकना प्रारम्भ किया। इधर हमारे कुत्ते भी भौंकने लगे। साहब कहीं जंगल देखने गये थे, उनकी श्रीमतीजी डेरे पर

थीं। एक नौकर से हमें कहलवाया कि यदि हम एक मील और आगे जाकर ठहरें तो बड़ी कृपा होगी, अन्यथा कुत्ते रातभर सोने नहीं देंगे। कहना बिल्कुल उचित था। हमें लगभग एक घंटा ठहरना पड़ा, तब कहीं सामान के साथ शिकारी पहुँचे। हमें खड़े देखकर रमजानखाँ ने दाऊसाहब के नौकर आलिया से, जो हमारे साथ था, कहा, "अभीतक तुम क्या कर रहे हो? चाय के लिए लकड़ी तक नहीं लाये!" दाऊसाहब बोले, "यहाँ नहीं ठहरना है। देखो, पास में जंगल के साहब ठहरे हुए हैं। इनकी श्रीमतीजी कहती हैं कि रात को कुत्ते भौंक-भौंककर सोने नहीं देंगे। इसलिए आगे चलकर कहीं ठहर जायँगे।" सुनकर रमजानखाँ ने तमक-कर कहा, "डेढ़ पड़ाव चल चुके हैं। क्या मैं गधा हूँ जो दिनभर चलता जाऊँगा?" मैंने कहा, "तुम गधे नहीं हो, गधे तो हम हैं, जो तुम सरीखे धूर्तों को साथ रखे हुए हैं।" यह सुनकर भोल्ता-लोन ने रमजानखाँ को खूब सुनाई। वह भी गिड़गिड़ाने लगा। एक मील और आगे बढ़कर लगभग छह बजे एक नाले के पास तम्बू लगा दिये। जबतक लकड़ी आदि आई, अंधेरा हो गया।

रमजानखाँ ने कहा, "गूजर लोग वापस जा रहे हैं तथा इस ओर पठान भी बहुत हैं। रात को काफ़ी सावधानी से रहना होगा, नहीं तो सामान चोर ले जायँगे।"

हमारे साथ छह नौकरों के अतिरिक्त पाँच कुत्ते भी थे। अतः हमें इतना भय न था। भोजन करने के उपरांत जब सोने लगे तब बादल घिर आये और बिजली की कड़क के साथ ज़ोर की वर्षा प्रारम्भ हुई। रातभर थोड़ी-बहुत वर्षा होती रही और कुत्ते भी बहुत भौंके। वर्षा के कारण उन्हें तम्बू के अन्दर रखना पड़ा था। नींद बिल्कुल नहीं आई। बड़ी मुश्किल से सवेरा हुआ।

रविवार, १० सितम्बर

सवेरे उठकर देखा तो चारों ओर खेतों में पानी भरा था और हमारा सामान भी भीग गया था। नौ बजे के लगभग जब तम्बू सूखे, तब सामान लादकर आगे बढ़े। मक्का के खेत पके हुए थे। जहाँ भी पूछते, वहाँ लोग बताते कि मक्का खाने को रात में भालू बहुत आते हैं।

दोपहर के समय जब भोजन करने ठहरे तो एक किसान ने आकर हमसे पूछा कि क्या आप भुट्टे खायेंगे ? जब हमने उसे लाने को कहा तो वह कुछ भुट्टे ले आया, जिन्हें भूनकर हम सबने खाया। दाम चुकाते समय उसने भुट्टों के अतिरिक्त लकड़ी के भी दाम माँगे, जो वहीं से बीनकर इकट्ठी की गई थी। यह देखकर हमें आश्चर्य हुआ और जब हमने शिकारियों से पूछा तो वे भी उक्त किसान के पक्ष में बोले। हमको बीनी हुई लकड़ी के दाम भी चुकाने पड़े।

लगभग दो बजे हम वायल पुल पर पहुँचे, परन्तु वहाँ लारी नहीं थी। पुल पारकर लगभग एक मील पर एक गाँव में पेड़ के नीचे बैठे सामान की प्रतीक्षा करते रहे। यहाँ से कुछ ही दूर खीर भवानी का मंदिर है, जिसके दर्शन करने बहुतसे काश्मीरी पंडित अपने कुटुम्ब-सहित जा रहे थे। थोड़ी देर में हमारा सामान भी आ गया। हम सोच रहे थे कि आज गान्दरबल ठहरा जाय और कल श्रीनगर पहुँचा जाय। लगभग चार बजे लारी आ गई।

जब हम श्रीनगर पहुँचे तो मुहम्मद बाबा ने हमारा स्वागत किया और शिकार का हाल पूछकर खेद प्रकट किया कि हम लाल भालू तथा बारहसिंघा की शिकार नहीं खेल सके। वैसे हमें २६ सितम्बर के दिन श्रीनगर पहुँचना था।

सब नौकरों को सामान सौंपने के लिये मुहम्मद बाबा की दूकान पर छोड़कर हम दोनों होटल को चल दिये।

हमने शिकारियों को समझा दिया था कि हमारी मारी हुई शिकार की ट्राफी (सिर, चमड़े आदि) भली प्रकार लकड़ी के खोखों में बंद कर दें, ताकि टीकमगढ़ ले जाने में सुविधा रहे।

होटल में पहुँचते ही हमने अपने साथ के गंदे कपड़े एक कोने में डाल दिये और स्नान करके साफ कपड़े पहने। इतने में मोस्तालोन ने आकर कहा कि एजेंट ने कहलाया है कि शिकार ट्राफी वे बनायेंगे। हमने कहला दिया कि हम इसे मैसूर भेजेंगे।

सोमवार, ११ सितम्बर

सबेरे चाय पीकर तैयार हुए, तबतक हमारे छहों नौकर आ गये।

सबका हिसाब करके दाम चुकाये, साथ ही कुछ इनाम दिया। मैंने अपने शिकार के कपड़े तीनों नौकरों को दे दिये। मुहम्मद बाबा की दुकान पर पहुँचकर हिसाब किया गया और दाम चुकाये गये। बुड्ढा बोला, "हमारी असली कमाई तो शिकार की ट्राफी बनाने में थी। जब आप इसे मैसूर भेज रहे हो, तो सिवाय तम्बू आदि के किराये के हमें मिला ही क्या ?"

उसका हिसाब चुकाने के बाद जो रुपया हमारे एजेंट के पास शेष था, लेकर होटल आये। शिकार की ट्राफी भी उठवाकर होटल में मंगवाईं और खोखों में बंद करवाईं। लगभग बारह बजे सब सामान लेकर रेलवे एजेंसी में गये। वहाँ सामान तुलवाया तथा टिकट भी ले लिये। हमें परसों, १३ तारीख को, रावलपिंडी पहुँचना था और वहाँ रात की ट्रेन से दिल्ली जाना था। अतः कल सवेरे की बस से चलना था। होटल आकर हमने होटल के कल तक के दाम चुकाये।

मंगलवार, १२ सितम्बर

सवेरे नौ बजे रेलवे एजेन्सी में जाकर पूछा तो मालूम हुआ कि हमारा सामान कल ही चला गया है। रात को बारामूला से कुछ दूर वर्षा के कारण पहाड़ टूट गया, जिससे सड़क बंद है। आज संध्या तक रास्ता साफ होगा। जो लोग बस में जायँगे, उन्हें कल रावलपिंडी में संध्या की ट्रेन नहीं मिलेगी। यदि पहले दर्जे का टिकट रावलपिंडी का लिया जाय तो मोटर कार मिल सकेगी, जिससे कल संध्या तक रावलपिंडी पहुँचा जायगा। हमने चालीस रुपये और दिये और अपने लिये एक कार पक्की की। ड्राइवर ने बताया कि रात रामपुर में रहना है, क्योंकि उरी और रामपुर के बीच सड़क बन्द है। ऐसी दशा में दोपहर के पश्चात् तीन बजे चलना ठीक होगा। रेलवे एजेंसी में हम सरीखे कई यात्रियों की भीड़ थी। सब जाने के लिये उत्सुक थे। युद्ध छिड़ जाने के कारण फौजें तैयार हो रही थीं। कई अफसरों ने, जिनकी पत्नियाँ काश्मीर में थीं, तार देकर उन्हें तुरन्त बुलाया था। कई अंग्रेज महिलाएँ रो रही थीं। कहती थीं कि कहीं ऐसा न हो कि ट्रेन चूकने से वे अपने पतियों से न मिल सकें। भोजन के लिए होटल में पहुँचे तो मोक्तालोम बिस्तरा लिये

वहाँ तैयार था।

तीन बजे मोटरवाला होटल पहुँचा और हमने बिस्तरे लादकर होटलवालों से विदा ली।

आगे बढ़ने पर दृश्य बड़े सुन्दर दिखाई दिये। मोटर पश्चिम की ओर काश्मीर के मैदान में जा रही थी। हमें बारामूला से पहाड़ मिले। बारामूला अच्छी बड़ी बस्ती है। यहींसे झेलम काश्मीर के मैदान को छोड़कर पहाड़ों में घुसती है। लगभग छः बजे हम रामपुर पहुँचकर वहाँ के डाक-बँगले में ठहरे।

हमने उत्सुकतावश ड्राइवर से जब पूछा कि हमें कल रात की ट्रेन मिलेगी या नहीं तो वह बोला कि कल दस बजे तक भी अगर सड़क खुल गई तो वह शाम तक रावलपिंडी पहुँचा देगा। यहींपर हमें मालूम हो गया कि सड़क रुकने के पूर्व ही रेलवे एजेंसी की बस निकल चुकी थी। कई बसें तथा लारियाँ यहाँपर रुकी पड़ी थीं।

बुधवार, १३ सितम्बर

सवेरे कलेवा करते समय खानसामा से मालूम हुआ कि झेलम के पार उत्तर की ओर के पहाड़ों में बहुत मारखोर हैं। शिकारी मोटर द्वारा रामपुर तक जाते हैं और वहाँसे टट्टू लेकर दो दिन में शिकार की जगह पहुँच जाते हैं। आठ बजे के लगभग रावलपिंडी से श्रीनगर जानेवाली कई बस और मोटरें निकलीं, जिनसे हमें पता चल गया कि सड़क साफ कर दी गई है। हम भी तैयार होकर चल दिये। सड़क झेलम के किनारे बनी हुई है। कुछ ही देर बाद उरी गाँव मिला, यहाँसे दुमेल बस्ती मिली। दुमेल से एक सड़क झेलम पार कर मुजफ्फराबाद जाती है। झेलम में काश्मीर के जंगलों की लकड़ी बहती हुई देखी। इसे नीचे जाकर पंजाब में ठेकेदार लोग इकट्ठी कर लेते हैं और मंडी में बेचते हैं। सब लकड़ी पर ठेकेदारों के चिह्न होते हैं ताकि वे अपनी-अपनी छाँट लें। कोहाला के पास हमने झेलम पार की। नदी के दोनों ओर काश्मीर तथा सीमाप्रान्त के कस्टम के नाके हैं। कोहाला सीमाप्रान्त का कस्बा है। कोहाला से मरी तक बराबर चढ़ाई मिली।

इस प्रदेशवाले फौज में बहुत भरती होते हैं। कई जगह फौजी

अफसरों के बड़े सुन्दर मकान दिखाई दिये। मरी अच्छी साफ-सुथरी बस्ती है। मरी से रावलपिंडी तक एकदम उतार है। रावलपिंडी हम लोग दिन डूबते पहुँचे।

रावलपिंडी काफी बड़ा शहर है। स्टेशन पर पहुँचते ही हमने पूछा तो मालूम हो गया कि हमारा सामान आ गया है और आज ही रात दस बजे वाली एक्सप्रेस में हम दोनों के लिये सीटें रिजर्व कर दी गई है। दाऊसाहब ने टुंडुप का टिकट खरीद लिया। टुंडुप गरमी के मारे घबरा रहा था। बेचारा लद्दाख का जीव रावलपिंडी की गरमी के मारे हाँफ रहा था।

गाड़ी आने पर हमलोग वहाँसे रवाना हुए। दिल्ली पहुँचे और वहाँ से टीकमगढ़। इस प्रकार हम लोगों की यह लम्बी यात्रा समाप्त हुई।